राजपूताने का इतिहास

कोटा राज्य का इतिहास

लेखक

स्व० श्री जगदीशसिंह गहलोत
एम आर ए एस, एफ आर जी एस
भूतपूर्व अधीक्षक
पुरातत्व व संग्रहालय विभाग, जोधपुर

सम्पादक

श्री सुखवीरसिंह गहलोत, एम ए (हिन्दी व इतिहास)
श्री जी आर. परिहार, एम ए (इतिहास व राजनीति)

प्रकाशक
चन्द्रलेखा गहलोत
हिन्दी साहित्य मन्दिर
गहलोत निवास मेड़ती दरवाजा
जोधपुर.

मई १९६ :: मूल्य ६)

कोटा राज्य

भौगोलिक व आर्थिक विवरण[1]

नाम—आधुनिक राजस्थान के पाच डिवीजनो मे कोटा डिवीजन भी एक है। इसमे भूतपूर्व राजपूताने की ३ रियासतें—कोटा, बून्दी व झालावाड शामिल हैं। कोटा राज्य राजपूताना प्रान्त के दक्षिण पूर्वी भाग मे स्थित है। इस राज्य की राजधानी कोटा का नाम कोटिया नाम के भील नेता के कारण पडा और इसी से इस राज्य का नाम कोटा है।

सीमा—इस राज्य के उत्तर पश्चिम मे चम्बल नदी है जो इसे बून्दी राज्य से अलग करती है। इस राज्य के उत्तर मे जयपुर और टोक राज्य, पश्चिम मे बून्दी और उदयपुर राज्य, दक्षिण-पश्चिम मे इन्दौर, झालावाड राज्य और ग्वालियर राज्य की आगरा तहसील है, दक्षिण मे खिलचीपुर और राजगढ राज्य, और पूर्व में ग्वालियर राज्य और टोक राज्य की छबडा तहसील है। इस राज्य का आकार चतुष्पद के समान है।

विस्तार—इस राज्य का क्षेत्रफल (आठ जागीर की कोटरियो सहित) ५,७१४ वर्ग मील है। यह २४ अश, २७ कला तथा २५ अश ५१ कला उतराश और ७५ अश ३७ कला तथा ७७ अश २७ कला पूर्व रेखाश के बीच फैला हुआ है। इसकी अधिक से अधिक लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक—कोटरी इद्रगढ के उत्तरी सिरे से निजामत मनोहरथाने के दक्षिणी सिरे तक—लगभग ११५ मील और अधिक से अधिक चौडाई पश्चिम से पूर्व तक—निजामत लाडपुरा के पश्चिमी सिरे से निजामत शाहपुरा के पूर्वी सिरे तक—११० मील है। इस राज्य मे एक नगर, ४ कस्बे और २,५२५ गाव हैं।

पहाड़—कोटा राज्य का अधिकतर भाग पहाडी है। ये पहाड ज्यादातर दक्षिण की ओर हैं। ये निजामत लाडपुरा के दक्षिणी कोने से आरम्भ होकर

---

१ कोटा राज्य का भौगोलिक व आर्थिक विवरण १९४७ के अनुसार है जब कि यह एक अलग इकाई था।

निजामत चेचट और असनावर की उत्तरी सीमा बनाते हुए निजामत इकलेरा बकानी मनोहरथाना और छीपाबड़ोद मे फैले हुए हैं। ये पहाड़ मालवा पाट के उत्तरी भाग में हैं। यों कोटा राज्य का क्षेत्र प्राचीन काल में मालवा का ही एक भाग था। पहाड़ी भाग सम्पूर्ण राज्य का चौथाई भाग था। ये पहाड़ अरावली और विन्ध्याचल पर्वत को मिलाते हैं। इनकी एक ऊँची चोटी शाहपुरा तहसील के दक्षिण में समुद्र की धरातल से १९०९ फुट ऊँची है। मालवा जाने का रास्ता इन पहाड़ियों में से ही होकर है। सबसे अच्छा व सुगम रास्ता निजामत चेचट के उत्तर पूर्वी भाग में मुकन्दरा (दर्रा) घाटी है। अभी रेल मार्ग इसी घाटी में से होकर निकाला गया है। इस पर्वत शृंखला की लम्बाई ६० मील के लगभग है। उत्तर की ओर इन्द्रगढ़ की पहाड़ियाँ हैं जो १५ फुट के लगभग ऊँची हैं। सबसे ऊँची पहाड़ी इस राज्य के पूर्व में शाहबाद क्षेत्र में है जो मामूनी की पहाड़ी कहलाती है और १८०० फुट ऊँची है। ये पहाड़ घने जंगलों से घिरे और झाड़ियों से ढके हैं।

नदियाँ—इस राज्य की मुख्य नदियाँ चम्बल (प्राचीन नाम चर्मणवती) काली सिंध और पार्वती हैं जो बारहों महीने बहती हैं। अन्य छोटी नदियाँ आहू परवन अन्धेरी और कूनों है। ये सब नदियाँ उत्तर या उत्तर पूर्वी दिशा में
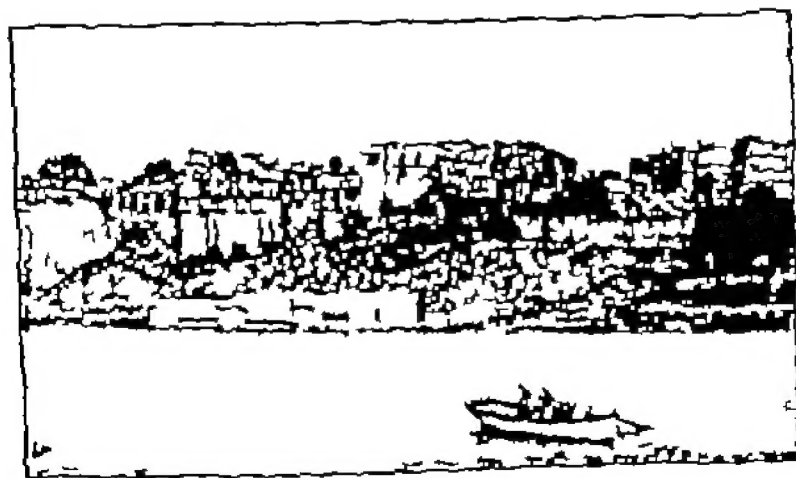
बहती हैं। चम्बल इन नदियों में सब से बड़ी और मुख्य नदी है। कोटा राज्य में यह लगभग ६ मील बही है। इस नदी में १९७ फुट लम्बा तथा १२ फुट ऊँचा एक बाँध कोटा नगर के पास बनाया जा रहा है। इससे राजस्थान राज्य की लगभग ७ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी तथा दो लाख तीस हजार

टन अतिरिक्त अनाज पैदा हो सकेगा और एक लाख किलोवाट विजली तैयार की जा सकेगी। यह बाध १९६२ तक तैयार हो जायेगा।[1]

इस राज्य मे चम्बल की दो बडी सहायक नदियाँ है—कालीसिन्ध और पार्वती जो विन्ध्याचल पर्वत से निकल कर इस राज्य के दक्षिण मे होकर प्रवेश करती है। कालीसिन्ध गागरोण के किले के पास तथा पार्वती निजामत कुजड के दक्षिण पूर्वी कोने से प्रवेश करती है। कालीसिन्ध के तट पर इस राज्य के प्रसिद्ध स्थान गागरोण, पलायता तथा बडौदा हैं। पार्वती के किनारे पर जलवाडा, फूलोद और खातोली है। कालीसिंध लगभग ३५ मील तक कोटा राज्य को ग्वालियर, इन्दौर व झालावाड राज्यो से अलग करती हुई बहती है और पार्वती लगभग ४८ मील तक कोटा राज्य को ग्वालियर और टोक राज्य से अलग करती है। छोटी नदियो मे आहू नदी महत्वपूर्ण है जो कोटा और झालावाड राज्य की सीमा नदी बन कर गागरोण के पास आकर कालीसिंध मे मिल जाती है।

जलवायु—इस राज्य मे तापक्रम गर्मी मे अधिक मे अधिक ११९० तथा सर्दी मे कम से कम ४४० फारनहीट तक चला जाता है। इस राज्य मे पानी का फैलाव ज्यादा रहता है अत मच्छर ज्यादा होते है और इस कारण मलेरिया का प्रकोप बहुत रहता है। वर्षा का औसत ३० इच है। कभी-कभी तो इतनी ज्यादा वर्षा होती है कि चम्बल मे बाढ आ जाती है और कोटा नगर के कई हिस्सो मे पानी भर जाता है।

भूमि व उपज—इस राज्य की ज्यादातर भूमि उपजाऊ और काली है। ऐसी भूमि चम्बल, पार्वती और अण्डेरी नदियो तथा दर्रे के पर्वत-श्रेणियो और कोटरियो के बीच मे स्थित है। इसमे बारा, अन्ता, मागरौल, इटावा, बडोद, दीगोद, लाडपुरा, कनवास, सागोद, खानपुर और कुन्जेड की रियासतें आती हैं। यह भाग ज्यादातर मैदानी और उपजाऊ है। इसमे ईख, अफीम, तम्बाकू, रूई, तथा सब प्रकार के अनाज पैदा होते हैं। अफीम पहले यहा बहुत ज्यादा पैदा होती थी लेकिन अब सरकार के आदेशो के अनुसार उत्पादन कम किया जा रहा है। बारा मे केन्द्रीय सरकार का अफीम का गोदाम है जहा से विभिन्न स्थानो को अफीम भेजी जाती है। अफीम बेचने का अधिकार केवल केन्द्रीय सरकार का है।

यह राज्य राजपूताने का धान्य-भण्डार है। पश्चिमी राजपूताने के लोग अकाल के वक्त इस क्षेत्र मे ही शरण लेते है। नदी व कुओ से काफी भाग मे

---

१ चम्बल नदी के लिये विस्तृत विवरण बून्दी राज्य का इतिहास के पृ ४–५ पर देखिये।

सिचाई होती आई है। अब चम्बल नदी पर बांध बन जाने पर काफी सिंचाई होने लगेगी। अतः फिर तो यह क्षेत्र राजस्थान का सबसे बड़ा धान्यागार हो जायेगा।

जंगल—पार्वती नदी के पूर्व की ओर जंगल घने हैं। जंगलों में घास लकड़ी गोंद महुआ मोम शहद आदि पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इनसे यहां के निवासी अपना जीवन-निर्वाह करते हैं क्योंकि जंगली भागों में खेती कम होती है। अधिकतर पेड़ बबूल गूलर ढाक बड़ सागवान शीशम आदि के पाये जाते है। इन जंगलों में हिंसक पशु बहुत रहते हैं। सिंह बाघ चीता रींछ, सांभर, हरिण नीलगाय बारहसिंहा सूअर आदि बहुतायत से पाये जाते हैं। शाहबाद किशनगंज सागपुर शुकलेरा कनवास और असनावर जंगली जानवरों के मुख्य आवास है। दर्रे की घाटी के आसपास इन जानवरों का अधिक शिकार किया जाता है। जंगली पक्षियों में चील मोर शिकरा बाज तोता तीतर, गिद्ध बटेर आदि होते हैं। गागरोण का तोता सर्वत्र प्रसिद्ध है। जल-पक्षियों में सारस बगुला बतक जलमुर्ग आदि अधिक पाये जाते हैं।

संचार व्यवस्था—व्यापार की तरक्की के लिए तथा जनता की सुविधा के लिए यातायात की सुविधा होनी नितान्त आवश्यक है। रेल सड़कों तार डाक आदि से ही राज्य की प्रगति सम्भव हो सकती है। कोटा राज्य में संचार व्यवस्था की प्रारम्भ से ही कमी रही है। महाराव भीमसिंह के शासन-काल में यहां हवाई अड्डा बनाया गया है परन्तु उसका विशेष उपयोग नहीं होता। केवल लोकिया हवाई जहाज उतर जाते है। नदियों का नावों द्वारा व्यापार नहीं होने के कारण कोई विशेष उपयोग नहीं होता है। वर्षा के दिनों मे तो इनमें बाढ़ आ जाने के कारण खेती नष्ट हो जाती है। आवागमन के मार्ग रुक जाते हैं। सामान्य संचार-व्यवस्था के साधन रेल व सड़कें ही है और वे भी पर्याप्त नहीं है।

इस राज्य मे दो रेल्वे लाईनें है। एक कोटा-बीना लाइन का भाग और दूसरी नागदा-मथुरा लाइन का भाग। कोटा-बीना लाइन कोटा राज्य में ६१ मील लम्बी है। यह झालरापुरा दीगोद अन्ता बारां और कुम्भेड़ की रियासत में से होकर निकलती है। इस पर कोटा राज्य में कोटा जंक्शन दीगोद भीरा अन्ता सिजोरा बारां छबड़ा अटरू और मालपुरा कुल ९ स्टेशन हैं। दूसरी रेल्वे लाइन कोटा जंक्शन से दक्षिण की ओर मुकेन्द तक ४५ मील लम्बी है। यह झालरापुरा कनवास और पेचट की रियासतों में से गुजरी है। कोटा राज्य की सीमा में इस पर कोटा जंक्शन कोटा सिटी डाकन्या तालाब डाढदेवी

ग्रालन्या, रावठा, रोड, दर्रा, मोडक, और रामगज मण्डी कुल ६ स्टेशन हैं। एक स्टेशन कोटा जकशन के उत्तर मे इन्द्रगढ स्टेशन भी है। इन रेल लाइनो से राज्य को ७० लाख रुपये सालाना की ग्राय है।

कोटा राज्य मे १९४७ ई० मे पक्की सडकें २७५ और कच्ची सडकें ५७० मील लम्बी थी। कच्ची सडके केवल गर्मी और सर्दी की मौसम मे काम आती थी। राज्य की सब तहसीले सडको से सम्बन्धित थी। वर्षा ऋतु मे भूमि चिकनी होने के कारण व नदी-नालो की भरमार के कारण यातायात बन्द रहता था। मुख्य सडके निम्नलिखित थी—कोटा से झालावाड (५३ मील पक्की सडक), कोटा से बून्दी (२२ मील पक्की सडक), कोटा से बारा (५० मील पक्की सडक), कोटा से कुवाई (६६ मील सडक) बून्दी से कोटा होता हुआ झालावाड को जाने वाली सडक राष्ट्रीय राजपथ है। कोटा-बून्दी तथा कोटा-झालावाड सडको का रास्ता वर्षा के समय चम्बल व आहू नदी आ जाने के कारण रुक जाता है। उस समय नदी पार करने के लिए नावे काम मे लाई जाती है। अब तो इन सडको का काफी विस्तार हो रहा है तथा नदियो मे जगह-जगह रपटे बनाई जा रही है।

१९४७ मे कोटा राज्य मे ४५ डाकघर और ५ तारघर थे। अब तो इनकी सख्या निरन्तर बढती जा रही है।

खनिज पदार्थ—कोटा मे कई प्रकार के खनिज पदार्थ पाए जाते हैं। पहले राज्य को इससे काफी आमदनी होती थी लेकिन धीरे धीरे विदेशी प्रतियोगिता के कारण इसकी आमदनी कम हो गई। खनिज पदार्थों मे यहा पत्थर मुख्य रूप मे मिलता है जो सफेद, लाल और काले रग का होता है। कही-कही इसकी लम्बी-लम्बी पट्टिया निकलती हैं तो कही-कही छोटे-छोटे कातले और कही-कही केवल टुकडे। यहा का सफेद पत्थर बहुत सुन्दर होता है। उस पर घडाई व छटाई बहुत बढिया की जा सकती है। इसकी खाने मोडक, रामगज मडी व दर्रे तक फैली हुई है। लाल पत्थर की खाने निजामत लाडपुरा, कुन्जेड और खानपुर मे पाई जाती है। लाल इमारती पत्थर लगभग सब जगह पाया जाता है। गेरू, रातई और पीली मिट्टी भी निजामत शाहबाद, इकलेरा और छीपाबडौद मे पाई जाती है। अन्ता, मोडक, इन्द्रगढ, बारा खेडा और जगपुरा कसार मे चूना बनाने का पत्थर बहुतायत से मिलता है। मोडक और इन्द्रगढ के पत्थर से सीमेन्ट बनाया जाता है।[1] लोहे की खानें शाहबाद और इन्द्रगढ की पहाडियो मे स्थित हैं परन्तु उनका उपयोग नही किया जाता है क्योकि आसपास कोयले

१ सवाई माधोपुर तथा लाखेरी मे सीमेन्ट के कारखाने है

की खानें न होने के कारण लोहा निकालना महंगा पड़ता है। कहीं कहीं पर सुलेमानी पत्थर भी मिलता है। कुम्भी और मोठपुर के पास कांच बनाने की रेत भी पाई जाती है। कोटा राज्य के क्षेत्र में खनिज भरे पड़े हैं। यदि इनका पता लगा कर निकाला जाय तो अमूल्य पदार्थ निकलेंगे।

धन्धा—यहां के लोगों का मुख्य धन्धा खेतीबाड़ी है। उपजाऊ काली मिट्टी होने के कारण तथा वर्षा व सिंचाई के पर्याप्त साधन होने के कारण कोटा के ज्यादातर लोग खेती करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। यह क्षेत्र राजपूताने का धान्य भण्डार कहलाता रहा है। दोनों फसलें—रबी व खरीफ पर्याप्त मात्रा में यहां बोई जाती हैं। यह सब कुछ होते भी यहां का किसान वर्ग गरीबी में ही रहता आया है। इस क्षेत्र में भूमिहीन किसानों की संख्या बहुत ज्यादा है। राज्य में बड़ी बड़ी धान की मण्डियां—कोटा बारां अन्ता मांगरोल सीसवली सांगोद खानपुर सारोला रामगंज आदि स्थानों पर हैं। यहां का दूसरा मुख्य धन्धा कपड़ा बुनना है। कोटा की मलमल महमूदी डोरिया आदि अपनी बारीकी और रंगों के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। बारां के चून्दड़ी के बने हुए साफे व दुपट्टे अपनी अच्छाई के लिये प्रसिद्ध हैं। कोयला की रेजी प्रसिद्ध है। कैथून व मांगरोल करघा उद्योग के मुख्य केन्द्र हैं। प्राचीन काल में कोटा की तलवार प्रसिद्ध थी। अब तो तलवारों का कम ही उपयोग होता है।

सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक विवरण

निवासी—इस राज्य के अधिकांश निवासी आर्य और मिश्रित वंश के हैं। भारत में जितने विदेशी आक्रमण हुए और विदेशी भारत में बसे वे सब लोग इस क्षेत्र में भी रहे। अब कोटा जो कि मालवा का अंग कहलाया जाता

है, वहा कई जातियो का सघर्ष-स्थल रहा है। यही कारण है कि यहाँ मिश्रित जातियाँ अधिक पाई जाती है।

सामाजिक दृष्टि से आबादी विभिन्न जातियो मे बँटी हुई है। इसका मोटा विभाजन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मुसलमान, कृषक व श्रमजीवी है। कृषको मे धाकड, कराड, मीणा व भील है। श्रमजीवी जातियो मे चमार मुख्य है।

राजपूतो ने यहाँ शासन स्थापित कर अपना प्रभुत्व सामाजिक जीवन मे भी स्थापित किया। उनके रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा तथा आचार-व्यवहार जनता अपनाने लगी। लोगो की खाँपें राजपूतो की खाँपो की तरह होने लगी। इनका खाना-पीना बडा सादा था। आम जनता व कृषक लोग मक्की, जवार व घाट खाते है। माँस व मदिरा का प्रयोग कम किया जाता है परन्तु राजपूत वर्ग मे इसका प्रयोग अधिक है। इनकी वेष-भूषा मे धोती-अगरखी तथा साफा मुख्य है। साफे के स्थान पर ज्यादातर पगडी बाधी जाती है। बहु शादी करने का रिवाज है। बडे भाई की स्त्री को देवर से विवाह करने की प्रथा भी है। शादी-गमी के अवसर पर माहिरा किया जाता है। शादी के लिए बचपन मे ही मँगनी तय करली जाती है और कभी कभी तो गर्भावस्था मे ही शादी के वचन पक्के कर लिए जाते है। लडकी का जन्म अशुभ समझा जाता है। समाज मे ब्राह्मणो का प्रभाव अधिक है। अन्धविश्वास व अन्य कई प्रकार की सामाजिक कुरीतियो के कोटा के लोग शिकार है। स्त्रियो का पहनावा घाघरा, काँचली व ओढनी होती है जो मोटे कपडे की होती है। पर्दा-प्रथा व्यापक है। राजपूत स्त्रिये तो बहुत पर्दा करती हैं। आम जनता की स्त्रियाँ सिर्फ घूँघट निकाल लेती है। गहने पहनने का बडा शौक है। राज्य की तरफ से जिसे सोना बख्शा जाता है, समाज मे उसकी इज्जत होती है। महाजन ऋण देने का काम करते हैं। परन्तु समाज मे राजकीय पुरुष का प्रभाव अधिक होता है।

लोग अधिक पढेलिखे नही है। पहली बार राज्य की ओर से शिक्षालय सम्वत् १८७२ मे खोला गया जिसमे दो अंग्रेजी, दो फारसी, दो हिन्दी के अध्यापक नियुक्त किए गए और दस रुपये उनका मासिक वेतन था। स्त्री-शिक्षा भी प्रारम्भ की गई। प्रारम्भ मे पाच लडकियें ही पढने आती थी। सन् १९४७ तक लोक-शिक्षण की अधिक प्रगति नही हुई। सम्पूर्ण कोटा राज्य मे एक इन्टर कालेज (हरबर्ट इन्टर कालेज), तीन उच्च विद्यालय (हाई स्कूल) थे। हर तहसील मे एक मिडल स्कूल तथा एक प्राइमरी स्कूल थी। शिक्षा उन्नति के लिए राजकीय आय का २५ प्रतिशत बजट खर्च किया जाने लगा और सालाना

तीन लाख रुपये शिक्षा के लिए खर्च किये जाते थे। यही अवस्था स्वास्थ्य विभाग की थी। आधुनिक ढंग का एक अस्पताल कोटा में था। बाकी तहसीलों में सिर्फ डिस्पेन्सरी होती थीं। १९४७ तक स्वास्थ्य के लिए १ लाख २० हजार सालाना खर्च किया जाता था।

धर्म—कोटा राज्य में हिन्दू अधिक संख्या में होने के कारण प्रधान धर्म हिन्दू है। यद्यपि हिन्दुओं के सभी सम्प्रदाय पाए जाते हैं परन्तु कोटा के शासक और जनता वैष्णव सम्प्रदाय को अधिक मानते हैं। श्रीनाथजी गोस्वामी वर्ग के वैष्णवों का कोटा में बहुत प्रभाव है और कई मन्दिर इस प्रकार के पाए जाते हैं। कोटा स्थित मथुरेशजी का मन्दिर वैष्णव धर्म का प्रतीक है। यहां के महाराव वैष्णवों को खूब दान देते थे। द्वारिका हरिद्वार मथुरा आदि वैष्णव केन्द्रों पर धार्मिक यात्राएँ की जाती थीं। महाराव किशोरसिंह प्रथम ने तो ब्रज भूमि में जाकर ब्रज लीला का आनन्द भोग किया था और महाराव रामसिंह ने नाथ द्वारा तक पैदल यात्रा की थी। नित्य दो कोस चल कर ढाई मास में नाथद्वारा पहुँचे। महाराव किशोरसिंहजी जालिमसिंह झाला से अप्रसन्न होकर नाथद्वारा गए और कोटा का राज्य श्रीनाथजी की भेंट कर दिया था।

वैष्णव धर्म के साथ साथ कोटा की जनता शिव व सूर्य की उपासक भी है। झालरापाटन में स्थित सूर्य मन्दिर इस बात का द्योतक है कि हाड़ौती की जनता एक समय में सूर्य की उपासक थी। भीमगढ़ में प्राप्त एक विशाल शिव लिङ्ग पाया गया है जिसका अवशेष इस क्षेत्र में शैव मत प्रभावशाली होना बतलाता है। कोटा में जैन धर्म का प्रचार भी था। शेरगढ़ में ग्यारहवीं शताब्दी की तीन खण्डित जैन प्रतिमाएँ भी हैं। यह एक राजपूत सरदार द्वारा बनवाई गई। इससे प्रतीत होता है कि जैन धर्म के अनुयायी न केवल व्यापारी वर्ग ही था परन्तु राजपूतों ने भी इसे स्वीकार किया। अन्य धर्मावलम्बियों में मुसलमान अधिक हैं। राज्य की ओर से उन्हें ऊँचे ऊँचे पद दिये जाते थे। इससे स्पष्ट है कि शासकों ने धर्म-सहनशीलता की नीति अपनाई थी। धार्मिक अन्धविश्वास भूत प्रेत आदि का प्रभाव जनता पर अब भी है। धार्मिक मेलों में कोटा में दशहरा का मेला अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दशहरा के अवसर पर यह मेला सात दिन लगा रहता है।

भाषा—यहां की भाषा राजस्थानी है क्योंकि इसमें राजस्थानी शब्द अधिकतर होते हैं। यहां की बोलचाल की भाषा हाड़ौती कही जाती है। कुछ लोग मालवी बोलते हैं। हाड़ौती शुद्ध राजस्थानी भाषा नहीं जिसे डिंगल का स्वरूप

दिया जा सके। हाडोती उच्चार और व्याकरण की दृष्टि से गुजराती से मिलती-जुलती है। कुछ यह मालवी भाषा के प्रभावयुक्त हो गई है। मालवी भाषा अधिकतर मनोहरथाना, छीपाबडौद, अकलेरा, बकानी, असनावर और चेचट मे ज्यादा बोली जाती है और शुद्ध हाडोती कोटा व कोटारियो मे बोली जाती है। प्रारम्भ मे राजकीय भाषा सस्कृत थी लेकिन ई सन् १८७३ मे फारसी हो गई और फिर कालान्तर मे हिन्दी ने फारसी का स्थान १८८० मे ले लिया। अग्रेजी राज्यकाल के समय १६०० ई० के बाद राज्य मे अग्रेजी का ज्यादा प्रचार हो गया। शाहबाद मे सहरियो को अलग बोली है।

महाराव भीमसिंह ने वल्लभ सम्प्रदाय ग्रहण किया और गढ मे मन्दिर बनवा कर बृजनाथ की मूर्ति की उसमे प्रतिष्ठा की थी। दुर्जनसालजी के समय सम्वत् १८०१ मे मथुरानाथजी बून्दी से कोटा लाए गए। राव दुर्जनसाल बडे भगवद्-भक्त थे। वि स १७६७ मे उन्होने सप्त स्वरूपो मे एक लाख रुपया खर्च किया था। अन्नकूट आदि वल्लभ मम्प्रदाय के उत्सव शुरू कराये।

कोटा राज्य का शासन-प्रबन्ध

कोटा राज्य मुगल मल्तनत की देन है। मुगलों की शासन-व्यवस्था तो कोटा राज्य मे नही थी परन्तु कुछ उस ढांचे के आधार पर कालान्तर मे अग्रेजो के आने से पहले तक बन गई। कोटा का राज्य हाडा माधोसिंह के वश के शासको का रहा है। यहा के शासको को 'महाराव' कहा जाता है। महाराव का राज्य-चिन्ह का उद्देश्य 'अग्नेरपितेजस्वी' अर्थात् अग्नि से भी तेजस्वी है। इस राज्य-चिन्ह के मध्य मे एक गरुड आकृति और इसके आसपाम दो उडते घोडे बने हुए हैं।

महाराव कोटा राज्य के अध्यक्ष हैं। राज्य के वह सर्वेसर्वा हैं। राज्य की व्यवस्थापिका कार्यकारिणी तथा न्यायदायिका शक्तियें राज्य के महाराव के हाथ में निहित हैं। महाराव निरंकुश शासक हैं और आन्तरिक रूप में देवताओं के प्रतिनिधि रूप में देखे जाते हैं परन्तु वे हमेशा ही मुगलों के अधीन रहे हैं। बाद में अंग्रेजों के। मुगलों के वे सिपहसालार व मनसबदार थे। मुगलों और अंग्रेजों को वे हमेशा खिराज देते रहे हैं। मुगल प्रभाव सिर्फ कागजी था।

केन्द्रीय शासन-सत्ता शासक में निहित थी। पूर्ण रूप से हिन्दू कानून प्रचलित था और यहाँ की प्रजा सब भाँति कोटा नरेश की प्रजा थी। राज्य में सरकारी पद पर नियुक्ति महाराव के नाम पर होती थी और आरम्भ में महाराजाधिराज महाराव श्री' वचनात्' एसा लिखा जाता था। राज्य की देखरेख करने के लिए दीवान की नियुक्ति होती थी। यह नियुक्ति महाराव करते थे। राज राणा जालिमसिंह के बाद अपनी गुप्त संधि के अनुसार सन् १८१९ से सन् १८३७ तक दीवान का पद झालों के वश में पैतृक रहा। परन्तु जब मदन सिंह झाला को झालावाड़ का राज्य प्राप्त हो गया तो पुन यह पद महाराव की शक्ति के अन्तर्गत आ गया। दीवान आय-व्यय कोष आदि की देखरेख करता था। दूसरा मन्त्री फौजदार होता था जो सेना का अध्यक्ष होता था तथा राज्य की व महाराव की सुरक्षा का भार उसी पर होता था। उसकी नियुक्ति भी महाराव करते थे परन्तु राज राणा जालिमसिंह व उनके उत्तराधिकारियों ने इन दोनों पदों को एक मिला कर अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। दीवान या प्रधान या मुसाहिबआला के साथ ठाकुर चौधरी और हवालगीर होते थे। पुलिस तथा जुडिशियल विभाग अलग-अलग नहीं थे। गिरफ्तार करने वाला ही न्यायाधीश बन जाता था।

राज्य कई परगनो मे विभक्त होता था। प्रत्येक परगने में एक चौधरी, एक कानूगो और एक हवालगीर रहता था। हवालगीर प्राय राजपूत होता था और दरबार से नियत किया जाता था। परगने मे एक फोतदार भी होता था। हवालगीर को १०) मासिक वेतन मिलता था और सिपाहियो का वेतन ३) मासिक था। कानूगो का कार्य हकत और पडत जमीन का हिसाब रखना तथा उसकी उन्नति करना था। चूकि साम्राज्य के प्रत्येक परगने का कानूगो सम्राट द्वारा नियत किया जाता था इसलिए कोटा के परगनो के कानूगो भी शाही फरमान द्वारा नियुक्त किए जाते थे। इस प्रकार कानूगो शाही प्रतिनिधि होता था। परगने की भूमि लगान, आमद तथा खर्च का हिसाब वह दफ्तेर खाता आली (हिसाब विभाग) मे भेजता था। परगने के चौधरी, जागीरदार, प्रजा आदि कानूगो की सलाह से कार्य करती थी। कानूगो का पद परम्परागत था परन्तु एक कानूगो के मरने के बाद उसके पुत्र को शाही फरमान लेना आवश्यक था। इनका वेतन नगद था। परन्तु कालान्तर मे आय के अश के रूप मे दिया जाने लगा। कोटा नरेश की आज्ञा का पालन करना उनका एक कर्त्तव्य होता था। परगनो पर कोटा महाराव का अधिकार तीन रूप मे था—जागीर, मुकाता और इजारा। कोटा शासक सामन्तो की सेवा के बदले मे जागीर देते थे। अपने सम्बन्धियो को जागीर देते थे। जागीर के परगने से मुगलो का सम्बन्ध नाम-मात्र था। जो परगने मुगल बादशाह बखसोस करते थे वे मुकात कहलाते थे। अधिकतर मुगल शासक कोटा नरेश को इनायत के रूप मे देते थे। इनकी खिराज मुगलो को दी जाती थी। इसी प्रकार इजारा जागीर कोटा नरेश महाराव को प्राप्त थी। कोटा महाराव इन परगनो का मतालबा मुगल राज्य मे साढे तीन लाख वार्षिक देते थे जो बाद मे मराठो को दिया जाने लगा।

शासन की छोटी इकाई गाव थी। गाव मे पटेल का प्रभाव बहुत था। राज्य की भूमि-कर-आय वसूल करने का अधिकारी वही होता था। जालम-सिंह के समय से यह पटेल-प्रथा हटादी गई और पटेलाई व्यवस्था स्थापित की गई। पटेलाई की प्राप्ति के लिए नजराना दिया जाता था। हर नए महाराव के समय पटेलाई नये रूप से नजराना देकर लेनी पडती थी। गाव मे पचायत का मुखिया चौधरी कहलाता था। पचायत सामाजिक व आर्थिक सगठन का केन्द्र था।

भूमि-प्रबन्ध कोटा राज्य मे मुगल प्रबन्ध की तरह ही था। लगान उपज का तृतीयाश लिया जाता था। नकद या उपज के रूप मे जमा करा दिया जाता था। कोटा मे भूमि का विभाग कभी नही स्थापित किया गया। खडी

हुई फसल को राज्य-कर्मचारी गांव के मुख्य किसानों के सामने कूंता करते थे। इस कूती हुई उपज का तीसरा हिस्सा राज्य में आता था। दूसरा जागीरदार ले लेते थे। एक हिस्सा कृषक लेता था। जमीन नापने का काम उसी समय पड़ता था जब कि किसी को माफी दी जाती थी। जागीरदार को ताकीद की जाती थी कि उनके घोड़े फसल को नष्ट न करें। जिन किसानों को बीज नहीं मिलता था उन्हें राज की ओर से दिया जाता था। पटेलों से नजराना प्रति वर्ष लिया जाता था तथा उन्हें राज्य से पगड़ी दी जाती थी जिसका खर्चा परगने के बजट से निकाला जाता था। किसानों को दुर्भिक्ष के समय तकावी दी जाती थी। राजराणा जालिमसिंह ने पटेलों की कौंसिल जिस प्रकार कि आधुनिक रेवेन्यू बोर्ड होता है, का निर्माण किया। कृषकों के झगड़ों की यह एक प्रकार से अदालत अपील थी। भूमि का नाप करवाया गया। उपज के अनुसार भूमि बांटी जाने लगी—पीवल खड़ा और माल। लगान निश्चित करके यह घोषित कर दिया गया कि कड़ता नकद लिया जावेगा उपज के रूप में नहीं। प्रति बीघा एक आना पटेल की रसूम नियत की गई। उन तमाम गांवों में जहां की जमीन अच्छी उपजाऊ थी वहां पर जालिमसिंह ने राज के हवाले स्थापित किए। इन हवालों के वास्ते किसानों से जमीन छीन ली जाती थी। कृषि में उन्नति की गई। नाना प्रकार के कर लेने की व्यवस्था कोटा राज्य में थी। मुख्य कर भूमि कर था जो उपज का एक तिहाई लिया जाता था। यह कर कड़ते के रूप से वसूल किया जाता था। प्रारम्भ में नकद अनाज के रूप में परन्तु ई० सन् १८ के बाद नकद के रूप में लिया जाता था। दूसरी प्रकार का कर मुकाता होता था। एक व्यक्ति से गांव का निश्चित लगान वसूल करके उसको यह अधिकार दिया जाता था कि कृषकों से वह स्वयं लगान वसूल कर ले। राज्य द्वारा ऋण अनाज या खेतों को गिरवी रखने पर दिया जाता था। माल हासिल के अलावा २१ प्रकार के और कर थे। कंवरमटकी पटमखूंटी पट वारी कमाई गजबधनी सराई छापों नापों मकान आदि। अमलों की नियुक्ति राज्य की तरफ से होती थी। भूमि कर के दो भाग थे—खालसा और जागीर। खालसा से भूमि कर बटाई या लटाई द्वारा वसूल किया जाता था। जागीरदारों से कर नकदी वसूल किया जाता था। जितना जागीरदार नहीं देता था वह ऋण मान कर उस पर ब्याज लिया जाता था। ये सब कर आय के साधन थे। परगने के अफसरों को वार्षिक बजट के अनुसार परगने की आय में से खर्च करने का अधिकार था। खर्च के बाद रुपया यदि बचता तो राजकीय खजाने कोटा में भेज दिया जाता था। आय और खर्च का हिसाब परगने की

कचहरी मे रहता था और प्रति वर्ष दीवान के पास भेजा जाता था। खर्च के मुख्य मद—पुण्यार्थ, दरगाही, हनूरीकातन राजलोक, महल, कारखाना, बोहरा को देना, देश का खर्च, अटाला, आम्बार, सेना आदि थे। बेगार प्रथा द्वारा भी राजकीय कार्य होता था। बेगार मे प्रत्येक बेगारी को जबरदस्ती कार्य करना पडता था और उसे केवल पेट-पूर्ति के लिए नाम मात्र पैसे दे दिये जाते थे। राजपूताने मे जागीर प्रथा का यह एक विशेष अग था।

न्याय हिन्दू प्रणाली से किया जाता था। परम्पराओ को दृष्टिकोण मे रख कर ही दड दिया जाता था। गाव की पचायतो को दण्ड देने का अधिकार था। उनकी अपील हो सकती थी। प्रत्येक परगने के मुख्य गाव मे कोतवाली का चबूतरा होता था। कोतवाल ही अपराधियो को पकडता था और वही उनको दण्ड देता था। न्याय विभाग कोई प्रथक नही था। चौधरी, कानूगो और ठाकुर से भी न्याय करने की प्रथा थी। शिकायतो की सुनवाई होती थी। कागजी कार्यवाही कम होती थी। चोरी, डकैती और हत्या के अपराधियो को प्राय अग-भग व प्राण-दण्ड ही दिया जाता था। छोटे अपराधो का अर्थ-दण्ड दिया जाता था। व्यभिचार पर दण्ड जुर्माना होता था। राज-नियम का भग करना घोर अपराध माना जाता था। राजा की कोप दृष्टि होते ही उस व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता था। तोप से उडा देना, सिर कटवा देना, हाथी के नीचे कुचलवा देना राजा के बाए हाथ का खेल था। इसके विरुद्ध कही अपील नही की जा सकती थी।

सेना का अध्यक्ष फौजदार कहलाता था। कोटा की सैनिक व्यवस्था मुगल व्यवस्था से मिलती-जुलती थी। कोटा की सेना मे भी फौजदारी, फीलखाना, शुतुरखाना, रिसाला, तोपखाना, हरावल आदि होते थे। सेना मे दो प्रकार के सिपाही थे। एक तो जागीरदार भेजते थे जिनका खर्चा स्वय जागीरदार देते थे। दूसरे महाराव स्वय भर्ती करते थे। महाराव का यह कार्य फौजदार करता था। जालिमसिंह के पहले स्थायी सेना सुव्यवस्थित रूप से रखने की कोई प्रणाली नही थी। जालिमसिंह ने छावनी (झालावाड) मे स्थायी सेना का मुख्य केन्द्र स्थापित किया। कवायद, शिक्षा, अनुशासन से सैनिक सगठन मे सुधार किये। हाथी, घोडे, ऊटो का प्रयोग सेना मे होता था। अधिकतर घोडे काम मे लाए जाते थे। पैदल सैनिक को युद्ध की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। अधिकतर सैनिक लोहे के कवच और टोप पहनते थे। तलवार, ढाल, बर्छी, भाला व तोप काम मे लाए जाते थे। कोटा के मुख्य किलो का जीर्णोद्धार करवाया जाता था

जिससे राज्य की सुरक्षा हो सके। अन्य किले शेरगढ़ मनोहरथाना शाहबाद व गागरोण के थे।

सन् १८५७ तक कोटा की उपरोक्त शासन-व्यवस्था बनी रही। सिद्धान्त के रूप में सारा कार्य दरबार की आज्ञा से होता था परन्तु वास्तव में राज्य के बड़े बड़े कर्मचारी महाराव के कुटुम्ब के लोग और कृपा-पात्र मनचाहा करते रहते थे। घूसखोरी राज्य का मुख्य अंग था। राजा का कोई सिद्धान्त नहीं था। उसकी समझ में जो आया चाहे बुरा ही क्यों न हो राज्य का वह नियम हो जाता था। प्रजा की भलाई का ध्यान राजा को न तो कभी था न कभी वह परवाह करता था। राज्य दरबारी होना इज्जत ही नहीं बल्कि राज्य-शक्ति का स्वरूप था। शासन पूर्ण शिथिल था। अधिकतर राजा बोहरों से ऋण लेकर काम चलाते थे क्योंकि परगनों से कभी बचत की रकम नहीं आती थी। कर इकट्ठा अवश्य कर लिया जाता था परन्तु राजकोष में आते आते वह कहीं बीच में ही गायब हो जाता था। न कभी सुनवाई हुई न देखरेख। १८५७ के सैनिक-विद्रोह ने इस शासन प्रणाली की कमजोरिएँ स्पष्ट करदीं। सन् १८६२ में कोटा के तत्कालीन नरेश महाराव रामसिंह ने राज्य-शासन का पुन निर्माण किया।

राज्य को कई जिलों में विभक्त किया गया। प्रत्येक जिले का एक जिलाधीश नियत किया गया। प्रत्येक जिले में से एक लाख मालगुजारी का आना आवश्यक माना गया। जिलेदार को ये कार्य सौंपे गए—मालगुजारी वसूल करना जिले की शान्ति बनाए रखना और न्याय करना। वह सौ रुपये तक जुर्माना कर सकता था व एक मास की कैद दे सकता था। घूम घूम कर वह प्रति सप्ताह जिले का निरीक्षण करता था। प्रत्येक जिले में एक थानेदार नियत किया गया जो जिलेदार के अधीन कार्य करता था। एक थानेदार के अधीन एक उर्दू लेखक एक जमादार और १५ सिपाही रहते थे। जिले में पुलिस चौकियाँ बनाई गईं। अपने क्षेत्र में चोरी डकैती या जुर्म का जिम्मेवार चौकीदार व थानेदार समझा जाता था। आवश्यकता पड़ने पर सिपाहियों की संख्या बढ़ा दी जाती थी। थानेदार को ग्यारह रुपये जुर्माना व १५ दिन की कैद देने का अधिकार था। हर मामले की सूची बना कर दरबार के पास भेजी जाती थी।

कोटा शहर के लिए एक कोतवाल की नियुक्ति की गई। इसको बाईस रुपये जुर्माना और पन्द्रह दिन की कैद का अधिकार दिया गया था। इस से बड़ा मामला होता तो पालकीखाने में फैसला किया जाता। मुकदमे की मिसल

वना कर वह कोतवाली चबूतरे पर रख देना था। कोतवाल के पास एक फारसी जानने वाला अहलकार होता था। शहर मे चोरी न हो, अशान्ति न हो, इसलिए चौकीदारो की नियुक्ति हर मोहल्ले मे होती थी। शहर का सफाई-कार्य भी कोतवाली के सुपुर्द रहता था। राह मे व्यापारियो की सुरक्षा के लिए ठहरने व सुरक्षा-स्थान नियत किए गए। कोटा-झालरापाटन के रास्ते मे हणोत्या, उम्मेदपुरा, और मुकन्दरा के स्थान पर ऐसी सराएँ वनाई गईं। व्यापारियो को अपने पास के नौकरो की सूची राज्य को देनी पडती थी।

न्याय विभाग (पालकीखाना) का सगठन किया गया। कोतवाल और जिलेदार जिनका फैसला नही कर सकते थे, वे मुकदमे यहाँ निर्णीत होते थे। ५०) जुर्माना और एक महिने की कैद का अधिकार पालकीखाने के अध्यक्ष को दिया जाता था। लिखित शिकायत पेश करनी पडती थी। विरोधी पक्ष को परवाने द्वारा वुला कर लिखित रूप से निर्णय किया जाने लगा तथा दरवार की मुहर लगने के वाद निर्णय दिया जाता था। पूरी मिसल पालकीखाने मे सुरक्षित रखी जाती थी। दरवार मे अपील की जा सकती थी। अन्तिम अपील पोलिटिकल एजेन्ट के दफ्तर तक हो सकती थी। इस सुधार घोषणा मे कानून की व्याख्या नही थी। यह कार्य कि कौन-सा कानून है कौन-सा नही, यह सब कार्य कोतवाल, जिलाधीश व पालकीदार पर छोड दिया गया। घूस लेना व देना, लडकी को मारना या वेचना, सती होना घोर अपराध घोषित कर दिए गए।

दफ्तरो का समय निश्चित किया गया। एक पहर दिन चढने पर गढ मे हाजिर होकर तीसरे पहर तक वहाँ काम करना पडता था। शुक्रवार, जन्माष्ठमी, रामनवमी, एकादशी के अवसरो पर व होली-दिवाली दशहरे पर दफ्तर बन्द करने की आज्ञा भी थी। दफ्तरी अनुशासन कडाई के साथ रखने की ताकीद की गई। अफसरो का अपने छोटे कर्मचारियो की सही वात पर ध्यान देने की हिदायत की गई। राज्य-कर्मचारियो की नौकरिएँ लिखित रूप से की जाने लगी। उनके विरुद्ध शिकायत लिखित की गई। इससे नौकरियो मे स्थायित्व आ गया। सेना मे भरती करना या सैनिक को नौकरी से हटाना केवल महाराव के अधीन रखा गया और दरवार मे अर्जी देने का अधिकार एडजुटेन्ड, मेजर, चौधरी और वखसी को दिया गया। सारे देश का खजाना कृष्ण भण्डार मे जमा किया जाने लगा। कोष का अध्यक्ष अलग नियत किया जाता था तथा दैनिक हिसाब सायकाल से पहले दरबार के सामने पेश किया जाने लगा।

सन् १८६३ का यह शासन-सुधार ठीक नही था। कोई जिले छोटे और कोई जिले वडे थे। अत जव नवाब फैजअली दीवान नियुक्त हुआ तो सन् १८७२ में

पुन शासन सुधार किया गया। सम्पूर्ण कोटा को आठ निजामतों में विभक्त किया गया। प्रत्येक निजामत दो तहसीलों में बांट दी गई। प्रत्येक निजामत का प्रधान नाजिम होता था जिसको माल सम्बन्धी दीवानी व फौजदारी अधिकार दिये गए। तहसील का अध्यक्ष तहसीलदार होता था जो नाजिम के नीचे होता था। प्रत्येक तहसील में कम से कम एक थानेदार नियुक्त किया जाने लगा। नाजिम के पास कई अहल्कार होते थे जिनको राज्य की ओर से वेतन मिलता था। नाजिमों को वेतन ८०) तथा तहसीलदारों को ३०) मासिक दिया जाता था।

राज्य के कार्य में सलाह व राय के लिए नवाब फैजअली ने सन् १८७४ में एक कौंसिल का निर्माण किया जिसमें ३ सदस्य थे। इसका कार्य पोलिटिकल एजेन्ट के नेतृत्व में हुआ करता था। यद्यपि वह कौंसिल का प्रधान नहीं होता था। उसका महकमा एजन्टी कहलाता था जो स्वतन्त्र रूप से कार्य करता था और वही १८६३ के बाद कोटा राज्य के शासन का सार्वभौम सत्ताधारी था। एजन्टी के हुक्म को कार्य में परिणित करना कौंसिल का कार्य था।

कौंसिल ने कोटा के शासन को अंग्रेजी शासन की तरह लाने का प्रयास किया। नवाब फैजअलीखां के शासन को १८७७ में परिवर्तित किया गया। आठ निजामतों के स्थान पर १५ निजामतें बनाई गई। राज्य के महकमे पृथक किए गए। दान सीगे का महकमा पुण्यार्थ के नाम से अलग कर राजा के दान खर्च पर रोक लगाई गई।

भूमि के बन्दोबस्त कराने के लिए एक विभाग खोला गया जिससे २० साल में ३ बार बन्दोबस्त कर राज्य की आय में वृद्धि की गई। न्याय के क्षेत्र में १८७३ के सुधार के अनुसार महकमा अदालत आलिया स्थापित किया गया जिसमें स्वयं नवाब फैजअलीखां काम करता था। उसकी सहायता के लिए ३ सदस्यों की कौंसिल बनाई गई जो स्थानीय समस्याओं से उसको परिचित कराती थी। इस महकमे के अधीन दिवानी व फौजदारी अदालतें थीं। हाकिमअदालत की नियुक्ति महाराव करते थे। नाजिमों की तरह दिवानी व फौजदारी अधिकार अदालतों के हाकिमों को दिए गए। १८७७ में इस महकमे की मिसल बनाने का कार्य सुव्यवस्थित व नियमित किया गया। मनुष्यता की दृष्टि से दण्ड और कारागार के नियम बनाए गए। स्त्रियों को कोड़े लगाने का दण्ड उठा दिया गया। कैदियों को भोजन राज्य की ओर से मिलने की व्यवस्था की गई।

जकात के महकमे में सुधार किए गए। पहले यह महकमा सायरात कहलाता था। सन् १८७२ में इसका नाम बदल कर जकात कर दिया। कौंसिल ने इसके

दो केन्द्र—एक कोटा मे और दूसरा बारॉं मे कर दिये। कोटा के जकाताध्यक्ष का एक नायब नियुक्त किया गया। कई जगह नई जकाते स्थापित की। आय-व्यय का व्यवस्थित निरीक्षण किया गया। कोटा राज्य के भीतर लिया जाने वाला महसूल बन्द कर दिया गया। जगल का पृथक विभाग १८८१ ई० मे किया गया। परन्तु बाद मे १८८६ मे माल विभाग के साथ कर दिया गया। माल विभाग १८८३ मे सगठित हुआ। इसका एक अध्यक्ष बनाया गया जिसके सहायक दो उपाध्यक्ष होते थे। एक कोटा मे रहने लगा व दूसरा शेरगढ मे। उपाध्यक्ष के कर्त्तव्य, नाजिमो पर देखरेख व मालगुजारी के नियम बनाए गए।

सेना मे भर्ती के नियम बना कर महाराव के अधीन सैनिक विभाग कर दिया गया। सेना का खर्चा ४ लाख तक बढा दिया गया। पुलिस विभाग पूर्वत बना रहा। कोटा मे एक नई कोतवाली रामपुर मे स्थापित की गई। चोरियो, डकैतियो आदि का नक्शा प्रति मास बनाया जाने लगा। थानेदार के पास से मालगुजारी का अधिकार हटा लिया गया। पुलिस के अध्यक्ष का पद बनाया गया और पुलिस प्रबन्ध के लिए कोटा के तीन भाग किए गए। प्रत्येक भाग मे एक उपाध्यक्ष होता था।

१९४७ मे इस राज्य मे कुल १९ निजामते थी—लाडपुरा, कन्वास चेचट, बीगोद, बडौद, इटावा, बारॉं, किशनगज, शाहबाद, कुजैड, अन्ता, मॉंगरौल, सॉंगोद, इक्लेरा, छीपाबडौद, मनोहर थाना, बकानी, असनावर, और खानपुर।

आय खर्च—

इस राज्य मे चार कस्बे और २५२५ गाव थे। न्यूनाधिक आय ५०,४७,-३४९ रुपया वार्षिक थी और खर्च ५३,५१,९४२ रुपया वार्षिक था। राज्य की तरफ से अग्रेज सरकार को २३४,७२० रुपया मालाना खिराज दिया जाता था। इसके अलावा पहले दो लाख रुपया देवली छावनी के रिसाले के खर्च के भी अग्रेजी सरकार को दिए जाते थे। सन् १९२३ से सेना वहॉं से हटा दी गई। कोटा राज्य को १४७३९।।।=।।। रु० (जयपुर झाडशाही सिक्को मे) जयपुर राज्य को ८ कोटडियो के खिराज के देने पडते थे।[1] ई० सन् १८२३ मे कोटा के

---

१ ये आठ कोटडियें हाडो की हैं। इनके जागीरदार बून्दी राज्य के अधीन रणथम्बोर के किले की हिफाजत करते थे। यह किला उन दिनो मे दिल्ली सल्तनत के किलो मे था। १९वी शताब्दी के आरम्भ मे जब मरहठो ने रणथम्बोर को घेर लिया तो वहॉं के मुसलमान किलेदार ने दिल्ली सहायता के लिए लिखा परन्तु वहॉं से कोई मदद नही मिली इसलिए किलेदार ने जयपुर के महाराजा माधोसिंह की सहायता प्राप्त करके मरहठो को हराया और किला माधोसिंह को दे दिया। तब से इन कोटडियो पर माधोसिंह का अधिकार हो गया। इनमे खिराज वसूल करने के लिए जयपुरी सेना हाडौती मे आया करती थी जिससे कोटा को नुकसान होता था।

शाखा तथा मध्य रेलवे की बीना कोटा शाखा का जङ्क्शन है। यह दिल्ली से २६१ मील, बम्बई से ५७० मील तथा जयपुर से १४६ मील रेल द्वारा है। पश्चिम रेलवे का डिवीजनल कार्यालय भी कोटा मे ही रक्खा गया है।

कोटा नगर का नाम १४ वी शताब्दी मे कोटिया भील के नाम पर पडा। तब यहाँ भीलो का राज्य था। वि० स० १३२१ (१२७४ ई०) मे बून्दी के जेतसिंह ने भीलो को हरा कर अपना राज्य स्थापित किया। परन्तु हाडा राजपूतो के स्वतन्त्र राज्य के रूप मे वि० स० १६८८ (सन् १६३१) मे शाहजहाँ के काल मे राव माधोसिह ने स्थापित किया था। तब से यह हाडा राज-

कोटा नगर
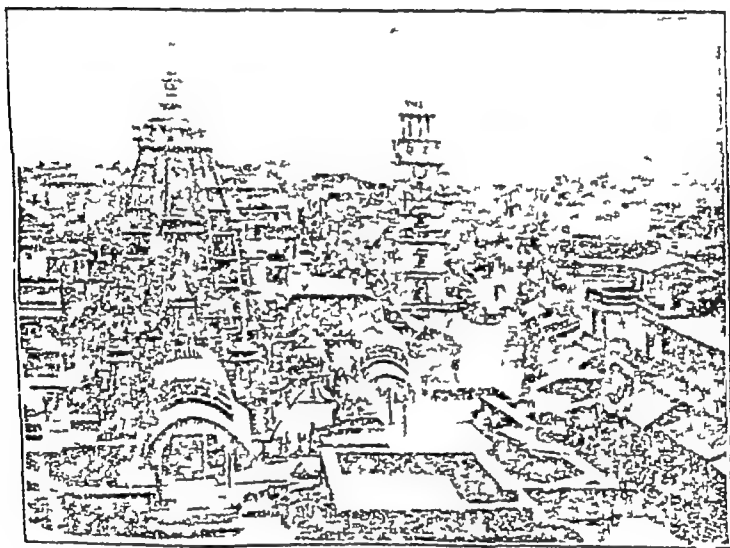
पूतो की माधाणी खाप का राजनैतिक केन्द्र १६४८ ई० तक रहा। नगर से दक्षिण की ओर चम्बल नदी के दाहिने तट पर दो दुर्गो के खण्डहर हैं जिनको अकेलगढ कहा जाता है। ऐसा प्रचलन है कि ये भीलो के दुर्ग थे लेकिन बाद मे भीलो के सरदार कोटिया ने कोटा बसाया तो इन दुर्गो को छोड दिया। ये दुर्ग सुरक्षा के लिए पूर्ण उपयुक्त नही थे।

कोटा नगर के तीन ओर ऊँची ओर पक्की शहर पनाह है जो अब तोडी जा रही है। चौथी ओर पश्चिम मे चम्बल नदी बहती है जिसका पाट लगभग ४०० गज चौडा होगा। शहर के दक्षिणी कोने पर पुराना महल है जो नदी पर से दिखाई देता है। दक्षिण पूर्व की ओर एक सुन्दर लम्बी-चौडी झील है जिसमे नावें चलती है जिसके चारो ओर सडक है। इस झील के पास ही कोटा का

बृहत सार बाग (राजघराने का श्मशान) है जहां राव महारावों तथा उनके कुटम्बियों को जलाया जाता है। उन पर बनी हुई छतरियें देखने योग्य हैं।
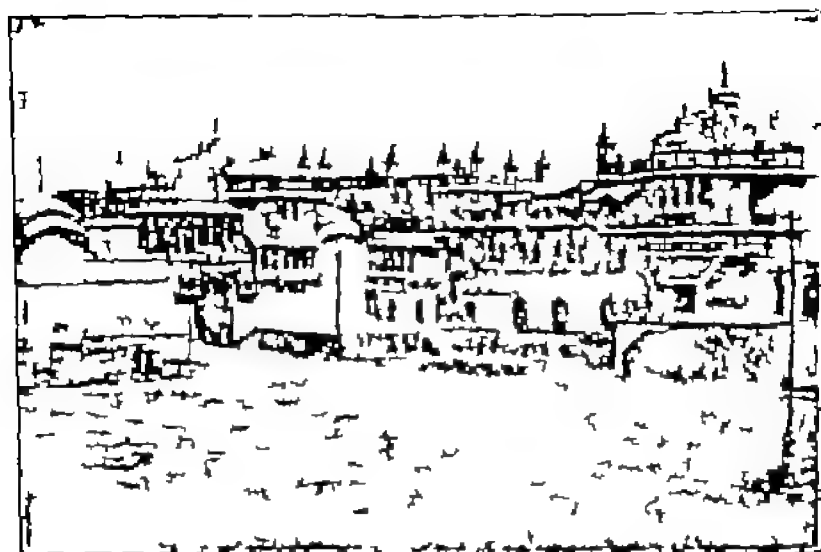
पुराने महल कोटा

कोटा नगर में दो मन्दिर दर्शनीय हैं। ये मन्दिर मथुराधीश और नीलकण्ठ महादेव के हैं। मथुराधीश वल्लभ सम्प्रदाय के सात स्वरूपों में सर्व प्रथम माने
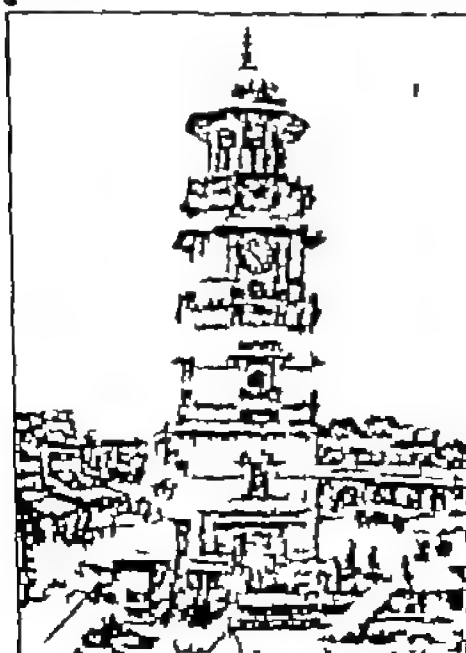
कोटा का घण्टाघर

जाते है। यह मन्दिर पाटनपोल दरवाजे के पास हैं। मथुराधीश की प्रतिमा गोकुल के पास करणावल गाँव से मिली थी। इसको बल्लभाचार्य ने अपने शिष्य पद्मनाभ के पुत्र विट्ठलनाथ को दी। उसने यह प्रतिमा अपने ज्येष्ठ पुत्र गिरधर को दी जो उसकी बराबर पूजा करता रहा। वि० स० १७२६ की आसोज शुक्ला १५ को यह प्रतिमा औरगजेब के अत्याचारो से बचने के लिए बून्दी लाई गई। बाद मे वि० स० १८०१ मे कोटा नरेश दुर्जनशाल इसे कोटा ले आए। उस समय के दीवान द्वारकादास की हवेली मे यह मूर्ति स्थापित की गई। तब से कोटा बल्लभ-मतानुयायी वैष्णवो का तीर्थस्थान वन गया है। नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर किशोरपुरा द्वार के पास भूमि की सतह से नीचा बना हुआ है।

मन्दिर, कोटा नगर

नगर के पास ही लगभग दो मील पर अमरनिवास बाग और महल है।
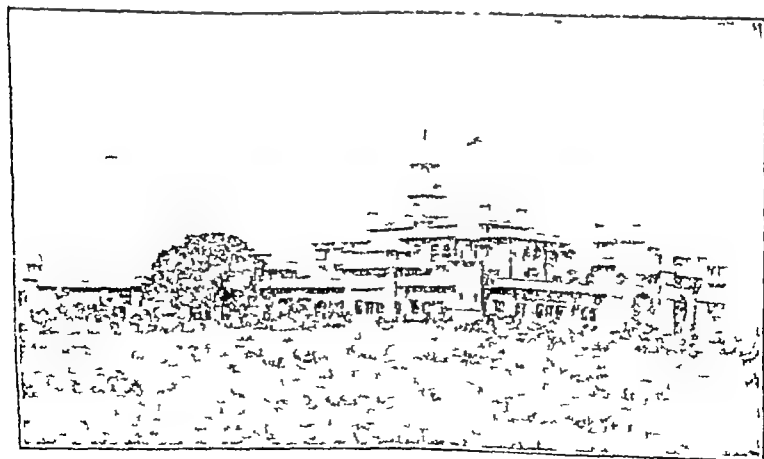
नया महल, कोटा

इसके पास ही एक दरगाह है जिसके झरोखे के ऊपर एक सैकड़ों मन भारी चट्टान बहुत ही साधारण सहारे के खड़ी है। यह अधरशिला कहलाती है। इस झरोखे से नदी का दृश्य बहुत सुन्दर लगता है।

कोटा से चार मील पूर्व की ओर कन्सुआ नामक छोटे से गांव में शिव मन्दिर में एक शिलालेख है जो मौर्य्यवंशी राजा शिवगण का वि० सं०
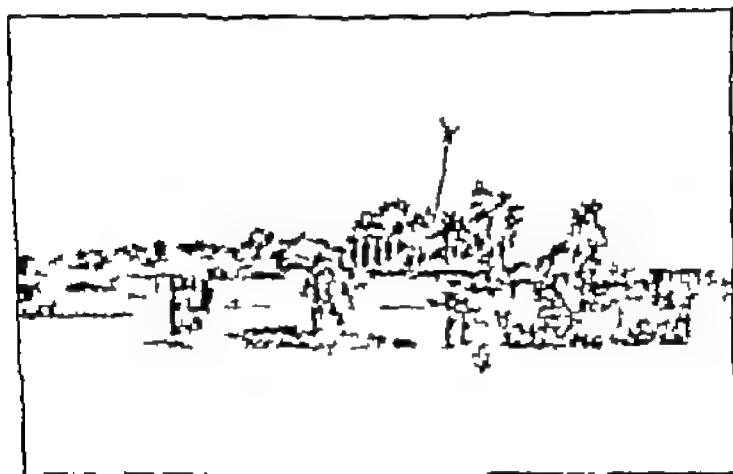
कोटा का तालाब

७९५ का है जिसमें इस मन्दिर के निर्माण का वर्णन किया गया है। वि० सं० १७५१ की कार्त्तिक सुदि १५ मङ्गलवार को इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया गया तथा परकोटा बनाया गया जैसा कि इस मन्दिर के द्वार पर लगे शिलालेख से ज्ञात होता है।

महाराणी मन्दिर कोटा

नगर से एक मील की दूरी पर रामचन्द्रपुरा की छावनी है। सन् १८३७ के बाद राज्य की सेना जो 'कोटा कोन्टीनजेन्ट' के नाम से प्रसिद्ध थी—यहाँ रहती थी। बृजविलास बाग मे यहाँ का सग्रहालय तथा पुस्तकालय है। सग्रहालय मे लगभग २५० कलापूर्ण प्राचीन मूर्तिया, दर्जनो शिलालेख, सिक्के, चित्र, शस्त्र
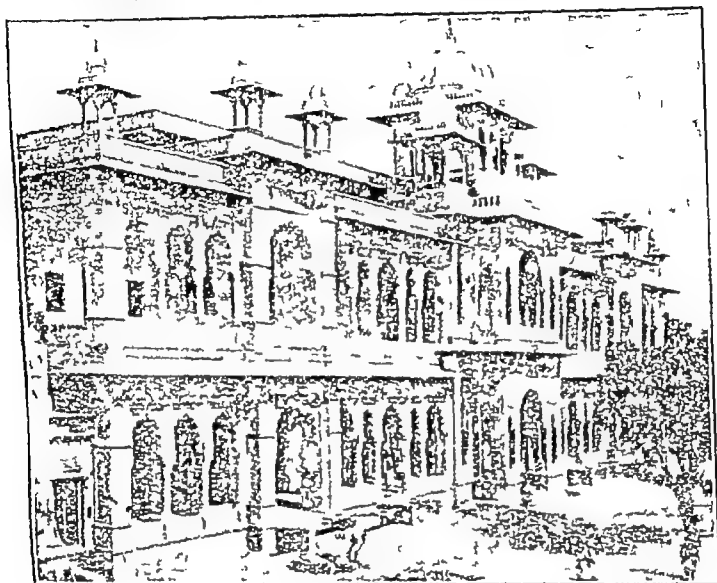
कर्जन लिली मेमोरियल, कोटा

आदि हैं। पुस्तकालय मे लगभग ४००० प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। इनमे से ४०० अप्रकाशित हैं। कई हस्तलिखित ग्रन्थ बहुत सुन्दर लिपि मे लिखे गये हैं या चित्रित हैं।

कन्सुआ—कोटा से चार मील पूर्व की ओर कन्सुआ (कणस्वा) का वीरान गाव है। यहा आठवी शताब्दी का महादेव का एक मन्दिर है। इस मन्दिर के शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि यह मौर्य शासक शिव गण ने सम्वत् ७९५ (ई० सन् ७३८) मे इस मन्दिर का निर्माण किया था। मौर्यों के प्रभाव मे राजपूताना रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार वि० स० १७५१ मे कराया गया था।

गैपरनाथ महादेव—कोटा मे ९ मील दक्षिण की ओर रतकाकरा गाव के पास गैपरनाथ महादेव का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ का झरना बारह मास बहता है। मन्दिर की प्रतिष्ठा वि० स० १६३६ मे हुई थी जिसका यहाँ एक शिलालेख लगा हुआ है।[1]

---

१ गैपरनाथ का शिलालेख—सम्वत् १६३६ आदितवार बावाजी श्री दामोदरपुरी गैपर यानि धर्मशाला कुदाई अमल कोट महाराज कवर श्री भोजजी कु वधाई।
डा० मथुरालाल शर्मा, परिशिष्ठ सख्या ८

चार चौमा—कन्वास तहसील की उत्तरी सीमा के पास ४ गांव चौमा कोट चौमा मीणू चौमा मालियान व चौमा मुखली हैं। इसमें चौमा कोट में महादेव का गुप्तकालीन प्राचीन मन्दिर है। यहां पर शिवरात्री को बड़ा मेला लगता है। इस मन्दिर का बहुत बार जीर्णोद्धार हुआ था अतः इसकी प्राचीनता समाप्त हो गई है। मन्दिर के भीतर एक स्तम्भ पर तथा द्वार के बाईं ओर की दीवार पर संस्कृत में गुप्तकालीन लिपि में शिलालेख है।[1] मन्दिर के अन्दर गुप्तकालीन एक शिवलिङ्ग है।

अटरू—यह अटरू तहसील का मुख्य स्थान है। कोटा से ४८ मील पूर्व की ओर पार्वती नदी के किनारे बसा हुआ है। इसके बाजार में भैंसाशाह का बनाया हुआ मन्दिर है। इसकी मूर्ति पर वि० सं० ५०८ की चैत्र सुदि ५ मंगलवार खुदा है। कस्बे के बाहर एक खण्डित मन्दिर है जिसमें केवल ४ स्तम्भ बचे हैं। इसके स्तम्भ पर वि० सं० ११११ का परमार राजा जयसिंहदेव द्वारा एक कवि चक्रवर्ती पण्डित मोती को भैंसड़ा नामक गांव के दान का उल्लेख है। यह मन्दिर दसवीं शताब्दी के आसपास का बना हुआ प्रतीत होता है। यहां की ज्यादातर मूर्तियां अब कोटा के संग्रहालय में हैं। यहां दो और भी मन्दिर हैं जो गडगच के मन्दिर कहलाते हैं। ये मन्दिर भी १०वीं शताब्दी के हैं। इनको ई० सन् १६८ में औरंगजेब ने ढहवा दिया।

रामगढ़—यह तहसील किशनगंज में मांगरोल से ६ मील पूर्व की ओर सड़क के किनारे बसा छोटा सा गांव है। इस गांव का पुराना नाम श्रीनगर कहा जाता है। यहां की पहाड़ी पर एक १५वीं शताब्दी का पुराना टूटा-फूटा दुर्ग है। पहाड़ों से घिरे जंगल में एक भण्डदेवरा नामक शैव मन्दिर भी है। यह दसवीं शताब्दी का है तथा इसका जीर्णोद्धार तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक मेद वंशीय क्षत्रिय राजा मलय ने करवाया था। इस मन्दिर के शिखर मण्डप तोरण आदि प्रौढ़ हिन्दू कला के सुन्दर उदाहरण हैं। शिखर का आधा भाग गिर चुका है। यहां पहाड़ी पर कृष्णा माता का एक अन्य मन्दिर है। इस पर

१—(१) मुख्य 'यशो जयप्रति कृति सिम नमत्पर भुजम्
(२) मामाव' सम्प्रदायव धिम नभृ' माम्न्य
(३) भने 'गुणाम्बितोप बपुषाम्
(४) प्रजाधान मर्वस्पहृत पुरिष पूने ममवना
(५) नम' स्थाम स्वीनी मन्त त्वं प्राणाधिने प्रीतो वधीषा
(१) पापेदा' न
(११) तथा १९—इपरीतन परिशिष्ट में १

पहुँचने के लिए ७०० सीढ़ियां चढ़नी पड़ती है। रामगढ़ से प्राप्त अनेक मूर्तियां अब कोटा संग्रहालय में रखी हुई हैं। रामगढ़ की पहाड़ी तपःस्थली मानी जाती है।

कृष्णविलास—किशनगंज तहसील में विलास नदी के बाएँ किनारे पर कृष्णविलास नगर के खण्डहर हैं। खण्डहरों से ज्ञात होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग यह एक बहुत ही वैभवशाली नगर रहा होगा। यहां एक प्राचीन दुर्ग है जिसके केवल खण्डहर बच गए हैं। दुर्ग के समक्ष कभी वराह मन्दिर रहा होगा जो अब टूट फूट गया है। वराह की मूर्ति विशाल है और गुप्तकाल की प्रतीत होती है। मन्दिर का सिर्फ रत्न-गृह भाग ही शेष रह गया है जिसकी छत एक ही शिलाखण्ड की बनी हुई है और उसके अन्दर के हिस्से में सुन्दर बेलबूटे खुदे हुए हैं। इस स्थान के खण्डहर और नगर से प्राप्त कई अलङ्कारपूर्ण मूर्तियां कोटा संग्रहालय में देखी जा सकती हैं।

भीमगढ़—तहसील छीपाबड़ौद में सारथल नामक एक बड़ा गाँव है। इस गाँव से लगभग तीन मील दूर परवण नदी के किनारे पर एक प्राचीन दुर्ग तथा तीन मन्दिरों के खण्डहर पाए गए हैं। ये खण्डहर लगभग एक हजार वर्ष पुराने हैं। ये मन्दिर व दुर्ग आठवीं शताब्दी के पूर्व के प्रतीत होते हैं। दो मन्दिरों के प्रत्येक स्तम्भ पर भीमदेव का नाम अङ्कित है जिसके नाम पर इस नगर का नाम भीमगढ़ पड़ा है। इन मन्दिरों में खुदाई व सुन्दर पच्चीकारी का काम किया हुआ है।

माँगरोल—यह कोटा नगर से ३५ मील उत्तर पूर्व में पार्वती नदी की शाखा बाणगंगा के दाहिने किनारे पर बसा हुआ है और निजामत मांगरोल का सदर मुकाम था। व्यापारिक दृष्टि से यह कस्बा घना बसा हुआ था। इसकी आबादी पांच हजार के लगभग थी। वि० सं० १८७८ आसोज सुदि ५ (ई० सन १८२१ की १ अक्टोबर) को महाराव किशोरसिंह और उनके फौजदार झाला जालमसिंह में युद्ध इसी नगर में हुआ था। इस युद्ध में महाराव हार कर नाथद्वारा भाग गए थे। उनके भाई पृथ्वीसिंह व दो अंग्रेज अफसर लेफ्टीनेन्ट क्लार्क व रीड यहां "बापजी राज" के नाम से काम आए। इनकी समाधिएँ गाँव से कुछ दूर पूर्व में नदी के किनारे पर बनी हुई हैं।

माँगरोल से तीन मील दक्षिण की ओर सड़क के किनारे भटवाड़ा नामक एक गाँव है जहाँ पर कोटा की सेना ने जयपुर महाराजा माधोसिंह को ई० सन् १७६१ में बुरी तरह हराया था। इसी युद्ध में झाला जालिमसिंह ने जिस वीरता

का परिचय दिया उससे उसकी राजनैतिक उन्नति का युग प्रारम्भ होता है। कोटा वालों ने जयपुर से पचरंगा झण्डा इसी स्थान से प्राप्त किया था।[1]

मुकन्दरा—कोटा शहर के दक्षिण में ३२ मील के फासले पर दर्रा स्टेशन से लगभग दो मील दूर पहाड़ों के बीच में बसा हुआ यह एक छोटा सा गांव है। इसका नाम महाराव मुकुन्दसिंह हाड़ा (वि० सं० १७ ४–१७१५) के पीछे मुकन्दरा पड़ा। गांव के पास दो पहाड़ों के बीच में जहां दर्रे की घाटी प्रारम्भ होती है मुकुन्दसिंह ने एक बहुत बड़ा फाटक बनवाया और अपनी उप-पत्नि अबला मीणी के लिए महल वि० सं० १७०८ में बनवाया।[2] इसी घाटे में से रेल मार्ग व पक्की सड़क निकाली गई है। यहां कई बार खीचियों और हाड़ों में युद्ध हुआ। सन् १८ ४ ई० में जसवन्तराव होल्कर ने कर्नल मानसन की फौज को यहीं तितर-बितर किया था। घाटे के कुछ दूर पर चवरी या भीम की चौरी नाम का मन्दिर है। इस चवरी (बारहदरी) के खण्डहरों को फर्गुसन साहब ने
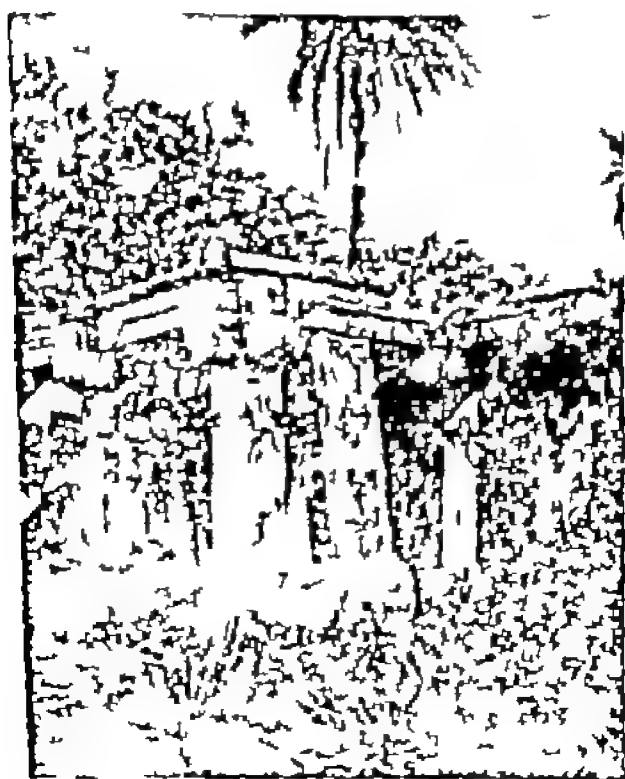
भीमचौरी (मुकन्दरा) कोटा

१—[illegible] जिल्द द्वितीय पृ० २८६
२—एरस्कीन गजेटियर राजस्थान पृष्ठ १८६

इसे ई० सन् ४५० से पूर्व का बतलाया है। इस मन्दिर की खुदाई बडी बारीकी से की गई है। इसमे फूलो और पशुओ की आकृतिया बनी हुई हैं। मन्दिर के अन्दर का भाग कलामय उत्कीर्ण फूल पत्तो से अलकृत है। मन्दिर के स्तम्भ पर गुप्तकालीन लिपि मे ध्रुवस्वामी[1] का नाम खुदा हैं। यह मन्दिर गुप्त वास्तु-कला का सुन्दर उदाहरण है।

बारां—पार्वती नदी की शाखा बाण गगा के बाएँ तट और कोटा शहर से ४५ मील पूर्व की ओर बसा हुआ है। इसी नाम की निजामत का यह सदर मुकाम रहा है। यह व्यापार की एक बहुत बडी मण्डी है। यहाँ रेलवे का स्टेशन भी है। १९५१ की जनगणना के आधार पर यहाँ की जन-सख्या २०,४१९ थी। ईसा की १४वी शताब्दी मे यह कस्बा सोलंकी राजपूतो के अधिकार मे था और उसके अन्तर्गत बारह गाँव होने से यह 'बारां' कहलाया। अनाज और अलसी का यहा मुख्य व्यापार होता है। सन् १९०४ मे यहाँ अग्रेज सरकार का अफीम का गोदाम खोला गया था जहाँ से विभिन्न स्थानो को अफीम भेजी जाती थी। यहाँ कल्याणरायजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसीसे मिली हुई मसजिद भी है।

गागरोन—यह प्रसिद्ध स्थान कोटा शहर से ४५ मील दक्षिण पूर्व मे और झालावाड नगर से तीन मील उत्तर पूर्व मे है। यहाँ का किला कालीसिन्ध और आहू नदियो के सगम पर एक छोटी पहाडी पर बसा हुआ है। इसके तीन ओर कालीसिन्ध नदी है। यहाँ पर कालीसिंध अधिक गहरी व भयकर पहाडियो मे से होकर बहती है। राजस्थान के किलो मे इसका स्थान प्रमुख है। भौगोलिक दृष्टि व सामरिक दृष्टि से इस किले का महत्व मध्य काल मे इतना बढ गया था कि कोटा राज्य की सुरक्षा पक्ति का पहला स्तर यही था। किले के पास ही गाँव बसा हुआ है। इस किले को डोड (डोडिये) वश के राजपूतो ने बनवाया था जिनके अधिकार मे यह १२ वी शताब्दी तक रहा। यही कारण है कि इसे डोड-गढ भी कहा जाता है। खटकड के खीची राजा देवसी ने अपनी बहन गगाबाई की शादी यहा के शासक बीजल डोडिया से की थी। बहन की सहायता से खीची देवसी ने बीजल को मार कर इस गढ पर अधिकार कर लिया था। कहते हैं कि देवसी ने अपनी बहन का नाम चिरस्थायी करने के लिए किले का नाम डोडगढ (डोलरगढ) से बदल कर गगारूण (गगारमण) कर दिया और इसे अपनी राज-धानी बनाया। यहाँ के राजा जैतसिंह खीची ने वि० स० १३०० मे बादशाह अलाउद्दीन के घेरे का सफलतापूर्वक मुकाबला किया परन्तु वि० स० १४८४

१—यह ध्रुवस्वामी बाद के गुप्तो का योद्धा था और हूणो से युद्ध करता हुआ काम आया था। डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २५

(ई० सन् १४२६) में राजा अचलदास खीची के समय मालवा के सुल्तान हुसैन शाह ने यह किला जीत लिया लेकिन सन् १४२८ में अचलदास ने पुनः इस किले पर अधिकार कर लिया और सन् १४४८ तक इसे अपने अधिकार में रक्खा। ई० १५१६ में यहाँ भीमकर्ण शासक हुआ परन्तु मालवा के शासक महमूद खिलजी ने इस पर आक्रमण किया। राजा भीम हार गया। वह कैद कर लिया गया और मार डाला गया। कुछ ही काल बाद सम्वत् १५२१ में उदयपुर महाराणा संग्रामसिंह ने महमूद खिलजी को हरा कर इस किले पर अधिकार कर लिया। सन् १५१२ तक यह किला सिसोदिया राजपूतों के अधिकार में रहा। सन् १५२८ में महाराणा साँगा की मृत्यु हुई। सन् १५३२ में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। उसी समय गागरोण पर गुजरात के बादशाह का अधिकार हो गया। सन् १५६० में जब मालवा पर अधमखाँ (अकबर का धाभाई) ने आक्रमण किया तो गागरोण मुगलों के हाथ आ गया।[1] अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यह किला मुगलों के अधिकार में रहा। औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली की राजनीति में उथल-पुथल होने लगी। बहादुरशाह की मृत्यु के बाद सैय्यद भाईयों का मुगल राजनीति में प्रभाव बढ़ा। उनको सहायता देने के उपलक्ष में सैय्यद भाईयों ने महाराव भीमसिंह (सम्वत् १७६४ १७७७) को गागरोण का किला दे दिया। तब से यह किला हाडा राजपूतों के अधीन रहा। कोटा के प्रधान मन्त्री झाला जालमसिंह ने इस किले की मरम्मत कराई तथा अपना बारूदखाना तथा रिजर्व सेना का कैम्प यहाँ रक्खा। इसी के पास छावनी बसाई यहाँ कोटा की सेना का मुख्य केन्द्र हो गया।

कोटा दरबार की गद्दी पर पहले टकसाल थी जहाँ मुगलाई सिक्के ढलते थे। यहाँ के तोते अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इस किले पर अनेक लड़ाइयाँ हुई। किले में मिठा शाह की दरगाह[2] भी है जिसके दरवाजे की बाईं दीवार पर फारसी में एक शिलालेख लगा हुआ है जिससे प्रगट होता है कि मियाँ मुअज्जम और मियाँ बजहीन खाँ महलमी ने हि स ७५ के जिल्हीज (वि स १४ ७ फाल्गुण = फरवरी १३५० ई) म यह गुम्बज बनाया था। दूसरा लेख हि र्स ९८७ जिल्हीज (वि स १६३७ माघ = ई र्स १५८ जनवरी) का बीकानेर के

१ आइने अकबरी में अबुलफजल ने गागरोण को मालवा का मुख्य जिला लिखा है।

२ यह दरगाह हिन्दू शैली पर बनी है। सम्भव है बनाने वाले कारीगर हिन्दू हों। दरगाह की पच्चीकारी बारीकी से की गई है।

राठौड कल्याणमल के पुत्र सुल्तानसिंह का है जो उस समय गागरोण का हाकिम था। उस समय उल्वी खाँ के पुत्र मियाँ ईसा द्वारा दरवाजा बनवाए जाने का उल्लेख है। तीसरा लेख हि स ९९१ मोहर्रम (वि. स. १६४० मार्च १५८३ ई) का यहाँ के हाकिम राठौड सुल्तान के समय का है। इससे पाया जाता है कि छत्री थानेश्वर निवासी उल्वी खाँ के पुत्र मियाँ ईसा ने बनाई थी। किले मे अनेको शिलालेख मिले है जो इस किले के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। किले मे दुर्गा, गणेश, शिव आदि की कई मूर्तियाँ है।

मोठपुर—कोटा राजधानी से ५० मील पूर्व और शेरगढ से ७ मील पूर्व की ओर यह एक बडा गॉव है। यह अटरू तहसील मे है। कुछ समय से यहाँ की राम बावडी का जल कई प्रकार की बीमारियो को दूर करने के लिए बडा प्रसिद्ध था। यहाँ शक्तिसागर नाम का एक तालाब है जिसे धारू खीची ने खुदाना प्रारम्भ किया था और उसके बेटे शक्तु ने पूरा करवाया। इसके पास ही खीचियो का छार बाग है। उसमे एक बावडी के कीर्ति-स्तम्भ पर वि स. १५५७ अगहन वद ५ सोमवार का एक लेख है। उसका भावार्थ यह है कि श्री राज श्री धारूदेव के बेटे शक्तुदेव के भाई कुम्भदेव का बेटा श्री वर्मदेव की राणी रावतसिह की पुत्री उमादे ने बावडी बनवाई। एक अन्य शिलालेख है। उसका भावार्थ नीचे लिखे अनुसार है। स १५५० (शाके १४१५) आसाढ सुदि १०, सोमवार (८ जुलाई १४९३ ई) को राजाधिराज श्री धारूदेव खीची जायलवाल के साथ धीरादे (धीरा देवी) बागडनी और सूरतदे कछवाही सती हुई।

स. १५५५ शाके १४२० श्रावण वदि १० शनिवार (ई सन् १४९८ की जुलाई) को मोठपुर का राजा श्री कुम्भदेव धीरादेव खीची जायलवाल का बेटा देवलोक हुआ जिसके साथ राणी कछवाही, राणा छात्रवति और दो सोलकी राणिएँ सती हुई।

मोठपुर मे दस्तकारी की चीजे अच्छी बनती हैं। भादो सुदि ७ को यहा तेजाजी का मेला लगता है। कहा जाता है कि मारवाड के तेजाजी मालवा जाते समय और लौटते समय यहा से गुजरते थे।

मनोहर थाणा—परवन नदी के किनारे यह कस्बा बसा हुआ है। इसी नाम की तहसील का सदर मुकाम है। इसे पहले खाताखेडी कहते थे। मुगल बादशाहो ने नवाब मनोहर खाँ को अन्य गाँवो के साथ यह भी जागीर मे दिया था जिसने इस गाँव को अपने नाम पर बसाया। उसके बाद यह भीलो के

६०० भील तथा ३०० हाडा सिपाही मारे गए। कोट्या युद्ध से भाग गया और भील क्षेत्र पर बून्दी के हाडो का अधिकार हो गया[1] लेकिन समरसी के बून्दी लौटते ही सम्भवत भीलो ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने का पुन प्रयास किया होगा। क्योकि सूर्यमल मिश्रण और टॉड दोनो ही इस बात का उल्लेख करते है कि कोटा को पुन प्राप्त करने का श्रेय समरसी के तीसरे पुत्र जैतसिह को जाता है। वशभास्कर मे उल्लेख है कि समरसी ने अपने पुत्र जेतसिह का विवाह कैथुन के तॅवर सरदार की पुत्री से कर दिया। जैतसिह महत्वाकांक्षी राजकुमार था। उसने अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजना बनाई और अकेलगढ के भीलो पर आक्रमण किया। इस आक्रमण मे उसे अपने श्वसुर और पिता दोनो की सहायता प्राप्त थी। भीलो को नष्ट करने मे जेतसी ने उन्ही उपायो को काम मे लिया जिनके द्वारा देवसिह ने मीणो से बून्दी छीनी थी[2]। इस युद्ध मे जैतसिह के पक्ष मे सैलारखाँ नामक पठान भीलो के विरुद्ध लडता हुआ मारा गया। इस प्रकार सम्वत् १३२१ (१२७४ ई)[3] मे अकेलगढ के भीलो को मार कर जैतसिह ने कोटा नगर पर अधिकार किया[4]।

जैतसिह के इस पराक्रम से प्रसन्न होकर राव समरसी ने कोटा जैतसिह को दे दिया। तब से कोटा बून्दी के राजकुमार की जागीर मे रहने लगा। कोटा पर हाडा चौहानो का शासन तब ही से चला आ रहा है और जब राव माधोसिह ने कोटा को बून्दी से स्वतन्त्र करा लिया तो हाडो की इस शाखा को माधाणी हाडा कहा जाने लगा। कालान्तर मे हाडाओ की यह शाखा अपने मुख्य शाखा को पृष्ठभूमि मे रख कर प्रभावशाली हो गई।

समरसी की मृत्यु के पश्चात् उसका बडा लडका[5] नापू बून्दी की गद्दी पर बैठा। जैतसिह कोटा मे राज्य करता रहा। जैतसिह ने अपने बडे भ्राता की अधीनता

---

१ वशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ १६७८-७९।

२ मीणो के साथ देवसिह का विश्वासघात डा मथुरालाल कृत कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ५८।

३ टाड के अनुसार १४२३ वि०स०।

४ वशभास्कर तृतीय भाग, पृ १६७९। ठाकुर लक्ष्मणदास—कोटा राज्य का इतिहास। डा० मथुरालाल शर्मा—कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ ६२। टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ १४६८। टाड वर्णन करता है कि जैतसिह तॅवरों के यहा से लौट रहा था तब भीलों पर चम्बल घाटी के क्षेत्रो के निवासियो ने अचानक आक्रमण कर दिया। इस घाटी के प्रमुख द्वार पर जेतसिह ने भीलो के नेता को मार कर वहाँ पर एक हाथी (कालभैरो के लिए) निर्मित किया। यह कोटा गढ के मुख्य द्वार के पास चार झोपडे मे स्थित है।

५ समरसी के ३ पुत्र थे—१ नेपुजी, २ हरपाळ, ३ जेतसी।

हाथ लगा जिन्होंने एक मजबूत गढ़ बनवाया जो आज तक विद्यमान है। भीलों से यह महाराव भीमसिंह हाड़ा के अधिकार में आया। इसका परकोटा फौजदार जालिमसिंह झाला ने बनवाया था। किले के नीचे पर्बन और कालीसिंध नदियाँ शामिल होकर एक बहुत बड़ा कुण्ड बनाती हैं।

रासावेई—असनावर कस्बे से चार मील उत्तर की ओर पहाड़ों के बीच बडिगा चाचर नाम का भीलों का एक छोटा सा गाँव है। यहाँ के मानसरोवर नाम के एक सुन्दर तालाब के पूर्वी किनारे पर रासादेवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ के पुजारी कहते हैं कि जिस देवी का रक्तदन्त का वर्णन मार्कण्डेय पुराण में है वह यही देवी है परन्तु इस प्रान्त के लोग इसको खीची राजा अचलदास की बहिन बताते हैं। निज मन्दिर तो अचला खीची का बनवाया हुआ था। सामने का मण्डप फौजदार जालिमसिंह झाला का तैयार कराया हुआ है। कहते हैं कि मानसरोवर तालाब के दक्षिणी किनारे पर किसी समय श्रीनगर नाम का कस्बा आबाद था। कुछ खण्डहर उसी कस्बे के अवशेष के रूप में अब भी बिखरे पड़े हैं। इन खण्डहरों में तीन मन्दिर हैं। सबसे बड़ा मन्दिर महादेव का है जिसको किसी ग्वाले ने बनवाया था। मानसरोवर के दक्षिण तरफ के खण्डहर के शिलालेख से ज्ञात होता है कि यह वैष्णव मन्दिर था जिसको शाह दामोदर ने वि० १४९६ कार्तिक बदि १ (ई० सन् १४३९ तारीख ८ अक्टूबर मंगलवार) को बनवाया था। कहते हैं कि यह कस्बा मऊ के खीची राजाओं का मुख्य स्थान था। तालाब के किनारे पर के चबूतरों व छत्रियों में से कई पर शिलालेख लगे हुए हैं। एक चबूतरे पर चरणपादुका का चिन्ह है और उसके नीचे 'चरणपादुका नाथ की' लिखा है। परन्तु इस लोग अचलदास खीची का मृत्यु-स्मारक बताते हैं। अचलदास खीची का देहान्त सं० १४८४ की माघ बदि १२, (१३ जनवरी १४२८) मंगलवार को हुआ। यहाँ सतियों के कई स्मारक बिखरे पड़े हैं। तालाब से दो मील पश्चिम में उजाड़ नदी के दाहिने तट पर खीची राजाओं के बनवाए महलों और मन्दिरों के भग्नावशेष हैं। पहाड़ी की टेकरी पर किले का दरवाजा अकेला खड़ा है जिसे हथियापोल कहते हैं।

शेरगढ़—यह कोटा से ५ मील दक्षिण में पर्बन नदी के किनारे पहाड़ के निकट बसा है। पहले यह निजामत का मुख्य स्थान था लेकिन अब अटरू तहसील में है। यह कस्बा सातवीं शताब्दी से पहले का बसा हुआ है। इसको प्रारम्भ में कोषवर्धन कहते थे जैसा कि यहाँ से प्राप्त शिलालेख से ज्ञात होता है। यहाँ से प्राप्त वि० सं० ८७ माघ सुदि ६ के शिलालेख से पता लगता है कि यहाँ के नागवंशी राजा देवदत्त ने जो स्वयं बौद्धमतानुयायी था एक बौद्धविहार

वनवाया था। इस कस्बे मे लक्ष्मीनारायण के मन्दिर मे शिलालेख भी मिला है। एक शिलालेख मे धार के परमार नरेश वाक्पतिदेव से उदयादित्य तक की वशावली दी हुई है। इस शिलालेख से प्रतीत होता है कि यह मन्दिर पहले सोमनाथ का था पर कैसे व कब लक्ष्मीनारायण का मन्दिर हो गया यह प्रतीत नही होता है। यहाँ तीन टूटी जैन मूर्तिया भी मिली हैं जो एक राजपूत सरदार ने ११ वी शताब्दी मे बनवाई थी। यहा पहले नागवशी शासन करते थे। फिर यह डोड राजपूतो के अधिकार मे आया जिनसे खीचियो ने छीन लिया। शेरशाह ने इसे जीत कर इसका नाम शेरगढ रक्खा। यहा का किला परमार काल से चला आ रहा है। कई सौ वर्षों तक यह किला मुगलो के अधीन रहा। परन्तु सैय्यद भाइयो का पक्ष लेकर जब महाराव भीमसिंह ने फरूखसियार को दिल्ली का सम्राट वना दिया तो फरूखसियार ने इस किले को भीमसिंह को दे दिया। फौजदार जालिमसिंह ने इसका जीर्णोद्धार करा कर अमीर खाँ पिण्डारी को सौप दिया। जब १८१७ ई० मे पिण्डारियो का नाश हो गया तो इस गढ मे कोटा की एक सैनिक टुकडी रहने लगी।

बडवा—यह स्थान अन्ता तहसील मे है। बडवा गाँव से पूर्व की ओर लगभग आधा मील दूर कामतोरण स्थान पर ४ प्राचीन यूप पाए गए है जिसमे से दो के अवशेष वचे हुए हैं। प्रत्येक यूप १६ फीट लम्बा है। नीचे चौकोर ६ फीट तक तथा इसके ऊपर अठकौना है। ऊपर जाकर फिर चौकोर हो गए हैं। इन पर कुशाण-कालीन ब्राह्मीलिपि मे वि. स २९५ के लेख खुदे हैं। इन लेखों से ज्ञात होता है कि मौखरी वश के राजा बल के चारो पुत्रो ने त्रिराज्ञ यज्ञ करके ये यूप-स्थापित किए थे। प्रत्येक ने यज्ञ-समाप्ति पर १००० गायें ब्राह्मणो को दान दी। राजा बल मालवा के शक क्षत्रिय विजयदामन (२३८-२५० ई) का सामन्त और माण्डलिक राजा रहा होगा क्योकि उस समय विजयदामन का राज्य नन्दसा (मेवाड) तक फैला हुआ था।

हाथ लगा जिन्होंने एक मजबूत गढ़ बनवाया जो आज तक विद्यमान है। भीलों से यह महाराव भीमसिंह हाड़ा के अधिकार में आया। इसका परकोटा फौजदार जालिमसिंह झाला ने बनवाया था। किले के नीचे पर्वन और कावर नदियाँ शामिल होकर एक बहुत बड़ा कुण्ड बनाती है।

रातादेई—अमनावर कस्बे से चार मील उत्तर की ओर पहाड़ों के बीच मड़िया चाचर नाम का भीलों का एक छोटा सा गाँव है। यहाँ के मानसरोवर नाम के एक सुन्दर तालाब के पूर्वी किनारे पर रातादेवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ के पुजारी कहते हैं कि जिस देवी का रक्तदान का वर्णन मारकण्ड पुराण में है वह यही देवी है परन्तु इस प्रान्त के लोग इसको खीची राजा अचलदास की बहिन बताते हैं। निज मन्दिर तो अचला खीची का बनवाया हुआ था। सामने का मण्डप फौजदार जालिमसिंह झाला का तैयार कराया हुआ है। कहते हैं कि मानसरोवर तालाब के दक्षिणी किनारे पर किसी समय श्रीनगर नाम का कस्बा आबाद था। कुछ खण्डहर उसी कस्बे के अवशेष के रूप में अब भी बिखरे पड़े हैं। इन खण्डहरों में तीन मन्दिर हैं। सबसे बड़ा मन्दिर महादेव का है जिसको किसी ब्यासे ने बनवाया था। मानसरोवर के दक्षिण तरफ के खण्डहर में शिलालेख से ज्ञात होता है कि यह वैष्णव मन्दिर था जिसको शाह दामोदर ने वि १४२६ कार्तिक वदि १ (ई सन् १५३१ तारीख ८ अक्टूबर मंगलवार) को बनवाया था। कहते हैं कि यह कस्बा मऊ के खीची राजा का मध्य स्थान था। तालाब के किनारे पर के चबूतरों व छत्रियों में से कई पर शिला लेख लगे हुए हैं। एक चबूतरे पर चरणपादुका का चिन्ह है और उसके नीचे 'चरणपादुका माघ की' लिखा है। परन्तु इस लोग अचलदास खीची का मृत्यु-स्मारक बताते हैं। अचलदास खीची का देहान्त स १४८४ को माघ वदि १२ (१३ जनवरी १४२८) मंगलवार का हुआ। यहाँ सतियों के कई स्मारक बिखरे पड़े हैं। तालाब से दो मील पश्चिम में उजाड़ नदी के दाहिने तट पर खीची राजाओं के बनवाए महलों और मन्दिरों के भग्नावशेष हैं। पहाड़ी की टेकरी पर किले का दरवाजा अकेला खड़ा है जिसे हथियापोल कहते हैं।

शेरगढ़—यह कोटा से ५ मील दक्षिण में पर्वन नदी के किनारे पहाड़ के निकट बसा है। पहले यह निजामत का मुख्य स्थान था लेकिन अब अटरू तहसील में है। यह कस्बा सातवीं शताब्दी से पहले का बसा हुआ है। इसको प्रारम्भ में कोषवर्धन कहते थे जैसा कि यहाँ से प्राप्त शिलालेख से ज्ञात होता है। यहाँ से प्राप्त वि सं ८७० माघ सुदि ६ के शिलालेख से पता लगता है कि यहाँ के नागवंशी राजा देवदत्त ने जो स्वयं बौद्धमतानुयायी था एक बौद्धविहार

वनवाया था। इस कस्बे मे लक्ष्मीनारायण के मन्दिर मे शिलालेख भी मिला है। एक शिलालेख मे धार के परमार नरेश वाक्पतिदेव से उदयादित्य तक की वशावली दी हुई है। इस शिलालेख से प्रतीत होता है कि यह मन्दिर पहले सोमनाथ का था पर कैसे व कव लक्ष्मीनारायण का मन्दिर हो गया यह प्रतीत नही होता है। यहाँ तीन टूटी जैन मूर्तिया भी मिली हैं जो एक राजपूत सरदार ने ११ वी शताब्दी मे वनवाई थी। यहा पहले नागवशी शासन करते थे। फिर यह डोड राजपूतो के अधिकार मे आया जिनसे खीचियो ने छीन लिया। शेरशाह ने इसे जीत कर इसका नाम शेरगढ रक्खा। यहा का किला परमार काल से चला आ रहा है। कई सौ वर्षों तक यह किला मुगलो के अधीन रहा। परन्तु सैय्यद भाइयो का पक्ष लेकर जव महाराव भीमसिह ने फरूखसियार को दिल्ली का सम्राट वना दिया तो फरूखसियार ने इस किले को भीमसिह को दे दिया। फौजदार जालिमसिह ने इसका जीर्णोद्धार करा कर अमीर खाँ पिण्डारी को सौप दिया। जब १८१७ ई० मे पिण्डारियो का नाश हो गया तो इस गढ मे कोटा की एक सैनिक टुकडी रहने लगी।

बडवा—यह स्थान अन्ता तहसील में है। बडवा गाँव से पूर्व की ओर लगभग आधा मील दूर कामतोरण स्थान पर ४ प्राचीन यूप पाए गए हैं जिसमे से दो के अवशेष बचे हुए हैं। प्रत्येक यूप १६ फीट लम्बा है। नीचे चौकोर ६ फीट तक तथा इसके ऊपर अठकोना है। ऊपर जाकर फिर चौकोर हो गए है। इन पर कुशाण-कालीन ब्राह्मीलिपि मे वि. स २९५ के लेख खुदे हैं। इन लेखो से ज्ञात होता है कि मौखरी वश के राजा बल के चारो पुत्रो ने त्रिराज्ञ यज्ञ करके ये यूप-स्थापित किए थे। प्रत्येक ने यज्ञ-समाप्ति पर १००० गायें ब्राह्मणो को दान दी। राजा बल मालवा के शक क्षत्रिय विजयदामन (२३८-२५० ई) का सामन्त और माण्डलिक राजा रहा होगा क्योकि उस समय विजयदामन का राज्य नन्दसा (मेवाड) तक फैला हुआ था।

कोटा बून्दी का एक भाग

बून्दी, कोटा और झालावाड़ राज्यों का क्षेत्र जिससे अब कोटा मण्डल (डिविजन) बना है हाड़ौती प्रदेश कहलाता है। यह क्षेत्र प्राचीन काल में मीणों व भीलों का प्रदेश था परन्तु धीरे-धीरे इन क्षेत्रों पर मुसलमानों के आक्रमणों के समय राजपूत शासकों ने अधिकार कर लिया। सांभर के चौहानों ने अजमेर पर अधिकार कर पृथ्वीराज तृतीय के काल में अन्तिम बार हिन्दू राज्य स्थापित किया। सांभर से चौहानों की दूसरी शाखा नाडोल (मारवाड़) होती हुई चित्तौड़ के पास बम्बावदा में स्थापित हो गई। बम्बावदा के राव देवा ने सम्वत् १३९८ (१३४३ ई) में मीणों से बन्दू घाटी छीन कर बून्दी नगर की स्थापना की[1]। राव देवा के बाद राव समरसी बून्दी की गद्दी पर बैठा। उसके राजगद्दी पर बैठने के समय (१४ वि सं) बून्दी का राज्य चम्बल नदी के बाएं किनारे तक था। नदी के दाहिने किनारे पर भीलों का राज्य था जिसका नेता कोटया भील था[2]। भील राज्य अकेलगढ़[3] से दक्षिण पूर्व मुकन्दरा पर्वत की श्रेणियों के साथ-साथ मनोहरथाणे तक फैला हुआ था। कोट्या भील के नाम से उसकी शासित भूमि कोटा कहलाने लगी।

समरसिंह ने अपने राज्य विस्तार करने हेतु चम्बल के उस पार के भील शासक कोट्या पर हमला किया। अकेलगढ़ के पास युद्ध हुआ। इस युद्ध में

1 टाड एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १४६७।
वंशभास्कर द्वितीय भाग पृष्ठ १६२५-२७ के अनुसार राव देवा ने आषाढ़ कृष्णा नवमी सम्वत् ११९८ (ई सं ११४१) को बून्दी पर अधिकार किया था ([illegible] बून्दी का इतिहास पृष्ठ ४२ ४३)

2 वंशभास्कर जिल्द ३ पृष्ठ १६०८ ७९।
टाड राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ सं १५११ में उल्लेख है कि कोट्या भील जाति का नाम था।

3 कोटा से ४ मील दक्षिण-पश्चिम की ओर।

९०० भील तथा ३०० हाडा सिपाही मारे गए। कोट्या युद्ध से भाग गया और भील क्षेत्र पर बून्दी के हाडो का अधिकार हो गया[1] लेकिन समरसी के बून्दी लौटते ही सम्भवत भीलो ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने का पुन प्रयास किया होगा। क्योकि सूर्यमल मिश्रण और टॉड दोनो ही इस बात का उल्लेख करते हैं कि कोटा को पुन प्राप्त करने का श्रेय समरसी के तीसरे पुत्र जैतसिंह को जाता है। वशभास्कर मे उल्लेख है कि समरसी ने अपने पुत्र जेतसिंह का विवाह कैथुन के तँवर सरदार की पुत्री से कर दिया। जैतसिंह महत्वाकांक्षी राजकुमार था। उसने अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजना बनाई और अकेलगढ के भीलो पर आक्रमण किया। इस आक्रमण मे उसे अपने श्वसुर और पिता दोनो की सहायता प्राप्त थी। भीलो को नष्ट करने मे जेतसी ने उन्ही उपायो को काम मे लिया जिनके द्वारा देवसिह ने मीणो से बून्दी छीनी थी[2]। इस युद्ध मे जैतसिंह के पक्ष मे सैलारखाँ नामक पठान भीलो के विरुद्ध लडता हुआ मारा गया। इस प्रकार सम्वत् १३२१ (१२७४ ई)[3] मे अकेलगढ के भीलो को मार कर जैतसिंह ने कोटा नगर पर अधिकार किया[4]।

जैतसिंह के इस पराक्रम से प्रसन्न होकर राव समरसी ने कोटा जैतसिंह को दे दिया। तब से कोटा बून्दी के राजकुमार की जागीर मे रहने लगा। कोटा पर हाडा चौहानो का शासन तब ही से चला आ रहा है और जब राव माधोसिंह ने कोटा को बून्दी से स्वतन्त्र करा लिया तो हाडो की इस शाखा को माधाणी हाडा कहा जाने लगा। कालान्तर मे हाडाओ की यह शाखा अपने मुख्य शाखा को पृष्ठभूमि मे रख कर प्रभावशाली हो गई।

समरसी की मृत्यु के पश्चात् उसका बडा लडका[5] नापू बून्दी की गद्दी पर बैठा। जैतसिंह कोटा मे राज्य करता रहा। जैतसिंह ने अपने बडे भ्राता की अधीनता

---

१ वशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ १६७८-७९।

२ मीणो के साथ देवसिंह का विश्वासघात डा मथुरालाल कृत कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ५८।

३ टाड के अनुसार १४२३ वि०स०।

४ वशभास्कर तृतीय भाग, पृ १६७९। ठाकुर लक्ष्मणदास—कोटा राज्य का इतिहास। डा० मथुरालाल शर्मा—कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ ६२। टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ १४६८। टाड वर्णन करता है कि जैतसिंह तँवरो के यहा से लौट रहा था तब भीलों पर चम्बल घाटी के क्षेत्रो के निवासियों ने अचानक आक्रमण कर दिया। इस घाटी के प्रमुख द्वार पर जेतसिंह ने भीलों के नेता को मार कर वहाँ पर एक हाथी (कालभैरों के लिए) निर्मित किया। यह कोटा गढ के मुख्य द्वार के पास चार झोपडे में स्थित है।

५ समरसी के ३ पुत्र थे—१ नेपुजी, २ हरपाळ, ३ जेतसी।

वास्तव मे १५६० ई० के आस-पास कोटा मे मुसलमानो की शक्ति कमजोर होने लगी। मालवा के सुल्तान बाजबहादुर को अकबर के सेनापति अधमखाँ ने हरा मालवा मुगल साम्राज्य मे मिला लिया था। कोटा के मुसलमानी शासको को जो सहायता मालवे से प्राप्त होती थी वह न होने लगी। इसी समय बून्दी के सिंहासन पर राव सुर्जन बैठा। उसने मुसलमानो से कोटा पुन प्राप्त करने के लिए एक बडी सेना तैयार की। इस सेना मे उसके लगभग २० जागीरदार भाई और कितने ही अन्य राजपूत सरदार शामिल थे[1]। भदाना से दो मील दूर दोनो सेनाओ की मुठभेड हुई[2]। केसरखाँ व डोकरखाँ युद्ध-क्षेत्र से भाग कर कोटा नगर मे जा घुसे पर हाडा राजपूत कीर्तिसिंह ने उनका पीछा किया। केसरखाँ और डोकरखाँ कोटा मे युद्ध करते हुए मारे गए। कोटा पर राव सुर्जन का अधिकार हो गया। २६ वर्ष तक मुसलमानो अधिकार में रह कर कोटा पुन हाडाओ का कीर्तिकेन्द्र बना[3]। इस विजय का परिणाम यह हुआ कि राव सुर्जन की बढती हुई शक्ति व भय से मऊ के खीचो रायमल ने सीसवळी, बडोद आदि क्षेत्र सुपुर्द कर दिये। परन्तु खीचियो के इस यद्ध मे कीर्तिसिंह मारा गया। कोटा का राज्य सुर्जन ने अपने पुत्र भोज को दे दिया जो एक स्वतन्त्र शासक की तरह राज्य करने लगा।

राव सुर्जन की मृत्यु के बाद भोज बून्दी का शासक बना। भोज के तीन पुत्र थे। रतन, हृदयनारायण व केशोदास। राव भोज ने कोटा के शासक का भार अपने द्वितीय पुत्र हृदयनारायण को सौपा और इस सम्बन्ध मे अकबर बादशाह से स्वीकृति का फरमान भी प्राप्त किया[4]। हृदयनारायण ने लगभग १५ वर्ष तक कोटा पर राज्य किया। वह एक स्वतन्त्र शासक था, फिर भी प्रारम्भ मे अपने पिता और उसके बाद मे अपने भाई राव रतन की आज्ञा का पालन करता रहा।

भोज की मृत्यु के बाद राव रतन बून्दी की गद्दी पर बैठा। यह अत्यन्त शक्तिशाली शासक था। उस समय मुगल बादशाह जहाँगीर दिल्ली पर राज्य करता था। जहाँगीर के विरुद्ध उसके लडके खुर्रम ने विद्रोह कर दिया। राव रतन ने जहाँगीर को सहायता देकर खुर्रम के विद्रोह को दबाया और जहाँगीर

---

१ वंशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २२३६।

२ वंश भास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २२३७।

३ गैपरनाथ का शिलालेख, वि० स० १६३६।

४ टाड राजस्थान (ए० ए०) जिल्द ३, पृष्ठ १४८६ फुटनोट।

के तख्त की रक्षा की[1]। खुर्रम के विद्रोह को दबाने के लिए राव रतन के साथ उसका भाई कोटा का शासक हृदयनारायण भी था। दोनों भाई शाहजादा परवेज के साथ खुर्रम को दबाने के लिए इलाहाबाद की ओर चले। झूसी के स्थान पर सम्वत् १६८० में भयकर युद्ध हुआ। खुर्रम तो जान बचा कर दक्षिण की ओर भागा[2]। हृदयनारायण ने इस युद्ध में अत्यन्त कायरता का परिचय दिया। वह भी रण-क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। जहाँगीर हृदयनारायण पर बहुत क्रोधित हुआ और उसको कोटा गद्दी से उतार दिया। अस्थायी रूप से राव रतन ने कोटा राज्य का शासन अपने अधिकार में ले लिया।

शाहजादा खुर्रम झूसी में हार कर उड़ीसा तेलंगाना और गोलकुण्डा को पार करता हुआ पुनः दक्षिण में पहुँचा। उसने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध अहमद नगर के प्रधान मंत्री मलिक अम्बर से मित्रता करली। उस समय मुगल सेना बुरहानपुर में पड़ी हुई थी जिसका नेतृत्व राव रतन कर रहा था। खुर्रम ने मलिक अम्बर की सहायता से बुरहानपुर का घेरा डाल दिया। राव रतन के दो पुत्र माधोसिंह और हरिसिंह इस युद्ध में उसके साथ थे। इस युद्ध में विजय राव रतन की हुई और खुर्रम भाग निकला। उसके ३०० सिपाही राव रतन ने कैद कर लिए और बहुत सा सामान लूट लिया[3]। माधोसिंह ने इस युद्ध में अपनी वीरता का पूर्ण प्रदर्शन किया। जहाँगीर इस नौजवान राजपूत राजकुमार पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। बादशाह का रुख देख कर सम्वत् १६८१ के बाद राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को कोटा का राजा बना दिया तथा इस कोशिश में रहा कि जहाँगीर उसकी स्वीकृति का फरमान देदें।

जब खुर्रम ने अपना अपराध स्वीकार कर अपने पिता से क्षमा माँग ली तब खुर्रम का भय जहाँगीर को न रहा। खुर्रम के विद्रोह दबाने का श्रेय महाबतखाँ और राव रतन को गया। राव रतन को बुरहानपुर का सूबेदार नियुक्त किया गया। खुर्रम की देखरेख रखने का भार पहले तो राव रतन के छोटे बेटे हरिसिंह को दिया गया परन्तु वह बहुत अव्यवहारिक था। शाहजादे को उसने बहुत तंग किया। इस पर राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को खुर्रम की

---

१ गायर फूल्या अब बहूयो अबकी रंगे पतन।
पाया मद जहाँगीर को राख्यो राव रतन॥
टाड एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज आफ राजस्थान जिल्द १ पृष्ठ १४८६।

२ मआसिरुल उमरा जिल्द १ पृष्ठ १४१ १४१।
वंशभास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २४६६।

३ इलियट एण्ड डाउसन जिल्द ६ पृष्ठ ३६५ तथा ४१८।
मआसिरुल उमरा जिल्द १ पृष्ठ १४६ २।
वंशभास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २४८० २३ १४।

निगरानी के लिए रक्खा। माधोसिंह ने खुर्रम की अत्यन्त सेवा की। खुर्रम को आदर-भाव से रक्खा। दिल्ली की राजनैतिक स्थिति का अध्ययन करके राव रतन ने भी अपनी राजनैतिक विचारधारा व दृष्टिकोण बदलना शुरू किया। जहाँगीर के अन्तिम दिनो मे १६२२ ई से उसकी मृत्यु तक राजनैतिक सकट-काल का युग रहा। पहले कन्धार इरानियो के हाथ मे चला गया। फिर खुर्रम ने विद्रोह किया। यह शान्त हुआ तो महावतखाँ ने विद्रोह कर दिया। नूरजहाँ बेगम अपने जामाता शहरयार को बादशाह बनाना चाहती थी जो अत्यन्त अयोग्य था। साम्राज्य का शक्तिशाली सामन्त आसफखाँ खुर्रम को दिल्ली तख्त पर बैठाने की योजना मे तल्लीन था। आसफखाँ की पुत्री मुमताजमहल की शादी खुर्रम से हो चुकी थी। राजनैतिक बहाव खुर्रम की ओर अधिक था। नूरजहाँ के शासन से सभी सामन्त तग आ चुके थे। उससे लोहा लेने वाला खुर्रम ही था। अत राव रतन का झुकाव खुर्रम की ओर होने लगा और उसने माधोसिंह को खुर्रम की ओर सद्व्यवहार बरतने की अपनी इच्छा प्रकट की।

बुरहानपुर के युद्ध-क्षेत्र मे खुर्रम कैद कर लिया गया था जिसकी निगरानी के लिए राव रतन ने माधोसिंह को रक्खा था। जहागीर ने खुर्रम को दिल्ली बुला भेजा परन्तु राव रतन ने यह कह कर टाल दिया कि शाहजादा खुर्रम बिमार है। पर जब बार-बार शाही पैगाम इस सम्बन्ध के आने लगे तो उसने व माधोसिंह ने मिल कर खुर्रम को कैदखाने से भगा दिया। इस कार्य मे बुरहान-पुर के किलेदार द्वारकादास का भी हाथ था[1]। काश्मीर से लौटते समय

---

१ वशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २५२३-२६।

यह घटना केवल सूर्यमल मिश्रण द्वारा ही स्पष्ट की गई है। फारसी तवारिखो मे इसका उल्लेख नही है। सम्भवत. राजपूतो की वीरता का प्रदर्शन करने तथा खुर्रम पर राव रतन के ऐहसानो का मुसलमानी लेखको ने वर्णन करने का जान बूझ कर प्रयास नही किया हो। डाक्टर बेनीप्रसाद ने "हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर" (पृष्ठ ३६३-६५) मे इस घटना का यो उल्लेख किया है कि बुरहानपुर मे हार जाने के बाद खुर्रम ने जहाँगीर से क्षमा-याचना की। उस समय महाबत खाँ का प्रभाव बढ रहा था। नूरजहाँ उसकी बढती हुई शक्ति को रोकने के लिए खुर्रम (जो कि अब शक्तिहीन हो चुका था) से शान्ति करने के पक्ष मे थी। खुर्रम को सद्व्यवहार रखने के लिए अपने दो पुत्र दारा व औरगजेब को बादशाह के सुपुर्द करना पड़ा तथा रोहतास व असीरगढ भी बादशाह को दिये गए। जहाँगीर ने उसे बालघाट का सूबेदार बना दिया।

वशभास्कर की घटना के उल्लेख की सत्यता पर डा० मथुरालाल शर्मा ने 'कोटा राज्य का इतिहास' (भाग १, पृ० १०३ फुटनोट) में यह लिखा है कि 'राव रतन के जीवन-चरित्र मे बुरहानपुर की रक्षा और माधोसिंह को स्वतन्त्र राजा बनाना तो फारसी तवारिखो और

जहाँगीर बीमार पड़ा और लाहौर के पास सन् १६२७ में उसकी मृत्यु हो गई। उस समय खुर्रम दक्षिण में था। परन्तु उसके शक्तिशाली श्वसुर आसफखाँ ने खुर्रम को बादशाह घोषित करवा दिया। खुर्रम शाहजहाँ के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। शाहजहाँ ने माधोसिंह को कोटा का स्वतन्त्र शासक होने का फरमान दे दिया[1]। उसके साथ ही शाहजहाँ ने बून्दी के आठ परगने जो उसने जब्त किये थे माधोसिंह को दिए[2]। अब माधोसिंह का मुगल सम्राट से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो गया।

राव रतन बुरहानपुर में बालघाट की रक्षा करते हुए सम्वत् १६८८ (सन् १६३१) में मारा गया। उस समय उनके साथ माधोसिंह भी था। माधोसिंह ने शाहजहाँ को इसकी सूचना भजी। शाहजहाँ ने राव रतन के पाटवी पौत्र शत्रुशाल (राजकुमार गोपीनाथ का पुत्र) को बून्दी का व माधोसिंह को कोटा का राजा पृथक पृथक रूप से स्वीकार किया। पिता की मृत्यु के बाद सम्वत् १६८८ में माधोसिंह ने महाराजाधिराज की पदवी धारण की। शाहजहाँ ने उसे खिलअत भजी तथा उसे २५०० जात व १५०० सवार का मनसबदार बना दिया। इस प्रकार वि स १६८८ की पोष बदि ३ को कोटा राज्य अलग स्थापित हो गया।

राव माधोसिंह (वि० स० १६८८–१७०४)

बून्दी के शासक राव रतन के तीन पुत्र थे गोपीनाथ माधोसिंह व हरिसिंह।

प्रत्यक्ष घटनाओं से सिद्ध है ही। विचारास्पद हो सकता है केवल खुर्रम का राव रतन के संरक्षण में रहना और हरिसिंह व माधोसिंह के व्यवहार का ह्रास। सम्भव है माधोसिंह को प्रथम विस्तृत राज्य पुरस्कार के समय ही प्राप्त हुआ हो परन्तु शाहजहाँ ने तख्त पर बैठते ही राव रतन को आदेश दिया कि हरिसिंह को दरबार में हाजिर किया जावे और राव रतन ने इस भय से उसको नहीं भेजा कि दुर्व्यवहार का स्मरण करके ही सम्राट उसको मरवा न डाले तो सम्राट ने बून्दी के ८ परगने जब्त कर लिए। यह बात सिद्ध करती है कि हरिसिंह से सम्राट अत्यन्त अप्रसन्न था और माधोसिंह से अत्यन्त प्रसन्न।

१ वंशभास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २५ १ इलियट व डाउसन जिल्द ६ पृष्ठ ४१८। टाड लिखता है कि यह फरमान जहाँगीर के समय ही प्राप्त हो गया था। जहाँगीर कोटा को बून्दी से पृथक राज्य बनाना चाहता था। उसे भय था कि दोनों के मिलने पर यह शक्तिशाली जाति कहीं साम्राज्य के लिए खतरा न हो जाए। उसे विश्वास था कि पृथक रहने पर वह दोनों पर आसानी से शासन कर सकेगा। शाहजहाँ ने उस फरमान की पुनरावृत्ति की। टाड राजस्थान (क्रुक सम्पादित) जिल्द ३ पृष्ठ १५०८।

२ ये आठ परगने निम्न लिखित थे—बमोरी पलायथा बैंजून घाटा कनवास मधुगमड़ दीगोद व रहल।

वंशभास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २५४१।

माधोसिंह का जन्म ज्येष्ठ सुदि ३ सम्वत् १६५६ को बून्दी नगर मे हुआ था[1]। प्रारम्भ से ही इसकी शिक्षा का सुप्रबन्ध किया गया था। युद्ध-विद्या, घुड़सवारी तथा शिकार के लिए यथोचित शिक्षा दी गई। विद्याभ्यास के लिए इसे सस्कृत का ज्ञान कराया गया। १४ वर्ष की अवस्था तक इसने बून्दी मे ही रह कर ज्ञान प्राप्त किया था। टॉड लिखता है कि जब वह १४ वर्ष का ही था तब उसने जिस वीरता का प्रदर्शन किया उससे उसे राजा का खिताब प्राप्त हुआ और कोटा का राज्य मिला[2]। परन्तु तत्कालीन फारसी तवारिखो से यह पाया जाता है कि माधोसिंह को कोटा व पलायता के परगने जिस समय मिले उस समय उसकी अवस्था ३२ (१६८८ सम्वत्) वर्ष की थी। टॉड के कथन मे इतनी सत्यता प्रतीत हो सकती है कि १४ वर्ष की उम्र मे माधोसिंह अपने पिता के साथ पहली बार युद्ध मे गया होगा और वही अपनी वीरता का परिचय दिया होगा। यह युद्ध जहाँगीर के काल मे सम्वत् १६७१ (१६१४ ई०) मे हुआ जब कि शाहजादा खुर्रम ने अहमदनगर पर आक्रमण किया और वहाँ के प्रधान मन्त्री मलिक अम्बर को हराया[3]।

प्रारम्भ से ही राव रतन माधोसिंह की योग्यता को जान चुका था। अत जब कभी वह शाही सेना का पक्ष लेकर युद्ध मे गया, उसने माधोसिंह को साथ ही रक्खा। राव रतन जब बुरहानपुर का हाकिम हुआ तब माधोसिंह उसके साथ था। खर्रम के बुरहानपुर घेरे के समय माधोसिंह और उसका छोटा भ्राता हरिसिंह उस युद्ध मे बुरी तरह घायल हुए परन्तु विजय हाडो की हुई[4]। भूसी के युद्ध मे राव रतन का भाई हृदयनारायण भाग गया था। अत बादशाह जहाँगीर उससे अत्यत क्रुद्ध हुआ और कोटा का राज्य उससे छीन लिया। अस्थायी रूप से राव रतन को कोटा प्राप्त हुआ। राव रतन ने कोटा अपने

---

१ ई० स० १५९९ ता० १८ मई, टाड के अनुसार इसका जन्म सम्वत् १६२१ (सन् १५६५) मे हुआ। टाड राजस्थान, तृतीय भाग, पृष्ठ १५२१। मुशी मूलचन्द ने "चरित्र रत्नावली" के आधार पर इसका जन्म सम्वत १६५७ मे लिखा है। बख्शी खान से प्राप्त जन्मकुण्डली प्राप्त हुई उसके अनुसार उपरोक्त तिथि प्राप्त होती है।

२ टाड राजस्थान भाग ३, पृष्ठ १५२१।

३ डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास प्रथम भाग, पृष्ठ ९२।

४ वशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २४८७ व २५००-०४, खफी खा जिल्द १, पृष्ठ ३४९-५०।

जहांगीर बीमार पड़ा और लाहौर के पास सन् १६२७ में उसकी मृत्यु हो गई। उस समय खुर्रम दक्षिण में था। परन्तु उसके शक्तिशाली श्वसुर आसफखाँ ने खुर्रम को बादशाह घोषित करवा दिया। खुर्रम शाहजहाँ के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। शाहजहाँ ने माधोसिंह को कोटा का स्वतन्त्र शासक होने का फरमान दे दिया[1]। उसके साथ ही शाहजहाँ ने बून्दी के आठ परगने जो उसने जब्त किए थे माधोसिंह को दिए[2]। अब माधोसिंह का मुगल सम्राट से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो गया।

राव रतन बुरहानपुर में बालघाट की रक्षा करते हुए सम्वत् १६८८ (सन् १६३१) में मारा गया। उस समय उनके साथ माधोसिंह भी था। माधोसिंह ने शाहजहाँ को इसकी सूचना भेजी। शाहजहाँ ने राव रतन के पाटवी पौत्र शत्रुशाल (राजकुमार गोपीनाथ का पुत्र) को बून्दी का व माधोसिंह को कोटा का राजा पृथक पृथक रूप से स्वीकार किया। पिता की मृत्यु के बाद सम्वत् १६८८ में माधोसिंह ने महाराजाधिराज की पदवी धारण की। शाहजहाँ ने उसे खिल्लत भेजी तथा उसे २५०० जात व १५०० सवार का मनसबदार बना दिया। इस प्रकार वि० स० १६८८ की पौष वदि १ को कोटा राज्य अलग स्थापित हो गया।

राव माधोसिंह (वि० स १६८८–१७०४)

बून्दी के शासक राव रतन के तीन पुत्र थे गोपीनाथ माधोसिंह व हरिसिंह।

प्रत्यक्ष घटनाओं से सिद्ध है ही। विचारास्पद हो सकता है केवल खुर्रम का राव रतन के संरक्षण में कैद रहना और हरिसिंह व माधोसिंह के व्यवहार का ज्ञान। सम्भव है माधोसिंह को अलग विस्तृत राज्य पुरस्कार के समय ही प्राप्त हुआ हो परन्तु शाहजहाँ ने जब गद्दी पर बैठते ही राव रतन को आदेश दिया कि हरिसिंह को दरबार में हाजिर किया जावे और राव रतन ने इस सबब से उसको नहीं भेजा कि दुर्व्यवहार का स्मरण करके ही सम्राट उसको मरवा न डाले तभी सम्राट ने बून्दी के ८ परगने जब्त कर लिए। यह बात सिद्ध करती है कि हरिसिंह से सम्राट अत्यन्त अप्रसन्न था और माधोसिंह से अत्यन्त प्रसन्न।

[1] वंशभास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २५६ हिस्ट्री व ज्याग्रफी जिल्द १ पृष्ठ ४१०। टाड लिखता है कि यह फरमान जहांगीर के समय ही प्राप्त हो गया था। जहांगीर कोटा को बून्दी से पृथक राज्य बनाना चाहता था। उसे भय था कि दोनों के मिलने पर यह शक्तिशाली जाति कहीं साम्राज्य के लिए खतरा न हो जाए। उसे विश्वास था कि पृथक रहने पर वह दोनों पर आसानी से शासन कर सकेगा। शाहजहाँ ने उस फरमान की पुनरावृत्ति की। टाड राजस्थान (क्रुक सम्पादित) जिल्द ३ पृष्ठ १४८७।

[2] ये आठ परगने निम्न लिखित थे—मऊ सुकेत खैराबाद रामगढ़ (?) बकानी घाटोली मनोहरथाना दीगोद व रहल।

वंशभास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २५४१।

माधोसिंह का जन्म ज्येष्ठ सुदि ३ सम्वत् १६५६ को बून्दी नगर मे हुआ था[1]। प्रारम्भ से ही इसकी शिक्षा का सुप्रबन्ध किया गया था। युद्ध-विद्या, घुडसवारी तथा शिकार के लिए यथोचित शिक्षा दी गई। विद्याभ्यास के लिए इसे सस्कृत का ज्ञान कराया गया। १४ वर्ष की अवस्था तक इसने बून्दी मे ही रह कर ज्ञान प्राप्त किया था। टॉड लिखता है कि जब वह १४ वर्ष का ही था तब उसने जिस वीरता का प्रदर्शन किया उससे उसे राजा का खिताब प्राप्त हुआ और कोटा का राज्य मिला[2]। परन्तु तत्कालीन फारसी तवारिखो से यह पाया जाता है कि माधोसिंह को कोटा व पलायता के परगने जिस समय मिले उस समय उसकी अवस्था ३२ (१६८८ सम्वत्) वर्ष की थी। टॉड के कथन मे इतनी सत्यता प्रतीत हो सकती है कि १४ वर्ष की उम्र मे माधोसिंह अपने पिता के साथ पहली बार युद्ध मे गया होगा और वही अपनी वीरता का परिचय दिया होगा। यह युद्ध जहाँगीर के काल मे सम्वत् १६७१ (१६१४ ई०) मे हुआ जब कि शाहजादा खुर्रम ने अहमदनगर पर आक्रमण किया और वहाँ के प्रधान मन्त्री मलिक अम्बर को हराया[3]।

प्रारम्भ से ही राव रतन माधोसिंह की योग्यता को जान चुका था। अत जब कभी वह शाही सेना का पक्ष लेकर युद्ध मे गया, उसने माधोसिंह को साथ ही रक्खा। राव रतन जब बुरहानपुर का हाकिम हुआ तब माधोसिंह उसके साथ था। खर्रम के बुरहानपुर घेरे के समय माधोसिंह और उसका छोटा भ्राता हरिसिंह उस युद्ध मे बुरी तरह घायल हुए परन्तु विजय हाडो की हुई[4]। झूसी के युद्ध मे राव रतन का भाई हृदयनारायण भाग गया था। अत बादशाह जहाँगीर उससे अत्यत क्रुद्ध हुआ और कोटा का राज्य उससे छीन लिया। अस्थायी रूप से राव रतन को कोटा प्राप्त हुआ। राव रतन ने कोटा अपने

---

१ ई० स० १५९९ ता० १८ मई, टाड के अनुसार इसका जन्म सम्वत् १६२१ (सन् १५६५) में हुआ। टाड राजस्थान, तृतीय भाग, पृष्ठ १५२१। मुशी मूलचन्द ने "चरित्र रत्नावली" के आधार पर इसका जन्म सम्वत १६५७ मे लिखा है। वख्शी खान से प्राप्त जन्मकुण्डली प्राप्त हुई उसके अनुसार उपरोक्त तिथि प्राप्त होती है।

२ टाड राजस्थान भाग ३, पृष्ठ १५२१।

३ डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास प्रथम भाग, पृष्ठ ९२।

४ वशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २४८७ व २५००-०८, खफी खा जिल्द १, पृष्ठ ३४९-५०।

से इसकी नही बनती थी फिर भी जब शाहजहाँ ने शासक होते ही इसे अपना मुख्य दरबारी नियुक्त किया। परन्तु शीघ्र ही वह शाहजहाँ के विरुद्ध हो गया और विद्रोह कर बैठा। इस विद्रोह को दबाने मे माधोसिंह हाडा का प्रमुख हाथ था। खाँजहाँ प्रारम्भ मे धोलपुर के पास परास्त हुआ। फिर उज्जैन के पास उसने लूट मचाई, और फिर बुन्देलखण्ड मे उत्पात करने लगा। कालिन्जर के युद्ध मे खाँजहाँ लोदी को बुरी तरह हराया। खाँजहाँ लोदी सम्वत् १६८७ माघ सुदि २ (सन् १६३१ की २४ जनवरी) को अपने दो पुत्रो सहित इस युद्ध मे काम आया[1]।

शाहजहाँ ने माधोसिंह को इन सेवाओ का उपयुक्त पुरस्कार दिया। चैत्र कृष्णा ४, स १६८८ (११ मार्च १६३१) को नौरोज के उत्सव पर इसका मनसब बढा कर दो हजारी जात और एक हजार सवार कर दिया और एक हजार निशान झण्डा भी दिया[2]। वशभास्कर मे सूर्य्यमल मिश्रण उल्लेख करता है कि बादशाह ने माधोसिंह को जीरापुर, खैराबाद, चैंचट और खिलचीपुर के चार परगने दिए पर ठाकुर लक्ष्मणदान ने लिखा है कि इस वीरता के उपलक्ष मे माधोसिंह को १७ परगने और मिले थे[3]। माधोसिंह की मृत्यु के समय ये सब परगने कोटा के अधीन थे। इसी वर्ष की पोष वदि ३ (३० नवम्बर १६३१) को इसके पिता का देहात हो गया। दक्षिण की सूबेदारी जब खानदुर्शन को प्राप्त हुई तो उसे दौलताबाद के पास शाहजी भौसला से युद्ध करना पडा। माधोसिंह हाडा खानदुर्शन की सेवा मे उपस्थित था। उसे बुरहानपुर की रक्षा का भार सौंपा गया जिसमे उसे सफलता प्राप्त हुई[4]।

सम्वत् १६९२ (सन् १६३५) मे वीरसिंह बुन्देले के पुत्र जूझारसिंह ने शाहजहाँ के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह का कारण यह कहा जाता है कि जूझारसिंह ने गोडो के शासक प्रेमनारायण को मार कर उसके दुर्ग चौरगढ पर

---

१ बादशाहनामा भाग २, पृष्ठ ३४८-५०।
इलियट व डाउसन भाग ७, पृष्ठ २०-२२।
वशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २५९५।
शाहजहाँनामा भाग १, पृष्ठ २७।

२ शाहजहाँनामा भाग २, पृष्ठ २८, डा० शर्मा का कथन है कि वह तीन हजारी मनसबदार बना दिया गया। कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ११२।

३ रामगढ, रहलावरा, कोटडा सुल्तानपुर, बडवा, मागरोल, रानपुर, आटोरा, खैराबाद, सुकेत, चेचट, मण्डाना, नीनोदा, सोरसन, पलायथा, कोयला, सोरखण्ड।

४ महासिरुलउमरा, पृष्ठ २८९।

ने इसे बुरहानपुर तथा कन्धार जैसे महत्वपूर्ण दुर्ग के घेरे के युद्ध में उत्तर दायित्वपूर्ण भार सौंपा। वह सदा हरावल का अधिकारी रहा और युद्ध में प्रथम पंक्ति में रह कर युद्ध-कौशल प्रदर्शित करता था। माधोसिंह आज्ञाकारी पुत्र, नीतिनिपुण राजा सन्तान-वत्सल पिता तथा कर्त्तव्यपरायण स्वामीभक्त था। मुगल शासन के प्रति इसकी भक्ति इतनी उच्च थी कि वह इस बारे में जरा भी संकोच नहीं करता था कि उसके कारण राजपूताने के अन्य राजपूत शासकों को भी युद्ध करना पड़ता है। औरंगजेब के वह विश्वासप्रिय व्यक्तियों में से था।

इसके नेतृत्व में कोटा राजपूताने का एक छोटे राज्य से परिणित होकर एक प्रभावशाली राजपूत राज्य बन गया। इसके राज्य में कुल मिला कर ४१ परगने थ। इनमें से कुछ परगने सूबा अजमेर की रणथम्भोर सरकार के नीचे तथा कुछ सूबा उज्जैन की गगरोन सरकार के अन्तर्गत थे। प्रत्येक परगने के लिए बादशाह का मालमाल देते थे जो अजमेर तथा उज्जैन के खजाने में जमा होती थी। प्रत्येक परगने में चौधरी कानूनगो और एक ठाकुर य तीन कर्मचारी होते थे। चौधरी व कानूनगो बादशाह द्वारा नियुक्त किए जाते थे। इनका पद पैतृक था तथा लगान-वसूली का कार्य करते थे तथा राजा के उस काम के सलाहकार होते थे। इनको लगान (राजस्व) वसूली करने में वेतन के साथ कमीशन भी दिया जाता था। ठाकुर राजा के अधीनस्थ होता था और शांति रक्षा के लिए जिम्मेदार होता था। इनके नीचे पटेल रियाया काश्तकार होते थे। राज्य का अधिकांश हिस्सा छोटी-छोटी जागीरों में बँटा होता था। जागीरदार राजा के साथ लड़ाइयों में जाते थे तथा राज्य की रक्षा करते थे।

राज्य की रक्षा के लिए एक सेना होती थी। माधोसिंह पंचहजारी मनसबदार था। अतः वह ५०० जात व २५ सवार रख सकता था। इसके अतिरिक्त जागीरदारों के पास स्वयं की एक सेना रहती थी। युद्ध-काल में सेना एकत्रित कर राजा को सहायता देने का भार जागीरदारों पर था। इसके अलावा राज्य की सेना के कई और अंग थे—पैदल पीलखाना शुतुरखाना आदि जिनका पृथक अध्यक्ष होता था परन्तु यह पद सामन्तों को ही दिया जाता था।

माधोसिंह द्वारा निर्मित कोटा में कई इमारतें अब भी सुरक्षित खड़ी हैं यथा पाटनपोल शहरपनाह कैथुनीपोल किला किशोरपुरा का दरवाजा आदि।

माधोसिंह के पाँच पुत्र थे—मुकुन्दसिंह, मोहनसिंह जुझारसिंह कन्हीराम व किशोरसिंह। मुकुन्दसिंह सबसे बड़ा पुत्र होने से माधोसिंह द्वारा उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया था। माधोसिंह के युद्ध में लग रहने के कारण वह ही राज्य

कार्य सम्हालता था। अपने पिता की अनुमति से इसने महाराजाधिराज की पदवी भी धारण करली थी। अपने पिता के स्वर्गवास के बाद यह ही गद्दी पर बैठा। मोहनसिंह व किशोरसिंह अपने पिता के साथ बराबर युद्धो में रहते थे। माधोसिंह इन पर बहुत प्रसन्न थे। अत मोहनसिंह को ८४ गावो सहित पलायथा की जागीर, किशोरसिंह को २४ गावो सहित सागोद की जागीर, जुझारसिंह को २१ गावो सहित कोटडा की जागीर तथा कन्हीराम को २७ गाँवो सहित कोयला की जागीर दी गई थी[1]।

राव मुकुन्दसिंह हाडा (वि० स० १७०७ से १७१५)

यह राव माधोसिंह का जेष्ठ पुत्र था और सम्वत् १७०७ मे अपने पिता की मृत्यु पर कोटा राज्य का स्वामी हुआ। बादशाह शाहजहाँ ने इसे कोटा का राजा स्वीकार किया और ३००० जात व २००० सवार का मनसब दिया[2]। इसने अपना जीवन बादशाह शाहजहाँ की सेना मे रह कर ही बिताया। जब यह राजकुमार ही था तब ही कन्धार की लडाइयो मे इसका सहयोग शाहजहाँ पाता रहा। राव मुकुन्द कन्धार के घेरो मे बडी वीरतापूर्ण लडा[3]। इसने मालवा तथा दक्षिण की लडाइयो मे भी भाग लिया। स. १७११ मे यह सादुल्लाखाँ के साथ चितौडगढ के घेरे पर नियुक्त किया गया। इसके शासनकाल मे मुगल शासन का प्रसिद्ध गृह-युद्ध (उत्तराधिकार का युद्ध) हुआ। वि० स० १७१४ भाद्रपद सुदि ९ को बादशाह शाहजहाँ बीमार हो गया। उसके चार पुत्रो मे (दारा, शुजा, औरगजेब व मुराद) राजसिंहासन के लिए युद्ध छिड गया। इस युद्ध मे राजपूताने के शासको ने बादशाह शाहजहाँ का पक्ष लिया जोकि अपनी मृत्यु के बाद दाराशिकोह को गद्दी देना चाहता था। इन नरेशो मे मुख्य जोधपुर के राठौड शासक जसवन्तसिंह और कोटा के शासक मुकुन्दसिंह हाडा थे। दक्षिण का सूबेदार औरगजेब अपने भाई मुराद (जो कि

---

१ टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५२२।

२ डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १४०-१४१।

३ उपरोक्त, पृष्ठ १४१-१४२, राव मुकुन्दसिंह का कन्धार के घेरे मे शाहजहाँ की सेवा में रत रहने का उल्लेख किसी भी साधनों द्वारा ज्ञात नही होता है। अब्दुलहमीद लाहौरी ने बादशाहनामा' मे जहाँ और राजपूत शासको का उल्लेख किया है, वहाँ मुकुन्दसिंह हाडा का कहीं जिक्र नही किया है। अत डा० शर्मा ने यह उल्लेख किया है कि मुकुन्दसिंह ३००० मनसवदार होने के कारण अवश्य युद्ध मे गया होगा।

गुजरात का सूबेदार था) से सन्धि कर उत्तर की ओर इस उद्देश्य से बढ़ा कि दारा को शक्तिहीन किया जाय। औरंगजेब की शक्ति को मार्ग में ही रोकने के लिए शाहजहाँ ने जसवन्तसिंह राठौड़ के नेतृत्व में एक सशक्त सेना भेजी जिसमें मुकुन्दसिंह हाडा व इसके अन्य चार भाई भी थे। उज्जैन के पास क्षिप्रा नदी के तट पर धरमत के मैदान में[1] औरंगजेब का शाही सेना के साथ युद्ध हुआ। यद्यपि राजपूत नरेश वीरतापूर्वक लड़े परन्तु शाही सेना कि विजय नहीं हो सकी। राव मुकुन्दसिंह युद्ध में मारा गया तथा उसके अन्य तीन भाइयों को भी इसी प्रकार वीरगति प्राप्त हुई। सब से छोटा भाई किशोरसिंह युद्ध में घायल अवस्था में पाया गया जिसके भी ४ घाव लगे थे। किशोरसिंह को इसके साथी राजपूत रणक्षेत्र से उठा लाये जो बाद में वह उपचार से अच्छा हो गया[2]। मुकुन्दसिंह ने अपने राज्य को दक्षिणी सीमा के पहाड़ यानी हाड़ौती और मालवा की सरहद के बीच के घाट पर एक किला तथा अपनी उपपत्नी (खवास) अबला मीणी[3] के लिए महल बनवाया और जहाँ घाटा शुरू होता है वहाँ वि० सं० १७०८ में एक बहुत बड़ा दरवाजा बनवाया। यह किला व घाटा सैनिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण था क्योंकि यह हाड़ौती व मालवा की सीमा का केन्द्र था। मोर्चाबन्दी के लिए यह एक अच्छी जगह थी। यह घाटा मुकुन्दसिंह के नाम पर मुकुन्दरा कहलाता है[4]। इसने और भी कई मजबूत भवन निर्मित किए। अन्ता का महल और कोटा व किले की दीवारें इसकी ही बनवाई हुई हैं।

---

१ विजय के बाद औरंगजेब ने इसका नाम बदल कर फतेहाबाद रखा। यह उज्जैन से १४ मील दक्षिण पश्चिम में है।

२ टॉड राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १५२२-२१।

सरकार औरंगजेब का इतिहास जिल्द २ पृष्ठ १५-१७।

आलमगीरनामा पृष्ठ ६८-७।

वंशभास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २६६७।

३ जनरल सर कनिंघम ने लिखा है कि 'अबला मीणी ने मुकुन्दसिंह के पास रहना स्वीकार करते हुए यह शर्त की थी कि दर्रे के पहाड़ पर उसके लिए महल बनवाया जावे और उस पर प्रति रात्रि ऐसा चिराग जलाया जावे जो अबला के पीहर वालों को दिखाई दे सके। तब से अब तक यह दीपक जलाया जाता है। रिपोर्ट ऑफ इण्डियन आर्क्योलोजीकल सर्वे जिल्द २२ पृष्ठ १११।

४ मुकन्दरा की प्रसिद्धि का एक कारण यह भी बताया जाता है कि होल्कर ने १८०४ ई० में ब्रिगेडियर मानसन की अंग्रेजी सेना को इसी स्थान पर हराया था।

टॉड राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १५८२।

राव जगतसिंह (विक्रम सम्वत् १७१५ से १७४०)

यह राव मुकुन्दसिंह हाडा का इकलौता पुत्र था। इसका जन्म वि० स० १७०१ (सन् १६४४ ई०) मे हुआ। जब धर्मत के युद्ध मे राव मुकुन्दसिंह रणखेत रहा तब उसकी मृत्यु के बाद वि० स० १७१४ (सन् १६५८ ई) मे कोटा की राजगद्दी पर आसीन हुआ। औरगजेब जब सामूगढ के युद्ध मे विजयी होकर आगरा मे अपने पिता शाहजहाँ को कैद कर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया। उसने राव जगतसिंह को शाही दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया। वहाँ पहुँचने पर राव जगतसिंह को २००० का मनसब तथा खिलअत प्राप्त हुई[1]। बादशाह का सम्मानित करने का मुख्य तात्पर्य उसको अपने पक्ष मे करना था क्योंकि वह जानता था कि बिना राजपूतो की सहायता के वह अपनी प्रारम्भिक कठिनाइयो का सामना नही कर सकेगा और राज्य का सही ढग से प्रबन्ध नही कर सकेगा। तब से जगतसिंह औरगजेब की सेवा मे बना रहा। जनवरी १६५९ ई मे औरगजेब को शाहजादा शुजा का सामना करना पडा तब राव जगतसिंह उसका सामना करने को भेजा गया[2]। खजूह के मैदान मे शुजा से सामना हुआ जिसमें विजय शाही सेना की हुई। इस प्रकार राव जगतसिंह के सहयोग का लाभ औरगजेब को शीघ्र ही प्राप्त हो गया[3]। औरगजेब ने शिवाजी के विरुद्ध जब कडी कार्यवाही प्रारभ की तब मरहठो के विरुद्ध राव जगतसिंह को ही भेजा[4]। दक्षिण मे ही इसकी मृत्यु स० १७४० की कार्तिक शुक्ला पचमी को हुई। इसके कोई पुत्र नही था। इसलिए इसके बाद राव माधोसिंह के चौथे पुत्र कन्हीराम के पुत्र प्रेमसिंह को कोटा के सामन्तो ने शासन का भार सौप दिया।

---

१ टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५२३, वशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २७३८, आलमगीरनामा पृ० १६३-६४।

२ आलमगीरनामा, पृ० २४५-५०।

३ वशभास्कर, तृतीय भाग, पृ० २७७०।

४ सम्वत् १७३७ और १७४० (ई० सन् १६८० और १६८३ के बीच) जगतसिंह प्राय दक्षिण मे रहा, कभी औररगाबाद, कभी बुरहानपुर मे और कभी जहानाबाद मे। दक्षिण मे इसने कई ब्राह्मणो को दान-दक्षिणाएँ दी। विशेष कर गजगणेश हाथी दान दिया गया। जगतसिंह औरगाबाद और बुरहानपुर के आसपास किसी लडाई में सम्भव है कि हैदराबाद के युद्ध मे शेख मिन्हाज से लडते हुए मारा गया।
डा० म ला शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १८६।

राव प्रेमसिंह (वि. सं. १७४० से १७४१)

राव माधोसिंह के पाँच पुत्र थे। चौथे पुत्र कन्हीराम को कोयला की जागीर प्राप्त हुई थी। जगतसिंह की मृत्यु के बाद उसके कोई पुत्र न होने के कारण कोटा के सरदारों ने वि. सं. १७४ (ई. सन् १६८३) में कन्हीराम के पुत्र प्रेमसिंह को कोयला से बुला कर कोटा का शासक नियुक्त किया। परन्तु यह महा मूर्ख और अयोग्य सिद्ध हुआ। इसको कुछ सरदारों की कूटचाल से राज्य मिला था जिनका उद्देश्य एक कमजोर शासक को अध्यक्ष मान कर अपनी शक्ति को सुरक्षित करना था। वास्तविक उत्तराधिकारी पलायथा वाले थे। प्रेमसिंह को इस प्रकार राजगद्दी मिलने के कारण उन सरदारों के कहने में रहना पड़ता था। इससे राज्य-शासन में गड़बड़ी होने लगी। परगनों में लूटमार होने लगी। खजाना खाली होने लगा क्योंकि लोगों ने मालगुजारी आदि देना बन्द कर दिया चारों परगन पर गौड़ों ने अधिकार कर लिया। अत: इसके विरुद्ध जन विरोधी आन्दोलन उठा और विरोधी सरदारों ने उसे गद्दी से उतार कर इसे कोयला वापस भेज दिया[१]। और उसके स्थान पर राव माधोसिंह के सबसे छोटे पुत्र किशोरसिंह को ठिकाना साँगोद से बुला कर कोटा की राजगद्दी पर कार्तिक शुक्ला द्वितीया वि. सं. १७४१ को बैठाया।

राव किशोरसिंह (वि. सं. १७४१–१७५२)

प्रेमसिंह को गद्दी से हटा कर जब सामन्तों ने किशोरसिंह को कोटा राज्य सौंपा उस समय यह शासन करने के लिए काफी वृद्ध था परन्तु कोटा की विचित्र राजनैतिक व्यवस्था को सही नेतृत्व इसी के द्वारा प्राप्त हो सकता था। अत: इसने वि. सं. १७४१ में कोटा का शासक होना स्वीकार किया[२]। औरंगजेब ने इसे ३०० की मनसब और खिलअत देकर इसे कोटा का राजा स्वीकार कर लिया। इसकी बहादुरी व पराक्रम तथा योग्यता से वह अत्यंत प्रभावित था। शाहजहाँ के काल में जब दक्षिण और बलख विजय के लिए औरंगजेब को भेजा उस समय औरंगजेब ने माधोसिंह हाड़ा तथा उसके पुत्रों का युद्ध कौशल देखा था। धर्मत के स्थान पर औरंगजेब के विरोधी राजपूतों में हाड़ाओं ने जिस विरोध

१ टाड : राजस्थान जिल्द १ पृ. सं. १५२१। ठाकुर लक्ष्मणदान : शाही सनद प्रेमसिंह को प्राप्त नहीं हुई थी इसलिए उमरावों ने प्रेमसिंह को गद्दी से उतार दिया।
वंशभास्कर : तृतीय भाग पृ. सं. २८८।

२ जगतसिंह की मृत्यु के समय किशोरसिंह बीजापुर की लड़ाइयों में व्यस्त था। उस समय उसे १ का मनसब मिल चुका था। कोटा राज्य का इतिहास भाग १ पृ. २।

का प्रदर्शन करते हुए वीरगति को प्राप्त किया। उससे औरगजेब पर अधिक प्रभाव पडा। धर्मत के युद्ध मे १५ अप्रेल १६५८ ई. को किशोरसिंह के ४० घाव लगे थे। उसको भली प्रकार सेवा की गई। अत वह बच गया। अभी उसके घाव भरने भी न पाए थे कि औरगजेब ने शुजा के विरुद्ध राव जगतसिंह और किशोरसिंह को भेजा। खजुहा के युद्ध मे ३ जनवरी १६५६ को उसे शानदार सफलता प्राप्त हुई। औरगजेब हाडा राजपूतो की शक्ति को पहचानता था। इसलिए वह उसे अपनी ओर ही रखने की नीति अपनाता रहा। वह जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह से शकित रहता था। अत कही राजपूत वर्ग उसके विरुद्ध एक न हो जाय, इसलिए इस दृष्टि को सामने रखते हुए कि फूट डाल कर ही (भेद नीति) शासन किया जाता है, उसने हाडा शासको को अपनी ओर मिलाए रक्खा।

राजगद्दी पर बैठने के कुछ ही समय बाद औरगजेब के आदेशानुसार उसे दक्षिण में जाना पडा। अपने चारो पुत्र—विशनसिंह, रामसिंह, अर्जुनसिंह और हरनाथसिंह सहित वह दक्षिण की ओर जाना चाहता था। परन्तु उसके बडे लडके विशनसिंह ने दक्षिण मे मुगलो के नीचे युद्ध करने मे अपना अपमान समझा। उसने मना कर दिया। इस पर किशोरसिंह ने उसे राजगद्दी के अधिकार से वचित कर दिया और अन्ता की जागीर दी[1]। रामसिंह, जो दक्षिण मे उसके साथ लडाई मे गया था, उसको उत्तराधिकारी बनाया। युद्ध मे वीरता प्रदर्शित करने पर रामसिंह को १००० का मनसब भी मिला था। किशोरसिंह १६८५ ई० मे बीजापुर विजय करने के लिए औरगजेब के साथ गया। औरगजेब ने जब बीजापुर पर अधिकार कर लिया तब उसने किशोरसिंह को खिलअत, हाथी, घोडे, और जवाहरात पुरस्कार स्वरूप दिए तथा कुलाई का परगना भी उसको दिया गया।

औरगजेब के साथ दक्षिण मे यह अपने अन्तिम समय तक रहा। गोलकुण्डा-विजय के समय (ई सन् १६८४-८५), हैदराबाद का घेरा (ई सन् १६८६) उसके बाद मरहठा राजा शभाजी व राजाराम के विरुद्ध शाही युद्ध मे (१६८८ १६९५ ई) बराबर औरगजेब का साथ देता रहा[2]। औरगजब की क्षीण शक्ति को

---

१ टाड राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० स० १५२३।

२ किशोरसिंह ने १२ वर्ष तक राज्य किया। वह केवल दो चार बार कुछ महिनों के लिए कोटा आया। शेष समय दक्षिण में ही बीता। मेवाड के राणा और शाहजादा आजम के बीच सुलह कराने मे किशोरसिंह का मुख्य हाथ था। यह सुलह की बातचीत सम्वत् १७३७ के चैत्र मास मे प्रारम्भ हुई। आजम से मिलने श्रावण कृष्णा ३ सम्वत् १७३७ को राणा जगतसिंह आया। किशोरसिंह हाडा वहाँ उसके स्वागत के लिए उपस्थित था।

ओझा राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृ० ८६७।

राव रामसिंह (वि स १७५२-१७६४)

किशोरसिंह अधिकतर युद्ध क्षेत्र मे रहता था। अत. कोटा के शासन की देखरेख का पूर्ण भार अपने पुत्र रामसिंह को सौंप कर जाया करता था परन्तु किशोरसिंह की अंतिम दक्षिण यात्रा के समय रामसिंह अपने पिता के साथ था। अर्काट के युद्ध मे राव किशोरसिंह की सम्वत् १७५२ (अप्रेल सन् १६९६) मे मृत्यु हो गई[1]। अत जब यह सूचना कोटा पहुँची तो रामसिंह की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर उसके बडे भाई विष्णुसिंह ने कोटा पर अधिकार कर लिया व स्वय शासक बन बैठा। औरगजेब ने उसको मान्यता नही दी, बल्कि रामसिंह को तीन हजार मनसब तथा तीन हजारी सवारो का अधिकारी बना कर शाही सेना के साथ कोटा पर अधिकार करने भेजा[2]। विष्णुसिंह और रामसिंह दोनो भाइयो मे आँवा गाँव मे युद्ध हुआ। इस लडाई मे इसके एक भाई हरनाथसिंह की मृत्यु हो गई और विष्णुसिंह घायल होकर अपनी ससुराल मेवाड राज्य के पाँडेर स्थान मे चला गया जहाँ वह तीन वर्ष के बाद मर गया। इस प्रकार रामसिंह कोटा राज्य का स्वामी हुआ। कोटा राज्य पर सुरक्षित आसीन होने के बाद यह दक्षिण मे शाही सेना मे जा उपस्थित हुआ। दक्षिण करनाटक तथा मरहठो से जिञ्जी प्राप्त करने का भार जुलफिकारखाँ को दिया गया था। राव रामसिंह जुलफिकारखाँ के नेतृत्व मे मरहठो के सरदार सन्ताजी घोरपडे के पुत्र राणु से जा भिडे। विजय इसकी रही जिसके सम्मान मे सम्वत् १७५७ (ई० सन् १७००) मे बादशाह से इसे नक्कारा प्राप्त हुआ[3]। दक्षिणियो से दूसरा

---

१ डा० मथुरालाल शर्मा का ऐसा मत है कि जुलफिकारखाँ ने अरनी का किला विजय कर रामसिंह के सुपुर्द कर दिया था। वही पर लडते हुए किशोरसिंह का देहान्त हुआ था। दक्षिण के युद्धो मे रामसिंह ने आदोमी विजय (१६८७), पन्हाला विजय (१६८९) मे भाग लिया। रामसिंह उस समय युवराज पद पर था। अत कोटा नरेश की हैसियत से वहाँ पर उसने कई पट्टे परवाने और ताम्रपात्र जारी किए थे। बीजापुर विजय के बाद रामसिंह को १००० की मनसब प्राप्त हुई। कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २२१-२२२।

२ उपरोक्त, पृ० २२३।

३ महामिरुलउमरा, पृ० ३४९। जुलफिकार खाँ के नेतृत्व मे जिञ्जी के प्रसिद्ध घेरे मे (१६९७) रामसिंह को 'शैतानदरी' हरावल पर भेजा गया। विजय रामसिंह की रही। राजाराम (शिवाजी का दूसरा पुत्र) जिञ्जी से भागने के समय अपना परिवार जिञ्जी मे ही छोड गया। रामसिंह ने राजाराम के कुटुम्ब की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया और पालकियों मे उन्हें बिठा कर जिञ्जी से रवाना किया।

युद्ध भरनखेरे के पास सन् १७ ४ मे हुआ जहाँ हाड़ा राजपूतों के आगे दक्षिणी टिक न सके। शाहजादा आजम अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपने पिता से सिफारिश की कि इसका मनसब बढ़ा दिया जाय। इसके मनसब में वृद्धि की गई और बून्दी के मऊ मैदान का परगना सरवल छीपाबड़ोद व रतनपुर जागीर रूप में इनायत हुए[1]।

औरंगजेब की मृत्यु ३ मार्च १७०७ में अहमदनगर में होते ही उसके पुत्रों में दिल्ली के सिंहासन प्राप्त करने के लिए युद्ध हुआ। रामसिंह ने उस समय शाहजादा आजम का पक्ष लिया। आजम ने इसका मनसब चार हजारी का कर दिया। शाहजादा मुअज्जम जो कि औरंगजेब की मृत्यु के समय उत्तर पश्चिम सूबे में था दिल्ली प्राप्त करने के लिए लश्कर सहित चला। दोनों भाइयों के बीच धौलपुर व आगरा के बीच जाजऊ के स्थान पर १८ जून १७ ७ को युद्ध हुआ। इस युद्ध में बून्दी के हाड़ा शाहजादा मुअज्जम के पक्ष में लड़े और कोटा वाले शाहजादा आजम की ओर से लड़े[2]। प्रथम बार हाड़ों की दोनों शाखाओं में विरोधी दलों में सम्मिलित होकर आपस में युद्ध हुआ। इस युद्ध में शाहजादा मुअज्जम मारा गया। आजम विजयी होकर दिल्ली के सिंहासन पर बहादुर शाह के नाम से बैठा। राव रामसिंह जाजऊ के इस युद्ध में सन् १७ ७ की २ जून (आसाढ़ वदि ४ सम्वत् १७६४) को मारा गया[3]।

इसी समय से बून्दी व कोटा के बीच युद्धों का श्रीगणेश हुआ। इसका शासन शान्तिकाल के लिए प्रसिद्ध है। केवल एक बार मऊ में उपद्रव हुआ वह भी दबा दिया गया। मेवाड़ के राणा व आमेर के राजा इसका सम्मान करते थे।

---

१ महासिंहमनसमरा पृ १४६।

२ शाहजादा आजम १४ मार्च १७ ७ को शाही तख्त पर अहमदनगर में बैठा और शाहजादा मुअज्जम ने १२ जून १७ ७ को आगरा पहुँच कर शाही कोष पर अधिकार कर लिया। रामसिंह आजम से २ अप्रेल १७ ७ को औरंगाबाद मे मिला और आजम का साथ देने का निश्चय किया।

३ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग पृ २९९७।
इरविन लेटर मुगल्स जिल्द १ पृ २५११।
टाड राजस्थान जिल्द ३ प १५२४।

महाराव भीमसिंह (वि० स० १७६४ से १७७७)

राव रामसिंह के जाजव के रणक्षेत्र मे वि० स० १७६४ (ई० सन् १७०७) को वीरगति प्राप्त होने पर उसका पुत्र भीमसिंह कोटा की राजगद्दी पर बैठा। इसने भील और खीची राजपूतो के बहुत से इलाको को दबा कर अपना राज्य बढाया। खीचियो से गागरोन का किला लिया। बारां, मांगरोल, मनोहरथाना, और शेरगढ के परगनो पर भी अधिकार जमाया। भीलो के राजा चन्द्रसेन को, जिसके पास ५०० घुडसवार और ८०० तीरन्दाज रहते थे, निर्दयता से मार करके उसका राज्य इसने कोटा राज्य मे मिलाया। इसके सिवाय ओनारसी, पीडावा, डीग और चन्द्रावलो की भूमि पर भी इसने अधिकार किया[1]। परन्तु इसकी मृत्यु के बाद ही यह प्रदेश फिर से निकल गए।

जाजव की लडाई से कोटा व बून्दी मे पारस्परिक शत्रुता हो गई। जाजव के युद्ध मे शाहजादा मुअज्जम (बहादुरशाह) का विरोध रामसिंह ने किया और बून्दी के बुद्धसिंह ने पक्ष लिया। बहादुरशाह कोटा के हाडाओ को शका की दृष्टि से देखने लगा। बून्दी नरेश ने इस नई राजनैतिक व्यवस्था का पूरा लाभ उठाया। बहादुरशाह ने बुद्धसिंह को कोटा बून्दीमे मिलाने की आज्ञा देदी[2]। बुद्धसिंह ने अनुमति पाकर अपने मत्रियो को कोटा राज्य पर अधिकार करने के लिए लिख दिया और स्वय ने आमेर (जयपुर) जाकर वहा जयसिंह महाराज की बहिन से विवाह कर लिया। इसके बाद वह बेगू (मेवाड) की ओर होता हुआ बहादुरशाह के साथ दक्षिण की ओर चला गया[3]। इधर बून्दी के मत्रियो ने कोटा पर आक्रमण कर दिया[4]। इस सेना को भीमसिंह ने बुरी तरह से हराया। बून्दी की सेना भाग खडी हुई[5]। एक बार भीमसिंह ने बडी चतुराई

---

१ टाड राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५२४-१५२५।

२ वशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० २९९८-९९ बहादुरशाह को महाराजा राव की पदवी दी तथा कोटा के ५४ परगने मिलाने का फरमान दिया था।

३ उपरोक्त, पृ० ३०००-१० बेंगू के राव की लडकी से भी बुद्धसिंह ने विवाह किया और वहाँ से अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि कोटा पर आक्रमण किया जाय।

४ यह कार्य जोधराज वैश्य, गगाराम का भाई और कनकसिंह के पुत्र जोगीराम के नेतृत्व मे हुआ था। वशभास्कर पृ० ३००८।

५ डा० शर्मा का मत है कि युद्ध के पहले भीमसिंह ने बालकृष्ण व्यास और फतेहचन्द कायस्थ को भेज कर शान्ति रखने का प्रयास किया था पर असफल रहा। कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० २५६।

(१७१६ ई०) मे वारां और मउ के परगने भी वादशाह के आदेश से वुध्दसिंह को लौटा दिये गये[1]। इस पर भीमसिंह व फरुखसियार का विरोध हो गया।

फरुखसियार की सैयद वन्धुओ से नही वनी। अत २८ फरवरी सन् १७१६ मे सैयदो ने फरुखसियार को कैद कर मार डाला। वादशाह को कैद करने के समय सैयद भाइयो को डर था कि वुद्धसिंह और जयसिंह वादशाह के मित्र होने के नाते उसे पुन तख्त पर वैठाने का प्रयत्न न करें। अतः उन्होने वुद्धसिंह को, जो उस समय दिल्ली ही था, मार डालने की योजना वनाई। सैयद हुसेनअली के साथ जोधपुर के अजीतसिंह, किशनगढ के राजसिंह तथा कोटा के भीमसिंह ने वुद्धसिंह के डेरे पर हमला किया। वुध्दसिंह के कई वीर मारे गए। वुध्दसिंह लाहौरी दरवाजे होता हुआ भाग निकला[2]। इसके वाद फरुखसियार को मार डाला गया। वेदारवख्त के पुत्र वेदारदिल को रफीउद्दरजात के नाम से राजगद्दी पर वैठाया गया। रफीउद्दरजात ने भी ४ जून सन् १७१८ को राजगद्दी छोड दी और उसके वाद वहादुरशाह का पोता रफीउद्दोला गद्दी पर वैठाया गया। वह १८ सितम्वर १७१६ मे मर गया। इसके वाद उसका भाई मुहम्मदशाह तख्त पर वैठाया गया। इस प्रकार सैयद वन्धु दिल्ली की राजनीति के सर्वेसर्वा थे। राजनैतिक उथल-पुथल से शासन मे ढिलाई आने लगी। शाही फरमानो की अवहेलना की जाने लगी[3]। ऐसे समय मे साम्राज्य मे विद्रोह होने लगा। वादशाह के आदेशो की कोई परवाह नही की जाने लगी। इलाहवाद के सूवेदार छवेलाराम ने सैयदो के विरुध्द विद्रोह कर दिया। वून्दी का वुध्दसिंह हाडा उमसे जा मिला[4]। इस पर सैयदो ने १७ नवम्वर १७१६ को दिलावरखां के

---

१ फरुखसियार के काल मे राजधानी मे ३ दल थे—मुगल, तुरानी व इरानी। फरुखसियार सैयद भाइयो से मुक्त होना चाहता था। उसने दक्षिण के सूवेदार निजामुल्क से सांठ-गांठ की। सैयद भाइयो मे वडा भाई अव्दुला खां वजीर था और छोटा भाई हुसेनअली सेनापति। हुसेन अधिक चालाक था। जयसिंह व वुद्धसिंह उसके विरोधी थे। अत फरुखसियार ने हुसनअली को दक्षिण का सूवेदार वना कर मराठों के विरुद्ध भेज दिया। इसी प्रकार लाभ उठा कर जयसिंह ने वुद्धसिंह को फरुखसियार से पुन वून्दी दिलादी।

२ टाड राजस्थान, भाग ३, पृ० १५२५।

वशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३०६५-६७।

३ इरविन लेटर मुगल्स, भाग १, पृ० ८८६।

४ इरविन लेटर मुगल्स, [illegible]

नरवरी भी इस समय काम आया। दिलावरखाँ भी एक गोले की चोट से मारा गया। शाही सेना तितर-वितर हो गई। विजयनिजाम की रही[1]।

भीमसिंह बड़ा वीर और धैर्य्यवान् नरेश था। इसके शरीर पर कई युध्दो मे भाग लेने के कारण, कई घाव थे। अन्तिम समय मे कुरवाई के रण-क्षेत्र मे इन घावो को देख कर लोगो ने आश्चर्य किया। परन्तु मरते समय भी भीमसिह ने यही कहा कि हाडा के राज्य व देश की रक्षा करने वालो के ऐसे निशान मिलते ही हैं तथा राजपूत सन्तान का धर्म है कि वह युध्द मे सदा आगे रहे। कोटा के नरेशो मे भीमसिंह ही पहला नरेश था जिसने महाराव की पदवी धारण की। इसके पहले ये 'राव' कहलाते थे। इसका अधिकाश समय युध्दो मे ही बीता। अत अपने राज्य का आन्तरिक प्रबन्ध ठीक नही कर सका। ज्यादातर राज्य जागीरदारो मे बँटा था। अत कोटा का शासक एक प्रकार से जागीरदारो के ही हाथ मे था। यो अत्याचारी जागीरदारो की जागीरें जब्त कर ली जाती थी। इसने सांवलजी के मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह वल्लभ सम्प्रदायवादी था[2]। भीमसिंह ने जजिया कर भी माफ करवाया था।

महाराव भीमसिंह के समय हलवर (धागधडा राज्य) का झाला भाउसिंह अपने पुत्र माधोसिंह सहित दिल्ली जाता हुआ कोटा आया। वह अपने पुत्र माधोसिंह को कोटा नरेश की सेवा में छोड कर आप आगे दिल्ली चला गया। उसके साथ २५ घुडसवार भी थे। यह माधोसिंह झाला अपने ननिहाल ठिकाना सावर (अजमेर) मे ही छोटे से बडा हुआ था। माधोसिंह बहुत ही साहसी, पराक्रमी और चतुर था। भीमसिंह इस समय योग्य राजपूतो को इकट्ठा कर रहा था क्योंकि उसे सैय्यद-बन्धुओ की सहायता मे निजामुल्मुल्क पर चढाई करनी थी। माधोसिंह झाला को अपनी सेना मे नौकर रख लिया। थोडे ही समय मे अपनी चतुराई व वीरता से महाराव को प्रसन्न कर लिया। अत उसकी बहिन का विवाह महाराव ने अपने युवराज अर्जुन से करा दिया[3]। इससे

---

१ वंशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० ३०७८-७९।
इरविन लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृ० २८-३१।
टाड राजस्थान, तृतीय भाग, १५२६।

२ डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३०८। वीर विनोद भाग ३, पृ० १४७२।

३ वीरविनोद में यह उल्लेख है कि महाराव अर्जुनसिंह की शादी माधोसिंह झाला की बेटी से हुई थी।

टाड के कथनानुसार बहन लिखा है। टाड जिल्द २, पृ० ५६५-६६।
झालावाड गजेटीयर, पृ० १९१ के अनुसार 'झाला माधोसिंह की बहन युवराज अर्जुनसिंह थाटी" लिखा मिलता है

स० १७८५ (ई०स० १७२८) मे युद्ध हुआ जिसमे श्यामसिंह मारा गया[१]। श्यामसिंह की मृत्यु पर महाराव दुर्जनसाल को बहुत दुःख हुआ और कहा कि यदि मुझे ऐसा मालूम होता तो मै अपना राज्य छोड़ देता। बाद मे इसने वि० स० १७९७ मे श्यामसिंह की मृत्यु के स्थान पर एक छत्री भी बनवाई[२]। इस गृह-कलह का एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ था कि कोटा राज्य की शक्ति कमजोर हो गई। इस विजय के पहले ही मुगल सम्राट मुहम्मदशाह ने हाथी, खिलअत और मसनदन शीनी भेज कर राव दुर्जनसाल को कोटा का शासक स्वीकार कर लिया था[३]।

महाराव दुर्जनसाल का मुगल दरबार मे काफी प्रभाव था। शाह मुहम्मद शाह में वह व्यक्तित्व व शक्ति नही थी जिससे मुगलों की परम्परा की शक्ति निभा सके[४]। दरबार मे उसकी कोई परवाह नही करता था। गद्दी पर बैठने के कुछ समय बाद जब दुर्जनसाल से मिलने के लिये दिल्ली गया[५] तब गायो की रक्षा के हेतु वहा के कुछ कसाइयो और नगर कोतवाल को मार डाला था। ये गायें शाही रसोईघर के लिये कटने वाली थी। लेकिन इसने बादशाह की कोई परवाह न कर गायो को कोटा भेज दिया। इसके अलावा गायो का जो कसाई-खाना यमुना नदी के किनारे था उसे वहाँ से हटवा दिया क्योंकि यमुना नदी के किनारे होने से गायो का रक्त यमुना मे जा मिलता था[६]।

मराठो के पेशवा बाजीराव प्रथम की प्रधानता मे मराठो ने पहले-पहल कोटा पर, वि० स० १७९५ मे, धावा किया। उस समय दुर्जनसाल ने मरहठो को

---

१ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३०६४।

श्यामरु दुजनसल्लके, भो भूहित घमसान।
अग्रज श्यामसिंह मारिके, भो नृप दुर्ज्जनसाल॥

२ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३३९।

३ टाड राजस्थान, तृतीय जिल्द, पृ० १५२९।

४ खफीखाँ मुहम्मद शाह की पतित स्थिति का वर्णन करते लिखता है कि वह (बादशाह) नपुंसको की संगति मे अधिक रहता था, और उन्ही लोगो को राज्य के ऊँचे पद दिये जाते थे। (पृ० ९४०)

५ मुहम्मदशाह के विरोधियो मे मारवाड के शासक अजीतसिंह व मेवाड के महाराणा थे। जयसिंह, जयपुर नरेश ने प्रत्यक्ष रूप मे बादशाह का विरोध नही किया था परन्तु धीरे २ वह अपनी स्वतंत्र नीति अपनाने लगा, मराठों से मित्रता करली और हिन्दूपद पादशाही का स्वप्न देखने लगा। सिर्फ कोटा का शासक दुजनसाल ही उसका मित्र रह गया था।

६ टाड राजस्थान, तृतीय जिल्द, पृ० १५२९।

माधोसिंह की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। कुछ दिनों महाराव ने उसे फौजदार के पद पर नियुक्त किया और उसको कोटा के पास नानता की जागीर दे दी। इस जागीर की आय १२०) रु. थी। आगे चल कर माधोसिंह झाला के परिवार ने कोटा की राजनीति में प्रमुख भाग लिया और झालावाड़ की रियासत अलग से स्थापित की।

महाराव भीमसिंह के अर्जुनसिंह, श्यामसिंह और दुर्जनशाल नामक तीन पुत्र थे। भीमसिंह की मृत्यु के बाद अर्जुनसिंह वि० सं० १७७७ में गद्दी पर बैठा। यह केवल ३ वर्ष तक ही राज्य कर सम्वत् १७८० (सन् १७२३ ई०) में स्वर्ग सिधारा। इसके कोई पुत्र नहीं था। इस कारण इसने अपने छोटे भाई दुर्जनशाल को अपना उत्तराधिकारी बनाने की इच्छा राज्य के प्रमुख सरदारों के समक्ष प्रकट की। इस समय बून्दी राज्य पुनः बुद्धसिंह को प्राप्त हो गया तथा बून्दी के सब परगनों से कोटा के थाने उठवा दिये गये।

महाराव दुर्जनशाल (वि० सं० १७८०-१८१३)

अर्जुनसिंह की अन्तिम इच्छानुसार राव दुर्जनशाल कोटा की राजगद्दी पर बैठा। उसका राज्याभिषेक वि० सं० १७८० (ई० स० १७२३) मार्गशीर्ष वदि ५ में हुआ। गद्दी पर बैठते ही इसे एक बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। महाराव दुर्जनशाल का बड़ा भाई श्यामसिंह इस समय यह विचार कर रहा था कि अर्जुनसिंह के बाद कोटा की राजगद्दी पर उसका अधिकार है अतः अपने भाई दुर्जनशाल के विरुद्ध विद्रोह कर बैठा। राजगद्दी के लिये इस युद्ध को प्रोत्साहन देने का कार्य जयपुर के शासक सवाई जयसिंह ने किया था। क्योंकि वह इस ताक में था कि बून्दी व कोटा के राज्य उसके प्रभाव में रहें। अतः उसकी राजनैतिक सफलता इस बात में थी कि कोटे का राजा ऐसा व्यक्ति बने जो उसके इशारों पर चलता रहे। गृह-युद्ध के इस अवसर पर सवाई जयसिंह ने श्यामसिंह का साथ दिया। जयपुर की सेना की सहायता पाकर श्यामसिंह ने कोटा पर आक्रमण कर दिया। दोनों भाइयों में धमलिया[1] गांव के पास

---

१ धरमपुरिया का युद्ध सं० १७ ५ में।

का एक हाथ तोप के गोले से पोष शुक्ला १५ को उड गया। अन्त मे किलेदार हिम्मतसिंह की चतुराई और हाडो की वीरता से आपस मे सुलह हो गई। महाराव ने बून्दी के पाटया और काचरण परगने तथा ४ लाख रुपये फोज-खर्च देकर मरहठो से पीछा छुडवाया।

गुगोर का ठाकुर भीमसिंह के देहात पर कोटा से अलग हो गया अत स० १८१० (ई० स० १७५३) मे महाराव ने गढ गुगोर को वापस लेना चाहा पर इसमे सफल नही हुआ। खीचियो के राजा बलभद्र ने सामना किया। यहाँ तक कि रामपुरा, शिवपुर व बून्दी के सरदारो ने दुर्जनसाल का सामना करना चाहा परन्तु इसी समय बून्दी के रावराजा उम्मेदसिंह ने कोटा की सहायता की, जिससे कोटा राज्य खीचियो के हाथ मे जाने से बच गया[1]।

स० १८१३ के श्रावण शुक्ला ५ (ई० स० १७५६) को महाराजा दुर्जनसाल का स्वर्गवास हुआ। इन्होने ३२ वर्ष तक राज्य किया। इनका विवाह स० १७९१ आषाढ कृष्णा ९ (सन् १७३४ जून) को उदयपुर के महाराणा जगतसिंह दूसरे की बहिन राजकुमारी ब्रजकुँवरबाई के साथ हुआ था इसलिये महाराणा ने गद्दी पर बाई तरफ बैठने की इज्जत महाराव को दी और दूसरे नरेशो की भाँति उदयपुर से महाराव के नाम पर भी लिखा जाने लगा[2]।

इसके कोई पुत्र नही था। इससे निराश होकर ये कभी-कभी कह बैठते थे कि दूसरे का हक छीनने वाले के उत्तराधिकारी कहाँ से आवें? इसलिये महाराव के पीछे अन्ता ठिकाने का जागीरदार अजीतसिह गोद आकर राजगद्दी पर बैठा[3]। दुर्जनसाल बडा ईश्वर-भक्त था। वि० स १७९८ की कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को उसने नाथद्वारे मे एक धार्मिक उत्सव का आयोजन किया तथा वहाँ शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के ७ स्वरूपों—बिट्ठलनाथजी, नवनीतप्रियाजी, द्वारिकारूपजी, गोकुलचन्दजी, मथूरनाथजी, गोकुलनाथ, मदनमोहनजी, को एकत्र करवाया। इस अवसर पर जयपुर के सवाई जयसिंह, करोली के राजा गोपालसिंह, उदयपुर के महाराणा जगतसिंह, द्वितीय, भरतपुर के जाट जवाहरमल, भैसरोड के

---

१ टॉड राजस्थान, पृ० १५३०।

२ ओझा राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृ० ९३३। यह रानी महाराणा सग्रामसिंह द्वितीय की पुत्री थी। सग्रामसिंह का देहान्त माघ सम्वत १७९० मे ही हो चुका था, अत ब्रजकुवरबाई का कन्यादान उनके भाई महाराणा जगतसिंह ने किया।

३ गोद तो अजीतसिंह के पुत्र शत्रुशाल को लेना चाहता था परन्तु हिम्मतसिंह झाला (जो कि उस समय सेनापति था) ने जोर दिया कि पिता होते हुए पुत्र को किस प्रकार गद्दी दी जा सकती है। अत अजीतसिंह वृद्धावस्था मे गोद आया।

का एक हाथ तोप के गोले से पोष शुक्ला १५ को उड गया। अन्त मे किलेदार हिम्मतसिंह की चतुराई और हाडो की वीरता से आपस मे सुलह हो गई। महाराव ने बून्दी के पाटया और काचरण परगने तथा ४ लाख रुपये फोज-खर्च देकर मरहठो से पीछा छुडवाया।

गुगोर का ठाकुर भीमसिंह के देहात पर कोटा से अलग हो गया अत स० १८१० (ई० स० १७५३) मे महाराव ने गढ गुगोर को वापस लेना चाहा पर इसमे सफल नही हुआ। खीचियो के राजा बलभद्र ने सामना किया। यहाँ तक कि रामपुरा, शिवपुर व बून्दी के सरदारो ने दुर्जनसाल का सामना करना चाहा परन्तु इसी समय बून्दी के रावराजा उम्मेदसिंह ने कोटा की सहायता की, जिससे कोटा राज्य खीचियो के हाथ मे जाने से बच गया[1]।

स० १८१३ के श्रावण शुक्ला ५ (ई० स० १७५६) को महाराजा दुर्जनसाल का स्वर्गवास हुआ। इन्होने ३२ वर्ष तक राज्य किया। इनका विवाह स० १७९१ आषाढ कृष्णा ६ (सन् १७३४ जून) को उदयपुर के महाराणा जगतसिंह दूसरे की बहिन राजकुमारी ब्रजकुँवरबाई के साथ हुआ था इसलिये महाराणा ने गद्दी पर बाईं तरफ बैठने की इज्जत महाराव को दी और दूसरे नरेशो की भाँति उदयपुर से महाराव के नाम पर भी लिखा जाने लगा[2]।

इसके कोई पुत्र नही था। इससे निराश होकर ये कभी-कभी कह बैठते थे कि दूसरे का हक छीनने वाले के उत्तराधिकारी कहाँ से आवें? इसलिये महाराव के पीछे अन्ता ठिकाने का जागीरदार अजीतसिंह गोद आकर राजगद्दी पर बैठा[3]। दुर्जनसाल बडा ईश्वर-भक्त था। वि० स १७९८ की कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को उसने नाथद्वारे मे एक धार्मिक उत्सव का आयोजन किया तथा वहाँ शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के ७ स्वरूपो—बिट्ठलनाथजी, नवनीतप्रियाजी, द्वारिकारूपजी, गोकुलचन्दजी, मयूरनाथजी, गोकुलनाथ, मदनमोहनजी, को एकत्र करवाया। इस अवसर पर जयपुर के सवाई जयसिंह, करोली के राजा गोपालसिंह, उदयपुर के महाराणा जगतसिंह, द्वितीय, भरतपुर के जाट जवाहरमल, भैसरोड के

१ टॉड राजस्थान, पृ० १५३०।

२ ओझा राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृ० ९३३। यह रानी महाराणा सग्रामसिंह द्वितीय की पुत्री थी। सग्रामसिंह का देहान्त माघ सम्वत १७९० मे ही हो चुका था, अत ब्रजकुवरबाई का कन्यादान उनके भाई महाराणा जगतसिंह ने किया।

३ गोद तो अजीतसिंह के पुत्र शत्रुशाल को लेना चाहता था परन्तु हिम्मतसिंह झाला (जो कि उस समय सेनापति था) ने जोर दिया कि पिता होते हुए पुत्र को किस प्रकार गद्दी दी जा सकती है। अत अजीतसिंह वृद्धावस्था मे गोद आया।

सूरतसिंह चूडावत बगू के देवसिंह, आदि को सपरिवार आमन्त्रित किया गया। इस उत्सव पर दुर्जनसाल ने लगभग १ लाख रुपये खर्च किये[1]।

उसने अन्नकूट आदि वल्लभ सम्प्रदाय के कई उत्सव भी जारी किये थे। उसके समय विक्रम सं. १८०१ में मथुरानाथजी बूंदी से कोटा आये थे। मथुरानाथजी के लिये राज्य मंत्री द्वारिकादास की हवेली अर्पण की गई जिसमें अब तक मथुरानाथजी प्रतिष्ठित हैं। इस मन्दिर के खर्च के लिये १२ रु. की जागीर के गाँव प्रदान किये। वि. सं. १८१२ में महाराव दुर्जनशाल द्वारिका की यात्रा करने भी गया था।

महाराव दुर्जनशाल एक बहादुर नरेश था। उसमें अंदर राजपूतों के गुण विद्यमान थे। मिलनसारी दयालुता और वीरता के लिये वह प्रसिद्ध था। उसे सूअर के शिकार का बड़ा शौक था और शिकार के समय अक्सर रानियों को अपने साथ रखता था[2]।

महाराव अजीतसिंह (वि. सं. १८१३-१८१५)

दुर्जनशाल के कोई पुत्र नहीं था। अतः उसके बाद उसका निकटतम संबंधी विशनसिंह का ज्येष्ठ पौत्र और अन्ते का जागीरदार अजीतसिंह राजगद्दी पर बैठा। यों तो दुर्जनशाल ने अजीतसिंह के पुत्र शत्रुशाल को गोद लिया था क्योंकि उस समय अजीतसिंह दुर्जनशाल की महाराणी से भी आयु में बड़ा था। मंत्री हिम्मतसिंह झाला ने यह नहीं चाहा कि अजीतसिंह के जीवित रहते शत्रुशाल गद्दी पर बैठे। अतः उसने यही निश्चय कराया कि पहले अजीतसिंह राजगद्दी पर बैठे और फिर उसका लड़का शत्रुशाल।

अतः दुर्जनशाल की मृत्यु के ८ मास बाद यह निश्चय हुआ और इसके फलस्वरूप १८१३ की फाल्गुन में अजीतसिंह कोटा की गद्दी पर बैठा। इन आठ मास के समय राजमाता ने शासन का संचालन किया।

अजीतसिंह के राजगद्दी पर बैठने के बाद ही राणोजी सिंधिया जो इस समय मरहठों में सबसे अधिक शक्तिशाली था ने कोटा पर आक्रमण कर दिया[3]। मरहठे यह नहीं चाहते थे कि बिना उनकी अनुमति लिये कोई राजगद्दी पर

---

१ वंशभास्कर चतुर्थ भाग पृ. ३३१२।

२ टाड राजस्थान जिल्द ३ पृ. १५३-५१।

३ डा. शर्मा कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय भाग पृ. ४४।

वैठे। इस समय तक मुगलो का स्थान मरहठो ने ले लिया था। अत मरहठो की सेनाका सामना करना कोटा के लिये एक वडी विषम समस्या वन गई। राजमाता ने इस समय वडी चालाकी मे काम लिया। उसने राणाजी सिंधिया को राखी भेज कर अपना धर्मभाई वनाया[1]। सिंधिया ने राज हडपने का विचार त्याग दिया लेकिन धन का लोभ नही छोडा अत यह निश्चय किया गया कि अजीतसिंह ४० लाख रु नजराने के देगा। इस नजराने की ४ किश्ते की गई। इन किश्तो मे से अन्तिम किश्त मे २ लाख रुपये छूट के दिये गये। वाद मे अजीतसिंह ने मरहठो को जयपुर लूटने के समय घोडो को नाले आदि भेज कर सहायता दी[2]।

अजीतसिंह ने लगभग डेढ वर्ष राज्य किया। १९५० की अमावश्या को हुआ। इनके साथ इनकी रानी सती हुई। इनके तीन पुत्र—शत्रुशाल, गुमानसिंह व राजसिंह थे।

महाराव शत्रुशाल (वि० स० १८१५-१८२१)

शत्रुशाल को दुर्जनशाल ने गोद लिया था और उसकी मृत्यु के वाद यही राजगद्दी पर वैठने वाला था लेकिन हिम्मतसिंह झाला की चाल के कारण यह राजगद्दी पर वैठ न सका अत अपने पिता अजीतसिंह की मृत्यु के वाद, वडा लडका होने के कारण वि० स० १८१५ मे गद्दी पर वैठा।

इस समय मरहठो का राजपूताने पर वोलवाला था। मुगलो की अव कोई पूछ नही थी। शत्रुशाल के गद्दी पर वैठते ही जवरोजी सिंधिया और मल्हारराव होल्कर कोटा आ धमके और नजराना मागने लगे। दोनो ने मिल कर शत्रुशाल से २ लाख रु० नजराने के ले लिये[3]।

इसके राज्यकाल मे सवसे विकट युद्ध भरवाडे का हुआ। यह युद्ध इसके और जयपुर नरेश माधोसिंह के बीच हुआ। इस युद्ध का मुख्य कारण रणथम्बोर का किला था। वि० स० १८ मे जव रणथम्बोर के किले पर माधोसिंह का

---

१ उपरोक्त, फाल्के जिल्द प्रथम, टिप्पणी १९४।

२ यह आक्रमण स० १८१३ में हुआ। इसमे लगभग ७००० रु खर्च हुए। राजकीय कोष की हालत ठीक न होते हुए भी यह सहायता दी गई थी।

३ सरकार फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर, पृ० १९४-९५।

सूरतसिंह बूडासन, बेगू के मेघसिंह आदि को सपरिवार आमन्त्रित किया गया। इस उत्सव पर दुर्जनसाल ने लगभग १ लाख रुपये खर्च किये[1]।

उसने अन्नकूट आदि वल्लभ सम्प्रदाय के कई उत्सव भी जारी किये थे। उसके समय विक्रम सं. १८ १ में मथुरानाथजी बूंदी से कोटा आये थे। मथुरानाथजी के लिये राज्य मंत्री द्वारिकादास की हवेली अर्पण की गई जिसमें अब तक मथुरानाथजी प्रतिष्ठित हैं। इस मन्दिर के खर्च के लिये १२ रु. की जागीर के गांव प्रदान किये। वि. सं. १८१२ में महाराव दुर्जनसाल द्वारिका की यात्रा करने भी गया था।

महाराव दुर्जनसाल एक बहादुर नरेश था। उसके अंदर राजपूतों के गुण विद्यमान थे। मिलनसारी, दयालुता और वीरता के लिये वह प्रसिद्ध था। उसे सूअर के शिकार का बड़ा शौक था और शिकार के समय अक्सर रानियों को अपने साथ रखता था[2]।

महाराव अजीतसिंह (वि. सं. १८१३-१८१५)

दुर्जनसाल के कोई पुत्र नहीं था। अतः उसके बाद उसका निकटतम संबंधी विशनसिंह का ज्येष्ठ पौत्र और अन्ते का जागीरदार अजीतसिंह राजगद्दी पर बैठा। यों तो दुर्जनसाल ने अजीतसिंह के पुत्र शत्रुसाल को गोद लिया था क्योंकि उस समय अजीतसिंह दुर्जनसाल की महाराणी से भी आयु में बड़ा था। लेकिन हिम्मतसिंह झाला ने यह नहीं चाहा कि अजीतसिंह के जीवित रहते शत्रुसाल गद्दी पर बैठे। अतः उसने यही निश्चय कराया कि पहले अजीतसिंह राजगद्दी पर बैठे और फिर उसका लड़का शत्रुसाल।

अतः दुर्जनसाल की मृत्यु के ८ मास बाद यह निश्चय हुआ और इसके फलस्वरूप १८११ की फाल्गुन में अजीतसिंह कोटा की गद्दी पर बैठा। इस आठ मास के समय राजमाता ने शासन का संचालन किया।

अजीतसिंह के राजगद्दी पर बैठने के बाद ही राणोजी सिंधिया जो इस समय मरहठों में सबसे अधिक शक्तिशाली था ने कोटा पर आक्रमण कर दिया। मरहठे यह नहीं चाहते थे कि बिना उनकी अनुमति लिये कोई राजगद्दी पर

---

१ वंशभास्कर चतुर्थ भाग पृ. ३३१२।

२ टाड राजस्थान जिल्द ३ पृ. १८९-९१।

३ डा. शर्मा कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय भाग पृ. १४।

के सगम स्थान पालीघाट[1] होती हुई कोटा राज्य की सीमा मे घुस गई। इस पर कोटा की सेना की झालमसिह तथा राय अहतमराय की अध्यक्षता मे इस सेना से टक्कर हुई। इस सेना का मागलोर तहसील के भटवाडे नामक स्थान पर सामना हुआ। कोटा की सेना में १५००० सवार तथा जयपुर की सेना मे ६० हजार सवार थे। उस समय मल्हारराव होल्कर कोटा राज्य के पास ही अपनी सेना का पडाव डाले पडे थे[2]। झालमसिह झाला ने उससे सहायता चाही लेकिन उसने प्रत्यक्ष सहायता देने से इन्कार कर दिया। उसने यही स्वीकार किया कि उसकी सेना रणभूमि के पास पडी रहेगी और यदि जयपुर की सेना हारने लगी तो उनको लूट लूँगा। इससे कोटा की सेना को बडी सहायता मिली। इससे जयपुर वालो का साहस कम हो गया। उनको यह बराबर डर लगा रहा कि कभी होल्कर उन पर टूट न पडे। यह लडाई वि० स० १८१८ को आश्विन शुक्ला ४ (ई०स० १७६१) को हुई। उसमे बून्दी की सेना भी आई थी लेकिन वह किसी ओर से लडी नही।

भटवाडे[3] के युद्ध मे जयपुर की सेना को हार कर भागना पडा व उसे काफी हानि उठानी पडी। मल्हारराव होल्कर की सेना ने भी जयपुर के डेरे बहुत लूटे। कोटा वाले जयपुर वालो के १७ हाथी, १८०० घोडे, ७३ तोपे तथा एक पचरगा लूट कर कोटा ले आये। इस युद्ध से कोटा के ३५,५,००० खर्च हुए थे[4]। इस युद्ध के विषय मे कहा जाता है कि—

जग भटवाडा जीत, तारा जालिम झाला।
रिग एक रगजीत, चढियो रग पचरग के[5]॥

यह युद्ध जयपुर व कोटा के बीच का अतिम युद्ध था। महाराव शत्रुशाल ने

देने के लिये लिखा था, परन्तु मरहठो से बार २ शोषित होने के कारण राजपूत शासको ने मरहठों की कोई सहायता नही की। पानीपत के युद्ध के बाद मरहठो ने जो राजस्थान को रोंद डाला, इस नीति का परिणाम ही था।

१ इन्द्रगढ से लगभग ६ मील उत्तर की ओर।

२ मल्हारराव होल्कर पानीपत के मैदान से ७ जनवरी १७६१ को भाग कर राजस्थान की ओर आ चुका था। इसकी हारी हुई सेना किसी का पक्ष लेना नही चाहती थी।

३ भटवाडे का युद्ध जनवरी १७६१ को हुआ था। विजय की यह लूट इसी युद्ध मे ही प्राप्त हुई थी (उपरोक्त पृ० १५३४)।

४ डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४४७।

५ इसका अर्थ है भटवाडा के युद्ध मे जालिमसिह का सौभाग्य रूपी सितारा उदय हुआ। उस रण-क्षेत्र मे एक रग रहा। पचरग पताका को डाल दिया। इस युद्ध के समय जालिमसिह २१ वर्ष का युवक था। व्यक्तिगत वीरता के कारण ही उसे सफलता प्राप्त हुई।

अधिकार हो गया[1] तब उसने चाहा कि कोटा और बून्दी वाले उसकी अधीनता स्वीकार करलें। जैसे कि वे पहले मुगलों के समय में रणथम्भोर की अधीनता में रहते थे। वास्तव में कोटा और बून्दी वाले मुगल सम्राट की अधीनता में रहते थे न कि रणथम्भोर के अतः इसकी परवाह नहीं की। कोटा और जयपुर में पहले से ही शत्रुता थी अतः अब फिर बढ़ने लगी[2]। इसके अलावा रणथम्भोर के आसपास के इन्द्रगढ़ खातोली गढ़ा बलबन आदि के हाड़ा जागीरदारों ने भी अब जयपुर वालों को कर देना बंद कर दिया क्योंकि वे भी तब मुगलों को ही कर देते थे। इन हाड़ा सरदारों पर ज्यादा सख्ती की जाने लगी। तब वे कोटा नरेश के पास सहायता के लिये गये[3]। शत्रुशाल ने इनको इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार किया कि वे कोटा को नानू बून्दी देंगे। इससे जयपुर और कोटा के बीच युद्ध होना अनिवार्य हो गया। जयपुर के महाराजा माधोसिंह ने एक बड़ी सेना कोटा के विरुद्ध वि. सं. १८१७ में रवाना की। रास्ते में इस सेना ने उणियारा पर कब्जा कर वहाँ के ठाकुर से अपनी अधीनता स्वीकार कराई। वहाँ से यह सेना सारबेरो पहुँची। वहाँ से भी मरहठों का कब्जा हटा कर अपना आधिपत्य स्थापित किया[4]। यह सेना आगे बढ़ कर चम्बल और पार्वती नदी

---

१ उपरोक्त जिल्द १ पृ. सं. २ १४। इस किले पर अकबर के काल से मुगलों का अधिकार चला आ रहा था। अजमेर के सूबेदार के अधीन यहाँ का शासन होता था। जयसिंह आमेर-शासक इसे हस्तगत करना चाहता था पर वह असफल रहा। नादिरशाह के आक्रमण के बाद (१७३९) मुगल शक्ति का प्रभाव सर्वदा के लिये समाप्त हो गया। १७४८ में मुगल बादशाह मोहम्मदशाह मर गया। अहमदशाह गद्दी पर बैठा। उसके समय में (१७५१ ५२) उसके और उसके वजीर सफदरजंग के बीच युद्ध हो गया। जयपुर नरेश माधोसिंह ने प्रयत्न कर बादशाह और वजीर के बीच सुलह कराली। इस सेवा के उपलक्ष में रणथम्भोर का किला माधोसिंह को दे दिया परन्तु रणथम्भोर के फौजदार ने युद्ध के बाद यह किला माधोसिंह को सौंपा।

२ जयपुर-कोटा वैमनस्य बून्दी के युद्ध (बुधसिंह व जयसिंह के बीच में) के समय हो गई थी जब कि राव दुर्जनशाल ने बुधसिंह की सहायता कर उसे बून्दी का राज्य दिलाने का प्रयत्न किया अतः बुधसिंह के बाद उम्मेदसिंह बून्दी नरेश कोटा के शासकों की सहायता से ही हुआ था।

३ डा. मथुरालाल शर्मा कृत कोटा राज्य का इतिहास पृ. ४४१।

४ माधवसिंह ने यह हमला सन् १७६० ६१ में किया था जब कि मराठे अहमदशाह अब्दाली से पानीपत के मैदान में उलझे थे। मराठों को इस प्रकार व्यस्त देख कर जयपुर कोटा संघर्ष पुनः आरम्भ हो गया। इस प्रकार राजपूत शासक अप्रत्यक्ष रूप में अहमदशाह अब्दाली की विजय के कारण बन गये। पेशवा ने माधोसिंह को पानीपत के युद्ध में सहायता

के सगम स्थान पालीघाट[1] होती हुई कोटा राज्य की सीमा मे घुस गई। इस पर कोटा की सेना की झालमसिह तथा राय अहतमराय की अध्यक्षता मे इस सेना से टक्कर हुई। इस सेना का मागलोर तहसील के भटवाडे नामक स्थान पर सामना हुआ। कोटा की सेना मे १५००० सवार तथा जयपुर की सेना मे ६० हजार सवार थे। उस समय मल्हारराव होल्कर कोटा राज्य के पास ही अपनी सेना का पडाव डाले पडे थे[2]। झालमसिह झाला ने उससे सहायता चाही लेकिन उसने प्रत्यक्ष सहायता देने से इन्कार कर दिया। उसने यही स्वीकार किया कि उसकी सेना रणभूमि के पास पडी रहेगी और यदि जयपुर की सेना हारने लगी तो उनको लूट लूँगा। इससे कोटा की सेना को वडी सहायता मिली। इससे जयपुर वालो का साहस कम हो गया। उनको यह बराबर डर लगा रहा कि कभी होल्कर उन पर टूट न पडे। यह लडाई वि० स० १८१८ की आश्विन शुक्ला ४ (ई०स० १७६१) को हुई। उसमे बून्दी की सेना भी आई थी लेकिन वह किसी ओर से लडी नही।

भटवाडे[3] के युद्ध मे जयपुर की सेना को हार कर भागना पडा व उसे काफी हानि उठानी पडी। मल्हारराव होल्कर की सेना ने भी जयपुर के डेरे बहुत लूटे। कोटा वाले जयपुर वालो के १७ हाथी, १८०० घोडे, ७३ तोपें तथा एक पचरगा लूट कर कोटा ले आये। इस युद्ध से कोटा के ३५,५,००० खर्च हुए थे[4]। इस युद्ध के विषय मे कहा जाता है कि—

जग भटवाडा जीत, तारा जालिम झाला।
रिंग एक रगजीत, चढियो रग पचरग के[5] ॥

यह युद्ध जयपुर व कोटा के बीच का अतिम युद्ध था। महाराव शत्रुशाल ने

देने के लिये लिखा था, परन्तु मरहठो से बार २ शोषित होने के कारण राजपूत शासको ने मरहठों की कोई सहायता नही की। पानीपत के युद्ध के वाद मरहठो ने जो राजस्थान को रौंद डाला, इस नीति का परिणाम ही था।

१ इन्द्रगढ से लगभग ६ मील उत्तर की ओर।

२ मल्हारराव होल्कर पानीपत के मैदान से ७ जनवरी १७६१ को भाग कर राजस्थान की ओर आ चुका था। इसकी हारी हुई सेना किसी का पक्ष लेना नही चाहती थी।

३ भटवाडे का युद्ध जनवरी १७६१ को हुआ था। विजय की यह लूट इसी युद्ध मे ही प्राप्त हुई थी (उपरोक्त पृ० १५३४)।

४ डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४४७।

५ इसका अर्थ है मरवाडा के युद्ध मे जालिमसिह का सौभाग्य रूपी सितारा उदय हुआ। उस रण-क्षेत्र मे एक रग रहा। पचरग पताका को डाल दिया। इस युद्ध के समय जालिमसिह २१ वर्ष का युवक था। व्यक्तिगत वीरता के कारण ही उसे सफलता प्राप्त हुई।

इस युद्ध में विजयी होने के कारण वीर जालिमसिंह झाला के सम्मान में वृद्धि की और उसे कोटा राज्य का मुसाहिब (प्रधान मन्त्री) बनाया। इस युद्ध के पश्चात शत्रुशाल ने माधवराव सिंधिया तथा केदारजी सिंधिया को बून्दी पर चढ़ाई करने में वि स १८१९ में सहायता दी। बून्दी का घेरा डाला गया। लेकिन उसे जीत नहीं सके। अन्त में संधि हो गई। माधवराव सिंधिया ने शत्रुशाल को सेना खर्च के १७१२० रु दिये[1]।

कोटा राज्य होल्कर व सिंधिया के राज्यों से मिला हुआ था। इसके अलावा मालवा से दिल्ली के बीच में कोटा पड़ता था। इस कारण मरहठों को कोटा बराबर आना-जाना पड़ता था। मरहठे अपनी सेना का खर्चा लूटमार से ही चलाते थे, अतः कोटा पर मरहठों की बराबर आँख लगी रहती थी। कोटा वाले भी सामदाम की नीति से काम चलाते थे। शत्रुशाल के राज्यकाल में सं० १८१९ में मल्हारराव की सेना द्वारा सुकेत को घेरने पर कोटा ने ८० रु खर्च किये[2]। इसके बाद मल्हारराव होल्कर दिल्ली जाते हुए कोटा में होकर निकला तब शत्रुशाल ने अपने प्रधान को भेज कर होल्कर की सेना की बड़ी खातिरदारी की तथा नजर भेंट की। जब वह आषाढ़ मास में वापस लौटा तब फिर ५१ हजार रु होल्कर को दिये। इस बार वह फिर उज्जैन की ओर से आया तब १४ रु भेंट किये। वि स १८१९ में होल्कर को १५२००० नजराने दिये गये। इसके अलावा बून्दी के मोर्चे के समय कोटा से १८० लिए गये। यह रकम दुर्जनशाल ने जब उम्मेदसिंह को गद्दी पर बैठाया तब से बाकी चली आ रही थी। इस प्रकार शत्रुशाल ने मरहठों को काफी धन देकर राज्य की शांति खरीदी[3]। इस धन की पूर्ति के लिये कोटा में कई नये कर लगाये गये। करों को सख्ती से वसूल किया गया[4]। शत्रुशाल केवल ६ साल तक राज्य कर वि स १८२१ की पौष कृष्णा ६ (१७६४ ई) को स्वर्ग सिधारा। इसके कोई पुत्र न होने के कारण इसके छोटे भाई गुमानसिंह को राजगद्दी प्राप्त हुई।

---

१ वंशभास्कर चतुर्थ भाग पृ १७०१ डा मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास भाग २, पृ ४५१।

२ उपरोक्त, पृ संख्या ४४८।

३ उपरोक्त पृ संख्या ४५१ ५२।

४ जो नये कर लगाये गये उनमें मुख्य थे व चौथाण (जागीरदारों से लिया जाता था) पेशकशी कोटा नगर पर मरहठों ने कर लगाया (इसकी रकम ४८ थी) नगर में जाति पंचायतों पर कर बीघोड़ी और खामदारी कठोरता से वसूल किये गये। बीघोड़ी प्रति बीघा ४ आना व खामदारी प्रति कुटुम्ब १ आना।

गुमानसिंह (वि० स० १८२१-१८२७ई० स० १७६४-१७७०)

महाराव शत्रुशाल की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई गुमानसिंह पोष शुक्ला ६, वि० स० १८२१ (ई स० १७६४) को गद्दी पर बैठा। यह नौजवान, उत्साही और बुद्धिमान व्यक्ति था। उस समय फौजदार जालिमसिंह झाला की शक्ति बढ रही थी। जालिमसिह की बहिन की शादी गुमानसिंह से हो जाने के कारण वह राज्य का सर्वेसर्वा हो गया[1]। परन्तु महाराव और जालिमसिंह मे अधिक समय तक नही पटी। इसका कारण यह था कि महाराव का प्रेम एक सुन्दरदासी (दरोगण) से था और वही युवती जालिमसिंह की नजरो मे भी चढ गई थी। इससे साले बहनोई मे मनमुटाव हो गया[2]। मौका पाकर झाला के द्वेषी हाडा सरदारो ने महाराव को उसके विरुद्ध बहका कर उसके कामो मे हस्तक्षेप करना शुरू किया। झाला ने इस पर विरोध प्रकट करना शुरू किया तब महाराव ने उसकी मुसाहिबी और नानते की जागीर छीन ली[3]।

निराश होकर जालिमसिंह कोटा से चल दिया। जयपुर का दरवाजा तो उसके लिये पहले से ही बन्द था। मारवाड मे उसको तदबीरे नही चली। मेवाड मे उस समय मरहठो ने लूट मचा रखी थी। वहाँ उस जैसे कूनीतिज्ञ को आवश्यकता थी अत वह मेवाड चला गया[4]।

मेवाड मे वह देलवाडा पहुँचा जहाँ के झाला सरदार राघादेव के द्वारा महाराणा अरिसिंह से परिचय प्राप्त किया। वहाँ पर भी अपनी राजनीति को वह भूल न सका। अपने शुभचिंतक राघवदेव झाला के साथ विश्वासघात करके उसे मरवा डाला। इस पर महाराणा बडे प्रसन्न हुए क्योंकि अरिसिंह राघवदेव के प्रभाव से मुक्त होना चाहता था। महाराणा ने जालिमसिंह को 'राजराणा' की पदवी दी और चीतखेडा की जागीर भी[5]। मेवाड मे जब माधवराव

१ ठाकुर लक्ष्मणदान द्वारा उल्लेख है कि जालिमसिंह की बहिन का विवाह गुमानसिंह के साथ हुआ था।

२ टाड राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५३७।

३ उपरोक्त जालिमसिंह के स्थान पर ठाकुर भोपतसिंह भकरोत को फौजदार नियुक्त किया। यह गुमानसिंह का मामा था। बाद मे यह पद काका स्वरूपसिंह को दिया गया। वह भी मरहठो को रोकने मे असफल रहा, अत जालिमसिंह पुन उस पद पर लाया गया।

४ उपरोक्त।

५ उपरोक्त, पृ० १५३८।

सिंधिया[1] का हमला हुआ तब वह लड़ते-लड़ते घायल होकर कैद हो गया। बाद में एक मरहठा सरदार अम्बाजी इंगले ने ६ रु० देकर इसे कैद से छुड़वाया। कैद से छूट जाने पर मेवाड़ में अपना प्रभाव लुप्त होते देख कर वह मरहठे बख्शी के साथ वापस कोटा आ गया[2]।

उस समय तक मरहठे कोटा की दक्षिणी सीमा तक पहुँच गये थे। मल्हरराव होल्कर ने बकानी के किले को जो कोटा से दक्षिण में ६ मील पर था घेर लिया। वहाँ हाड़ों और मरहठों में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में सेनापति मामासिंह सावंतसिंह बड़ी वीरता से मय अपने बारहसौ हाड़ों के साथ काम आये। होल्कर विजयी होकर कोटा की ओर आगे बढ़ा[3] तब महाराव गुमानसिंह ने अपने मामा पालोहेड़ा के भोपतसिंह फौजदार को संधि के लिये भेजा परन्तु वह सफल नहीं हुआ। इसलिये लाचार होकर महाराव ने जालिमसिंह से स्थिति सम्हालने को कहा। जालिमसिंह इस अवसर की प्रतीक्षा में था ही। उसने होल्कर के साथ संधि की वार्ता प्रारम्भ की। ६ लाख रु० उसे देकर संधि करली गई। इसलिए महाराव ने प्रसन्न होकर जालिमसिंह झाला को पुनः मुसाहिब का पद और नान्ता की जागीर देदी[4]। इसके बाद जालिमसिंह का बोलबाला दिनोंदिन बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि कोटा की चार पीढ़ी तक जालिमसिंह ही राज्य का कर्ताधर्ता मुसाहिब रहा[5]। जब महाराव गुमानसिंह लगभग ७ वर्ष राज्य करके सख्त बिमार हुआ तो इसने अपने बालक पुत्र

---

१ महाराणा अरिसिंह के विरुद्ध राणा रत्नसिंह ने विद्रोह कर सलूम्बर घाणेराव हम्मीर व आमेट के जागीरदारों की सहायता से कुम्भलगढ़ में अपने को महाराणा घोषित कर लिया और महादजी सिंधिया की सहायता से मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया।

२ वंशभास्कर चतुर्थ भाग पृ० ३७१८-१९।
वीरविनोद भाग २ पृ० १४५६-६०।
टाड राजस्थान तृतीय भाग पृ० १५१८।
उज्जैन के बाद मेवाड़ की हार से राणा की स्थिति कमजोर हो गई। जालिमसिंह ने ऐसी स्थिति में वहाँ रहना उचित नहीं समझा।

३ टाड राजस्थान भाग ३ पृ० १५३६।

४ उपरोक्त पृ० १५४०। यह कहा जाता है कि झाला जालिमसिंह को पुनः फौजदार बना कर भी महाराव ने स्वरूपसिंह को मारने पर भी नहीं हटाया। वह भी जालिमसिंह के साथ राज्य प्रबन्ध करता रहा।

५ १७८१ ई० में महाराव गुमानसिंह ने नाथद्वारा की यात्रा की थी। वहाँ महाराणा हमीरसिंह व कोठारी राजा बिशनसिंह से मिले। नाथद्वारे में तीनों नरेशों ने मरहठों के विरुद्ध कार्यवाही किया पर क्या निर्णय हुआ यह ज्ञात नहीं है।

उम्मेदसिंह को जालिम झाला की गोदी मे विठा कर कहा कि यह तुम्हारे भरोसे है और जालिमसिंह को राज्य का सर्वाधिकारी सरक्षक बनाया। गुमानसिंह की मृत्यु माघ शुक्ला १ सम्वत १८२७ को हुई।

महाराव उम्मेदसिंह (वि स १८२७-१८७६)

वि स १८२७ मे राजसिंहासन पर बैठने के समय इसकी आयु १० साल की थी। महाराव गुमानसिंह ने इस के मामा जालिमसिंह को राज्य तथा इसका सरक्षक बनाया था[1]। जालिमसिंह इस कारण कोटा का सर्वेसर्वा बन गया। उसने ५० वर्ष तक महाराव को एक कठपुतली की तरह रख कर बडी कुशलता से राज-कार्य चलाया। महाराव ने अपना अधिकाश समय ईश्वर-भक्ति मे ही बिताया[2]।
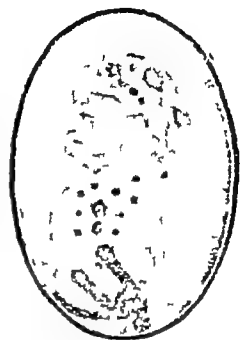
जालिमसिंह बडा ही महत्वाकाक्षी था। अत शासन-सूत्र सभालते ही वह राज्य की सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथ मे करने का प्रयत्न करने लगा। उस समय मालगुजारी, खजाना और जकात जैसे महत्वपूर्ण विभाग महाराव के निकट के भाई महाराजा स्वरूपसिंह के अधीन थे। जालिमसिंह ने उसको उसके पद से हटाना चाहा। उसने राजमाता को बहका कर उसकी सहमति लेकर वि०स०१८१६ की फाल्गुन शुक्ला[3] को धाभाई जसकरण द्वारा मरवा डाला[4]। जसकरण को भी बाद मे राजद्रोही करार करके उसे राज्य-निकाला दे दिया[5]।

---

१ महाराव गुमानसिंह ने उम्मेदसिंह को जालिमसिंह की गोद मे विठा कर कहा कि तुम्ही इसके सरक्षक हो।

२ जालिमसिंह का जन्म सन् १७३९ मे हुआ था, जब कि नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया। और मुगल सल्तनत के अवशेषो को चूर २ कर दिया। उसका राजनैतिक जीवन सन् १७६१ मे भरवाडे के युद्ध से प्रारम्भ होता है जब कि पानीपत के मैदान मे मरहठे हार चुके थे। आरभिक जीवन देखो यही पुस्तक, पृ० स०.. ।

३ टाड: राजस्थान, भाग ३, पृ० सख्या १५४१, वह फौजदार था परन्तु साथ ही दीवान के अधिकार प्राप्त कर सर्वेसर्वा बनना चाहता था। वह अपने विरोधियो को जिनमें स्वरूपसिंह व जसकरण धाभाई थे, दूर करना चाहता था।

४ जालिमसिंह ने राजमाता से कहा कि स्वरूपसिंह ने गुमानसिंह की हत्या करवाई। क्योंकि जब महाराव बिमार पडे तो स्वरूपसिंह ने उन्हें जहर देकर मार डाला। परन्तु वशभास्कर मे इसका दोष जालिमसिंह के प्रति लिखा गया है। वशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० सख्या १५४१।

टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० सख्या १५४२।

५ उपरोक्त धाभाई जसकरण पर राजद्रोह का आरोप लगा कर हमेशा के लिये देश से निर्वासित कर दिया। धाभाई दरिद्र अवस्था मे जयपुर मे मरा।

स्वरूपसिंह के मारे जाने के बाद जालिमसिंह कोटा का सर्वेसर्वा बन गया। महाराव तो केवल नाम का राजा था वहाँ तक जालिमसिंह स्वयं गढ़ के अन्दर हवेली बना कर ही रहने लगा[1]। वहाँ रहने का अभिप्राय महाराव के रात दिन सम्पर्क में रहना था ताकि वह उनके पास आने-जाने वालों पर भी कड़ी निगाह रख सके।

जालिमसिंह ने हाड़ा सरदारों को बराबर कुचलने का प्रयत्न किया। उसके समय में कई हाड़ा सरदार कोटा छोड़ कर अन्य राज्यों—बून्दी, जयपुर, जोधपुर आदि में बस गये। लेकिन उनको वहां भी सुख से नहीं रहने दिया। इसने अन्य राजाओं को भी सूचित किया कि ये सब सरदार राज्य-द्रोही हैं। तथा विश्वासघाती हैं। राजा लोग यह सूचना पाकर तथा इसके अलावा जालिमसिंह के प्रभाव के कारण इनको आश्रय देने का साहस न कर सके। लाचार होकर वे वापस कोटा लौट आये। जालिमसिंह ने उनको कोटा में रहने की अनुमति देदी लेकिन उनको जागीरें वापस नहीं दी। यदि दी भी तो बहुत छोटी जागीरें दी[2]। सरदारों में से महाराजा स्वरूपसिंह के नजदीकी भाई आटोण के जागीरदार देवीसिंह ने जालिमसिंह के विरुद्ध कार्यवाही करने का विचार किया लेकिन इसके तैयारी करने से पहले ही जालिमसिंह ने उसके विरुद्ध सेना भजदी। महाराव सेना भजने के विरुद्ध थे और एक बार सेना की चढ़ाई करने से पूर्व रोक भी दिया था लेकिन महाराव ज्यादा समय तक विरोध नहीं कर सके। जालिमसिंह ने मरहठों के एक अंग्रेज फौजी अफसर मूसाकरली के द्वारा आटोण पर चढ़ाई करादी तथा फिर कोटा से भी सेना भेजदी। देवीसिंह को हार माननी पड़ी और सिंधिया की शरण लेनी पड़ी। बाद में सिंधिया के कहने पर देवीसिंह को एक छोटीसी जागीर कोटा में देदी गई[3]। इसी प्रकार स्वरूपसिंह के पुत्रों को भी बहुत ही छोटी जागीरें दी गई।

वि स १८३६ में भारत की प्राचीन दिग्विजय प्रथा के अनुसार जालिमसिंह ने महाराव द्वारा टीका दौर कराया[4]। इसके द्वारा वह कोटा राज्य के

---

१ उपरोक्त पृ सं १५५४।

२ टाड राजस्थान तृतीय भाग पृ सं १५४१।

३ आटोण की जागीर ६ हजार व आय की थी। जालिमसिंह से असन्तुष्ट हाड़ाओं ने एकत्र हो विद्रोह कर दिया। विद्रोह दबा दिया गया। देवीसिंह भाग गया और परदेश में ही उसकी मृत्यु हुई। उसके पुत्र ने क्षमा मांग ली और उसे कालोदिया की रियासत मिली जो कि १२ की आय वाली थी। टाड राजस्थान तृतीय भाग पृ १५५४।

४ टीका दौर राज्याभिषेक के बाद दिग्विजय के लिये प्रमाण करने व चक्रवर्ती शासक बनने की प्रथा को कहते हैं।

आसपास के छोटे-छोटे राज्यो व ठिकानो को हस्तगत करना चाहता था तथा राज्य का विस्तार करना चाहता था। इसी टीका दौर मे सर्वप्रथम शाहवाद पर आक्रमण कर हस्तगत किया[1] तथा वहाँ कोटा का जमादार अनवरखाँ निगरानी के लिये नियुक्त किया गया। इसके वाद वि० स० १८३० मे शोपुरवडौदे पर चढाई की गई।

इस समय जयपुर का महाराजा प्रतापसिंह कोटा रियासत पर अधिकार जमाने का वार-वार प्रयत्न कर रहा था। उसको रोकने के लिये कोटा से वि०स० १८३७ मे सेना भेजी गई। इस सेना ने उस समय जयपुर की सेना को रोक दिया लेकिन जयपुर वाले फिर भी दवे नही। अत. वि० स० १८३९ मे एक वडी सेना भेजी गई। इस सेना ने जयपुर की सेना पर पूर्ण विजय प्राप्त की[2]।

विदेशी नीति[3]—मरहठो के प्रति नीति—पेशवा ने कोटा राज्य सिंधिया, होल्कर और दोनो पँवारो को जागीर मे दिया था। अत इन चारो सरदारो की मातहत मे कोटा रहा[4]। वि० स० १७९४ (ई० स० १७३७) से मरहठो का वकील कोटा में रहने लगा था। वह अग्रेजी काल के रेजीडेन्ट की भाँति था। वह कोटा राज्य के विभिन्न परगनो से मामलात (राजस्व) एकत्र किया करता था तथा निश्चित अनुपात में चारो मरहठे सरदारो को भेज देता था। राज्य की छोटी-बडी घटनाओ का कोटा भी वह मरहठो के पास भेजता रहता था। इसको ३८,००० रु० वार्षिक वेतन मिलता था। इन्द्रगढ, पीपल्दा आदि कोटरियो की मामलात इसी वकील के द्वारा वसूल होती थी। कोटरियात के सरदारो व मरहठों के वीच काफी झगडे होते रहते थे। एसे समय मे मरहठे कोटा से सहायता माँगा करते थे। कोटा नरेश की इच्छा न होते हुए भी सहायता देनी पडती थी।

वकील के नीचे दीवान रहता था जिसका मुख्य काम राजस्व की वसूली करना था। नरहरे सरदारो ने वकील की मातहत अपने कमविस्दार नियत कर

---

१ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४७९। यह विजय सम्वत १८३६ चैत्र सुदि ९ को हुई थी।

२ उपरोक्त पृ० ४८०। पिडारियो के नेता करीमखा व मीरखां से सन्धि भी की गई। उपरोक्त पृ० ४८२, टाड राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५७४।

३ जालिमसिंह की विदेश नीति का उद्देश्य शक्ति-सतुलन का वातावरण तैयार करना था। प्रत्येक विदेशी शक्ति के साथ अच्छे सवध बनाये रखना तथा कोटा का प्रभुत्व स्थापित करना था जिससे कोटा जिस शक्ति को सहयोग दे उसकी ताकत बढ जाये।

४ सिंधिया को पचमहल और होल्कर को डीग, पीडावा आदि के परगने पेशवा के प्रभाव मे थे जो वाद मे अग्रेजी विजय के उपरान्त कोटा को दिये गये थे।

रखते थे। प्रत्येक परगने पर एक कमविसदार नियत था। ये वर्तमान तहसील दार को भाँति थे। मराठों की नीति खूब मामलात वसूल करने की थी शासन सुशासन की ओर कम ही ध्यान दिया जाता था। यह सब कुछ होते हुए भी मरहठे सरदार जब तक कोटा पर आक्रमण कर देते थे। वे ज्यादातर वसूली के लिये ही इधर आते थे। इनको साम और दाम द्वारा वापस किया जाता था। जालिमसिंह जानता था कि इनका सामना करना कतई हितकर नहीं है। अत वि० सं १८१४ में बापूजी अप्पा को सं० १८४१ में मरहररराव को सं १८४२ में बाळेराव को नकदी देकर कोटा को मरहठों के आक्रमण से बचाया गया[1]। जालिमसिंह तुकोजी होल्कर को भी बड़ी खुशामद करता था। वि० सं १८३६ में उसके पुत्र के विवाह पर कोटा की ओर से ७० न्योते के भेज गये। कोटा राज्य यों प्रति वर्ष कई लाख रु का कर मरहठों को देता था। यह कर सिंधिया का वकील वसूल कर के भेजता था। यह कर आपसी करार से मरहठे परस्पर बाँट लेते थे[2]।

इस समय अंग्रेज राजस्थान की ओर बढ़ने का विचार कर रहे थे[3]। अब तक राजस्थान व पंजाब ही अंग्रेजों के अधिकार से बचे हुए थे। वि सं १८६१को अंग्रेजी सेना ने प्रथम बार कोटा में प्रवेश किया[4]। यह सेना कर्नल मानसन की अधीनता में होल्कर के विरुद्ध लड़ने के लिये कोटा राज्य में से होकर निकली। जालिमसिंह ने इस सेना को सहायता के लिये राज्य को सेना भी पलायथे के भापा अमरसिंह के नेतृत्व में भजी।

यह सेना पहले होल्कर के राज्य में घुस गई। होल्कर ने कहीं सामना नहीं किया। होल्कर अपनी बड़ी सेना की सहायता से अंग्रेज सेना को घेरना चाहता

---

१ डा शर्मा कोटा राज्य का इतिहास भाग १ पृ ४८१ से ४८२।

२ यह विभाजन इस प्रकार होता था—सिंधिया व होल्कर का हिस्सा बराबर रहता था तथा बचा हुआ पँवार पेशवा व रामचन्द्र पंडित में बांटा जाता था।

३ १८ १ ई तक अंग्रेजों ने दक्षिणी भारत तथा पूर्वी भारत पर अधिकार स्थापित कर लिया था। १८ ३ मे सिंधिया हार चुका। १८ ४ में होल्कर-अंग्रेज युद्ध चल रहा था। सिंधिया व होल्कर से पीड़ित राजपूतों के राज्यों से सहायता की मांग अंग्रेजों ने की थी अत इसी दृष्टिकोण से उन्होंने राजपूताने की ओर कदम बढ़ाया पर वास्तव में उनका साम्राज्यवादी दृष्टिकोण इससे प्रकट होता है। कोटा होल्कर के राज्य के पास था अत होल्कर से मुकाबले में पहली बार राजपूत शासकों से मुलाकात की।

४ डा शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास पृ ४८१ व ४६ ।

था। जब मानसन को यह ज्ञात हुआ तो वह कोटा राज्य की सीमा मे वापस चला आया। और मुकुन्दरा की नाल मे शरण ली। यो मानसन अपनी कुछ सेना तथा कोटा की सेना को होल्कर को रोकने के लिये पीछे छोड आया था। इस सेना ने पीपल्या नामक स्थान पर होल्कर की सेना का मुकाबला किया। इस लडाई मे कोटा की काफी बडी सेना मारी गई। आपा अमरसिंह भी मारा गया। लेकिन इससे सेना बच गई। अंग्रेज सेना का कप्तान लुकन भी मारा गया[1]। इधर मानसन मुकन्दरा की घाटी होता हुआ कोटा नगर पहुँचा। उसने कोटा मे शरण लेने का विचार किया लेकिन जालिमसिंह ने उसे घुसने नही दिया। उसने उसे सैनिक सहायता देने का अवश्य आश्वासन दिया था[2]। मानसन घबराया हुआ था। अत. उसने होल्कर का सामना न कर दिल्ली की ओर भागना ही उचित समझा। रास्ते मे उसके कई सैनिक मर गये। कई छोड कर चले गये। अन्त मे दिल्ली पहुँच कर उसने अपनी हार का मुख्य कारण जालिमसिंह द्वारा सहायता न देना बताया जो पूर्णतया असत्य था। सत्य यह था कि कोटा की सेना के कारण ही वह बच पाया था।

होल्कर कोटा राज्य द्वारा अंग्रेजो की सहायता करना सहन नही कर सका। अत उसने कोटा पर आक्रमण कर दिया। जालिमसिंह ने सेना का सामना करना उचित नही समझा, अत संधि की बातचीत आरम्भ की। दोनो सरदारो ने आपस मे मिल कर समझौता करने के लिये चम्बल नदी के बीच मे मिलना तय किया। कोटा के गढ के नीचे चम्बल मे दोनो सरदार मिले। होल्कर ने पीपल्या युद्ध की शर्त के १० लाख रु० मांगे। परन्तु अत मे जालिमसिंह ने होल्कर को ३ लाख रु० देकर ही विदा किया[3]। वास्तविकता यह थी कि होल्कर जालिमसिंह से मित्रता बनाये रखना चाहता था। वह उसकी मित्रता मे ही अपना हित समझता था। होल्कर को यह आशा थी कि वह उसकी थोडी बहुत मदद करता ही रहेगा। इसके कुछ समय बाद ही वि० स० १८७४ (ई०स० १८१७) मे होल्कर डीग की लडाई मे बुरी तरह परास्त हुआ। होल्कर की शक्ति पूर्णतया समाप्त हो गई। तब से राजपूताने मे होल्कर का प्रभाव कम होने लगा। यहाँ तक कि जयपुर व जोधपुर वाले तो उससे लडने तक को तैयार हो गये। लेकिन जालिमसिंह ने फिर भी होल्कर से अच्छा व्यवहार किया।

---

१ टाड राजस्थान, भाग ३, पृ० १५७३। होल्कर को सिर्फ ३ लाख रु प्राप्त हुए। ७ लाख के लिये वह जालिमसिंह को याद दिलाता रहता था पर उसे प्राप्त नहीं हुए।

२ टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५७१।

३ टाड राजस्थान, भाग ३, [illegible]५७३।

रसत थे । प्रत्येक परगने पर एक कमविसदार नियत था । ये वर्तमान तहसील दार की भाँति थे । मराठों की नीति खूब मामलात वसूल करने की थी, शासन सचालन की ओर कम ही ध्यान दिया जाता था । यह सब कुछ होते हुए भी मरहठ सरदार जब तक कोटा पर आक्रमण कर देते थ । ये ज्यादातर वसूली के लिए ही इधर आते थे । इनको साम और दाम द्वारा वापस किया जाता था । जालिमसिंह जानता था कि इनका सामना करना कतई हितकर नहीं है । अत वि स १८१४ में बाबाजी अप्पा को सं० १८४१ में नरहुरराव को, स १८४२ में खांडेराव को नकदी देकर कोटा को मरहठों के आक्रमण से बचाया गया[1] । जालिमसिंह तुकोजी होल्कर की भी बड़ी खुशामद करता था। वि० स १८३९ में उसके पुत्र के विवाह पर कोटा की ओर से ७० न्योते के भेज गये । कोटा राज्य यों प्रति वर्ष कई लाख रु का कर मरहठों को देता था । यह कर सिंधिया का वकील वसूल कर के भेजता था । यह कर आपसी करार से मरहठ परस्पर बाँट लते थे[2] ।

इस समय अंग्रेज राजस्थान की ओर बढ़ने का विचार कर रहे थे[3] । अब तक राजस्थान व पंजाब ही अंग्रेजों के अधिकार से बचे हुए थ। वि सं १८६१को अंग्रेजी सेना ने प्रथम बार कोटा में प्रवेश किया[4] । यह सेना कर्नल मानसन की अधीनता में होल्कर के विरुद्ध लड़ने के लिये कोटा राज्य में से होकर निकली । जालिमसिंह न इस सेना की सहायता के लिये राज्य की सेना भी पंचायणे के भाषा अमरसिंह के नेतृत्व मे भजी ।

यह सेना पहले होल्कर के राज्य में घुस गई। होल्कर ने कहीं सामना नहीं किया । होल्कर अपनी बड़ी सेना की सहायता से अंग्रेज सेना को घेरना चाहता

---

१ डा शर्मा कोटा राज्य का इतिहास भाग २ पृ ४८१ से ४८६ ।

२ यह विभाजन इस प्रकार होता था—सिंधिया व होल्कर का हिस्सा बराबर रहता था तथा बचा हुआ पंवार पेशवा व रामचन्द्र पंडित में बाँटा जाता था ।

३ १८ ३ ई तक अंग्रेजों ने दक्षिणी भारत तथा पूर्वी भारत पर अधिकार स्थापित कर लिया था । १८ ३ मे सिंधिया हार गया । १८ ४ मे होल्कर-अंग्रेज युद्ध चल रहा था । सिंधिया व होल्कर से पीड़ित राजपूतों के राज्यों से सहायता की आशा अंग्रेजों ने की थी अत इसी दृष्टिकोण से उन्होंने राजपूताने की ओर कदम बढ़ाया पर वास्तव में उनका साम्राज्यवादी दृष्टिकोण इससे प्रकट होता है । कोटा होल्कर के राज्य के पास था अत होल्कर से युद्धकाल मे पहली बार राजपूत शासकों से मुलाकात की ।

४ डा शर्मा । कोटा राज्य का इतिहास पृ ४८६ व ४९ ।

था। जब मानसन को यह ज्ञात हुआ तो वह कोटा राज्य की सीमा मे वापस चला आया। और मुकुन्दरा की नाल मे शरण ली। यो मानसन अपनी कुछ सेना तथा कोटा की सेना को होल्कर को रोकने के लिये पीछे छोड आया था। इस सेना ने पीपल्या नामक स्थान पर होल्कर की सेना का मुकाबला किया। इस लडाई मे कोटा की काफी बडी सेना मारी गई। आपा अमरसिंह भी मारा गया। लेकिन इससे सेना बच गई। अग्रेज सेना का कप्तान लुकन भी मारा गया[1]। इधर मानसन मुकन्दरा की घाटी होता हुआ कोटा नगर पहुँचा। उसने कोटा मे शरण लेने का विचार किया लेकिन जालिमसिंह ने उसे घुसने नही दिया। उसने उसे सैनिक सहायता देने का अवश्य आश्वासन दिया था[2]। मानसन घबराया हुआ था। अत उसने होल्कर का सामना न कर दिल्ली की ओर भागना ही उचित समझा। रास्ते मे उसके कई सैनिक मर गये। कई छोड कर चले गये। अन्त मे दिल्ली पहुँच कर उसने अपनी हार का मुख्य कारण जालिमसिंह द्वारा सहायता न देना बताया जो पूर्णतया असत्य था। सत्य यह था कि कोटा की सेना के कारण ही वह बच पाया था।

होल्कर कोटा राज्य द्वारा अग्रेजो की सहायता करना सहन नही कर सका। अत उसने कोटा पर आक्रमण कर दिया। जालिमसिंह ने सेना का सामना करना उचित नही समझा, अत सधि की बातचीत आरम्भ की। दोनो सरदारो ने आपस मे मिल कर समझौता करने के लिये चम्बल नदी के बीच मे मिलना तय किया। कोटा के गढ के नीचे चम्बल मे दोनो सरदार मिले। होल्कर ने पीपल्या युद्ध की शर्त के १० लाख रु० मांगे। परन्तु अत मे जालिमसिंह ने होल्कर को ३ लाख रु० देकर ही विदा किया[3]। वास्तविकता यह थी कि होल्कर जालिमसिंह से मित्रता बनाये रखना चाहता था। वह उसकी मित्रता में ही अपना हित समझता था। होल्कर को यह आशा थी कि वह उसकी थोडी बहुत मदद करता ही रहेगा। इसके कुछ समय बाद ही वि० स० १८७४ (ई०स० १८१७) में होल्कर डीग की लडाई में बुरी तरह परास्त हुआ। होल्कर की शक्ति पूर्णतया समाप्त हो गई। तब से राजपूताने मे होल्कर का प्रभाव कम होने लगा। यहाँ तक कि जयपुर व जोधपुर वाले तो उससे लडने तक को तैयार हो गये। लेकिन जालिमसिंह ने फिर भी होल्कर से अच्छा व्यवहार किया।

---

१ टाड राजस्थान, भाग ३, पृ० १५७३। होल्कर को सिर्फ ३ लाख रु प्राप्त हुए। ७ लाख के लिये वह जालिमसिंह को याद दिलाता रहता था पर उसे प्राप्त नही हुए।

२ टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५७१।

३ टाड राजस्थ

उदयपुर के प्रति नीति—जालिमसिंह ने सिंधिया के विरुद्ध मेवाड़ को सहायता दी थी[1]। कोटा व मेवाड़ की संयुक्त सेना ने मरहठों को मेवाड़ से बाहर निकाल दिया। मरहठों के जाने के बाद ही मेवाड़ की शक्तिशाली पक्षों चूंडावतों व शक्तावतों के बीच मनमुटाव हो गया था। महाराणा चूंडावतों से परेशान था अतः उसने जालिमसिंह से सहायता मांगी। जालिमसिंह ने वापस सिंधिया से मित्रता कर चूंडावतों को हराया। बाद में महाराणा तथा महादाजी सिंधिया आपस में मिले[2]। महाराणा महादाजी सिंधिया तथा जालिमसिंह के प्रयत्न से चूंडावतों को आत्मसमर्पण करना पड़ा। जालिमसिंह इसके बाद कोटा वापस चला आया। जालिमसिंह के मेवाड़ जाने का मुख्य ध्येय मेवाड़ में अपनी धाक जमाना था लेकिन इसमें उसे पूर्ण सफलता नहीं मिली।

जालिमसिंह के मेवाड़ से लौटते ही माधवराव सिंधिया के प्रतिनिधि अम्बाजी इंगलिया जो जालिमसिंह का घनिष्ठ मित्र था के महाराणा विरुद्ध हो गये[3]। महाराणा ने चूंडावतों से मेल कर लिया। इस पर जालिमसिंह स्वयं सेना लेकर उदयपुर गया। देबा घाटी के पास महाराणा व जालिमसिंह के बीच युद्ध हुआ। महाराणा ने संधि करली। महाराणा ने फौज-खर्च में जालिमसिंह को जहाजपुर का किला और परगना दिया[4]।

---

१ देखो यही पुस्तक पृ. महाराव गुमानसिंह के काल में जालिमसिंह मेवाड़ चला गया। वहां उसे 'राजराणा' की पदवी प्राप्त हुई। जब महाराणा अरिसिंह के विरुद्ध राजा रत्नसिंह ने सिंधिया की सहायता लेकर उदयपुर पर आक्रमण किया तो जालिमसिंह ने अरिसिंह का साथ दिया था। युद्ध में घायल होकर वह गिरफ्तार हो चुका था। अम्बाजी द्वारा वह छुड़ाया गया। वह पुनः कोटा लौट आया और होल्कर के विरुद्ध महाराव गुमानसिंह से सहायता लेकर पुनः शक्तिशाली हो गया।

२ भीमसिंह चूंडावत से हमीरगढ़ लेकर जालिमसिंह और अम्बाजी इंगलिया चित्तौड़ का घेरा डालने आगे बढ़ा। चित्तौड़ के पास सिंधिया स्वयं आकर इनसे मिल गया। जालिमसिंह के प्रयत्नों से सिंधिया-महाराणा मुलाकात (उदयपुर से १२ मील दूर) पर हुई और चूंडावतों को चित्तौड़ से बाहर निकलने का समझौता हो गया। ओझा राजपूताने का इतिहास भाग ४ पृ. ११ ११।

३ अम्बाजी इंगलिया सिंधिया की ओर से राजपूताने में मरहठों का प्रतिनिधि था। चूंडावतों की शक्ति समाप्त हो जाने पर अम्बाजी ने भीमसिंह चूंडावत से मित्रता करली जो न राणाजी को व न जालिमसिंह को पसंद थी। महादाजी ने लकवा दादा को अम्बाजी के स्थान पर नियुक्त किया पर अम्बाजी का प्रतिनिधि गणेश पन्त यह पद छोड़ने के लिये तैयार न था। लकवा दादा व गणेश पन्त लड़ पड़े। महाराणा ने भी अम्बाजी का साथ छोड़ दिया।

४ वीरविनोद भाग २ प्रकरण २१ ओझा राजपूताने का इतिहास भाग ४ पृ. १ १ वंशभास्कर चतुर्थ भाग पृ. ३८१२ जालिमसिंह के कथनानुसार महाराणा ने

जालिमसिंह ने महाराणा को व्यक्तिगत खर्च तथा मरहठो को खण्डणी आदि देने के लिये लगभग ७१ लाख उधार दिये थे। इस कर्ज के बदले मे मेवाड के कई परगने कोटा राज्य मे मिला लिये गये। इन परगनो की आमदनी कोटा राज्य मे जमा होती थी, ये परगने वि० स० १८७१ तक कोटा के अधीन रहे। बाद मे कर्नल टाड के प्रयत्नो से ये परगने वापस मेवाड राज्य को दे दिये गये।

बून्दी के प्रति नीति—जालिमसिंह सब नरेशो के साथ मैत्री रखना चाहता था। बून्दी और कोटा के बीच काफी समय से वैमनस्य चला आ रहा था। जालिमसिंह ने बून्दी से मेल करना चाहा। इस कारण सबसे पहले उसने अपनी पुत्री का विवाह बून्दी नरेश के साथ कर दिया। बून्दी राज्य के प्रधान मत्री धाभाई सुखराम से जब वह पाटण दर्शनार्थ गया तब बडे प्रेम से मिला व शानदार आवभगत की। बाद मे अगहन कृष्णा द्वितीया वि० स० १८३१ के दिन दोनो ने श्री केशवरामजी की साक्षी करके परस्पर मित्रता की शपथ ली[1]। बाद में उसे अपने साथ कोटा लाया जहाँ उसका बडा आदर-सत्कार किया गया। स्वय महाराव ने उसे सरपेंच, सिरोपाव, तथा घोडा भेंट किया। सुखराम जब वापस बूदी लोटा तब उसके साथ गैंता के महाराजा नाथसिंह और बालाजी यशवन्त गये। और वहाँ दो घोडे, दो सिरोपाव, एक हाथी और एक बहुमूल्य आभूषण बूदी नरेश को भेंट किये। बूदी नरेश ने भी दोनो सरदारो को एक एक सिरोपाव और घोडा देकर रवाना किया। इस प्रकार जालिमसिंह की चतुराई से दोनो नरेशो का पारस्परिक द्वेष समाप्त हो गया।

अंग्रेजो के प्रति नीति—जालिमसिंह अंग्रेजो की उतरोत्तर वृद्धि को बडे ध्यान से देख रहा था। वह समझ गया था कि शीघ्र ही मरहठो का राज्य समाप्त हो जायेगा तथा उनका स्थान अंग्रेज लेलेंगे। यो भी अब तक राजपूताना व पजाब ही उनके अधिकारो से बचे हुए थे। अत वह अब अंग्रेजो को विशेष रूप से सहायता देने लगा। वि० स० १८६१ (ई० स० १८०४) मे अंग्रेजी सेना ने कोटा राज्य में प्रथम बार प्रवेश किया। जालिमसिंह ने इस सेना को सहायता के लिये अपनी सेना भी दी। इसका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं[2]। अंग्रेज इस समय मरहठो की शक्ति समाप्त करने मे लगे हुए थे। ऐसे वक्त मे अंग्रेजो को जालिमसिंह के सहयोग तथा सहायता की बडी आवश्यकता थी।

इगले के भाई मालराव को कैद से मुक्त कर दिया और जहाजपुर का हाकिम जालिमसिंह ने विष्णुसिंह शक्तावत को बनाया।

१ वश भास्कर चतुर्थ भाग पृ० ३८२४।

२ यही पुस्तक फुटनोट

जालिमसिंह ने भी सहायता मांगे जाने पर देने का वायदा किया। कम्पनी की ओर से वायदा किया गया कि ओमहुला के परगने जो कि फिलहाल कम्पनी की ओर से उसे इजारे पर दिए हुए थे। उनको उसे जागीर में दे दिया जायेगा। बाद में जब जालिमसिंह को ये चारों परगने दिए जाने लगे तो उसने अपनी स्वामीभक्ति का परिचय देते हुए कहा कि ये परगने कोटा राज्य में मिलाये जाने चाहिये क्योंकि सहायता कोटा नरेश ने दी है तथा उसने तो केवल कम्पनी की सेवा की है। कम्पनी ने उस पर चारों परगने कोटा राज्य में मिला दिये[1]।

कर्नल टाड ने जब जालिमसिंह से कम्पनी की पिण्डारियों को दमन करने की योजना बताई तथा सहायता मांगी तब भी उसने सहायता देना स्वीकार किया यों जालिमसिंह ने ही पिण्डारियों को अपने राज्य में शरण दे रखी थी। लेकिन वह अब क्या करता? कर्नल टाड ने भी उसे स्पष्ट रूप से कह दिया कि कम्पनी पिंडारियों का दमन देश में शांति स्थापित करने के लिये कर रही है। राज्य विस्तार के लिये नहीं कर रही है। तब जालिमसिंह ने वापस उत्तर दिया— "मैं जानता हूँ कि १ वर्ष बाद सम्पूर्ण भारत में कम्पनी का ही राज्य हो जाना है[2]।" पिंडारियों के दमन के लिये जालिमसिंह ने अंग्रेजों को १५ पैदल तथा सवार और चार तोपें कम्पनी को सुपुर्द की। १८१७ ई में पिंडारी समाप्त कर दिये गए। पिंडारियों को कुचलने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मरहठों की शक्ति को समाप्त कर दिया। जालिमसिंह ने कोटा और अंग्रेजों के बीच में २६ दिसम्बर सन् १८१७ को सधि कराई थी। इसकी निम्नलिखित शर्तें थीं।

(१) अंग्रेजी सरकार और महाराव उम्मेदसिंह तथा उसके उत्तराधिकारियों केबीच में मित्रता के संबंध और हितसमता रहेगी।

(२) दोनों पक्षों में से एक पक्ष के शत्रु और मित्र दूसरे पक्ष के शत्रु और मित्र माने जायेंगे।

(३) अंग्रेजी सरकार कोटा राज्य को अपने संरक्षण में लेना कबूल करती है।

(४) महाराव और उसके उत्तराधिकारी अंग्रेजी सरकार के साथ मातहत रहते हुए सदा सहयोग करेंगे। तथा उसके आधिपत्य को मानेंगे और भविष्य में

१ टाड राजस्थान तीसरी जिल्द पृ १५८१ के चार परगने जब जालिमसिंह के वंशजों को नया राज्य दिया गया तो वे परगने झालावाड़ राज्य में मिला दिये गये।

२ उपरोक्त पृ १५८०।

उन राजाओ और रियासतो से कोई सबध नही रखेगे जिनके साथ अब तक कोटा राज्य का सबध रहा है।

(५) अग्रेज सरकार की अनुमति के बिना महाराव और उसके उत्तराधिकारी किसी राणा या रियासत के साथ किसी प्रकार की शर्तें तय नही करेंगे।

(६) महाराव और उसके उत्तराधिकारी किसी राज्य पर आक्रमण नही करेंगे। यदि महाराव को युद्ध को स्थिति मे प्रवेश करना पडेगा तो अग्रेज सरकार के परामर्श से ही ऐसा हो सकता है।

(७) कोटा राज्य जो कर अब तक मरहठो को देता था वह अग्रेज सरकार को देगा।

(८) कोटा राज्य अन्य किसी राज्य को कर नही देगा। यदि कोई ऐसा अधिकार प्रस्तुत करेगा तो अग्रेज सरकार उसका उत्तर देगी।

(९) आवश्यकता पडने पर कोटा राज्य अग्रेजी सरकार को सैनिक सहायता देगा।

(१०) महाराव और उसके उत्तराधिकारी पूर्ण रूप से अपने राज्य के शासक रहेंगे। उसके राज्य मे अग्रेज सरकार का दीवानी या फौजदारी अमल जारी नही किया जायेगा[१]।

इस सधि के तीन माह बाद मार्च १८१८ मे उपरोक्त सधि मे २ शर्तें और बढा दी गईं।

(१) महाराव उम्मेदसिंह और उसके उत्तराधिकारी कोटा के राजा माने गये।

(२) जालिमसिंह और उसके वशज सम्पूर्ण अधिकार-सम्पन्न राज्य मत्री बने रहेंगे[२]।

जालिमसिंह के सुधार—जालिमसिंह ने कोटा राज्य का प्रसार किया। उदयपुर से कई परगने प्राप्त किये। इन्द्रगढ, खातोली, करवाड, गैता आदि

---

१ टाड राजस्थान भाग ३, पृ० १८३३, परिशिष्ट ६।
एचिशन ट्रिटीज सनद एण्ड एनगेजमेट भाग ३, पृ० ३५७।

२ जालिमसिंह के साथ यह अलग सन्धि हुई। उपरोक्त पृ० ३६१। कोटा के महाराज ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ सन्धि कर राजपूताने को अग्रेजी प्रदेश मे सहूलियत स्थापित करदी। बाद मे धीरे २ राजपूताने के सब शासको ने मरहठों से मुक्ति प्राप्त करने के लिये ठीक इसी प्रकार की सधिया की। अग्रेजी सार्वभौमिकता ने धीरे २ इन शासकों को नपुसक बना दिया। जालिमसिंह का यह कार्य कोटा के लिये कितना लाभप्रद हो सकेगा इसका प्रमाण तो उम्मेदसिंह की मृत्यु के बाद राज्याधिकार का युद्ध है।

उसके अधीन रहे। पाटणी खिलचीपुर मरहठों को न लने दिया। इतना बड़ा राज्य का संगठन उनकी सैनिक व्यवस्था पर आधारित था।

सैनिक व्यवस्था—वह हाड़ा जागीरदारों को और यथासंभव किसी भी राजपूत सरदार को सेनापति नहीं बनाता था। सेना का प्रशासन या प्रबंध मुसलमान या कायस्थों को सौंपा जाता था। प्रधान सेनानायक दलेलखां पठान था। मुख्यपद भी पठानों को सौंपे गये। उसकी सेना में २ सैनिक थे व १ से अधिक तोपें थीं जो आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक लायी जा सकती थीं घुड़सवार व पैदल उसकी सेना के मुख्य अंग थे। उसकी सेना के अलावा रण क्षेत्रों में जागीरदारों की सेना का भी प्रयोग किया जाता था। अंग्रेजों से मित्रता होने पर अपने यहाँ २ अंग्रेज सैनिक अफसर रखे तथा पश्चिमी ढंग से सैनिक कवायद तथा शिक्षा देनी शुरू की। राज्य में नये किले बनवाये गये। पुराने किलों की मरम्मत की गई। कोटा नगर का शहर पनाह स १८३६ में सुरक्षा के लिये बनवाया गया। मुख्य किलों को—गागरोण नाहरगढ़ केल वाड़ा शाहाबाद आदि सैनिक दृष्टि से सुरक्षित किया गया। प्रत्येक किले में नयी तोपें व बारूद खाना तथा सुरक्षित (Reserve) सेना रखी गई। सं १८५६ (१८ ० ई) के बाद उनकी फौज का मुख्य केन्द्र छावनी था जो नगरी व किले के पास थी[1] भूमि कर प्रबंध सुधार[2]। लगातार युद्धों के कारण तथा सैनिक नवसंगठन से कोटा राज्य का कोष खाली होने लगा। राज्य की आय मरहठों की मामलात के रूप में देनी पड़ती थी तब ही राज्य में शांति रह सकती थी। अतः आय वृद्धि के लिये जालिमसिंह ने भूमि कर सुधार किये। सर्व प्रथम जालिमसिंह ने पटेल-व्यवस्था में सुधार किये। पटेल, राज्य व जनता के बीचमें संस्था के रूप में कार्य करते थ। प्रजा से अधिक कर वसूल किया जाता था। अत्याचार और अनाचार के व प्रतीक थे। राज्य की आय को वे कम बतलाते थे। बाकी धन वे स्वयं हड़प जाते थे। प्रति तीसरे वर्ष एक कर पटेलों से लिया जाता था जिसे बराड़ कहा जाता था। पटेल यह कर भी जनता से वसूल करते थे। जालिमसिंह ने पहली घोषणा तो यह की कि जो पटेल राज्य को बराबर उसका हिस्सा देंगे उनसे बराड़ नहीं लिया जायेगा। पटेलों की रसूम नियत करदी। राज्य के सब पटेलों को एकत्र किया गया और उन्हें पटेलो के पट्टे दिये गये। यह पटेलों की एक संस्था बन गई। सब पटेलों में से ४ सबसे योग्य

---

१ टाड राजस्थान जिल्द तीन पृ १५४६ २ ।
१ उपरोक्त पृ १५५०-१५५७।

पटेल छाँटे गये। उनकी एक समिति बनाई गई जिसका अध्यक्ष स्वयं जालिम-सिंह था। इसका कार्य मालगुजारी वसूल करना तथा जमीन को आबाद रखना था। बाद मे इस समिति को गाँव का पुलिस कार्य भी सौंप दिया गया तथा गाँव की पचायतो से असतुष्ट व्यक्तियो की अपील पर निर्णय करना भी इसका काम रखा गया। गाँव के पटेल पर गाँव की शांति, न्याय तथा मालगुजारी का कार्य सौंपा गया। इसके अलावा गाँव का पटेल विदेशियो के प्रवेश व चाल-चलन पर भी निगरानी रखता था। इन पटेलो व पटेल समिति पर नियन्त्रण रखने के लिये उसने कठोर गुप्तचर व्यवस्था का सगठन किया।

भूमि की पैदाइश—पटेल सम्मेलन के समय जालिमसिंह ने तत्कालीन भूमि-व्यवस्था की पूर्ण रिपोर्ट प्राप्त की। कर कैसे वसूल किया जाता है ? कितना ? कब ? भूमि कैसी है ? खेती मे क्या बोया जाता है ? यह सूचना प्राप्त करने के बाद उसने जमीन को नपवाया। जमीन की चकबदी की गई। उसको तीन भागो मे विभक्त किया गया। पीवत, गोरमा और मोमभी। इसके अनुसार लगान निश्चित किया गया। साथ ही घोषणा की गई कि लगान नकद लिया जायेगा। पटेल की वसूली प्रति बीघा डेढ आना की गई। इससे राजकीय आय बढने लगी[1]।

कर व्यवस्था—जालिमसिंह के इन सुधारो से कृषक वर्ग को कष्ट से छुट-कारा प्राप्त हो गया हो, ऐसी बात तो नही है। पटेलो के पास कुछ ताकतें ऐसी थी जिससे वे खेत काटने से पहले धन प्राप्त कर सकते थे। इस अवस्था मे किसान उधार रुपया लेकर पटेल को प्रसन्न रखता था। कभी उपज का कुछ भाग पहले ही पटेल का हो जाता था। क्योकि पटेल ही किसान को रुपये उधार देता था। अत जालिमसिंह ने पटेल-व्यवस्था का ही अन्त करने का निश्चय कर लिया। स० १८६७ (ई०स० १८१०) मे सब बडे २ पटेल राज्य द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये। उनकी सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार कर लिया गया। जमीनो पर राज्य के हवाले स्थापित किये गये। राज्य का हिस्सा सख्ती से वसूल किया जाता था। जो किसान विलम्ब करता उसकी जमीन खालसा करली जाती थी। राज्य की ओर से खेती होने लगी। सन् १८२०-२ मे राज्य के द्वारा सचालित ४ लाख बीघा जमीन थी और १६ हजार बैल थे। बैलो की खरीद व बिक्री के लिये नये २ मेले व उत्सव आयोजित किये गये। उपज बढने लगी। प्रति वर्ष

१ ४००० हल ४,००,००० बीघा भूमि जोतते थे। और दूसरी फसल मे भी इतनी ही भूमि जोती जाती थी। प्रति बीघा ४ मण अनाज पैदा होता था। इस प्रकार ३२ लाख मण अनाज पैदा होता था। टाड पृ० १५६२।

१२ लाख मण अन्न पैदा होने लगा। अन्न बेचने का अधिकार भी राज्य को था। दुर्भिक्ष के समय कोठारों में भरे हुए अन्न को महंगे भावों पर बेचा जाता था। किसानों और व्यापारियों को व्यक्तिगत रूप से अन्न बेचने पर एक प्रकार का कर देना पड़ता था जिसे कट्टा कहते हैं। सीगोटी, थोपोटी, पाणी नापो छापो, बेसक कंवरमट आदि कर तो परम्परा से ही चले आ रहे थे। जालिमसिंह द्वारा लगाये गये नये करों मे विधग, बगड तुम्बा बराड झाड़ बराड़ चूल्हा बराड़ कागली कूलड़ी जागीरदार आदि थ। इनके अतिरिक्त पटेलों बोहरों व व्यापारियों की आय से तिलाला दण्ड के रूप में कर लिया जाता था। इन करों को किस प्रकार एकत्र किया जाता था इनका हिसाब खाता व खर्च का बटवारा कैसे होता था यह स्पष्ट ज्ञात नहीं है।

आर्थिक मेलों की व्यवस्था—अधिक कर लेने की प्रथा के कारण अशांति फैलने लगी और सं १८८० से १८८५ में राज्य के विरुद्ध कई विद्रोह होने लगे। जालिमसिंह को इस अप्रियता के विरुद्ध कर-मुक्ति की नीति अपनानी पड़ी। पटेल व पटवारियों को जनता से सद्व्यवहार करने की हिदायत दी गई। इसका आर्थिक स्थिति पर असर पड़ा। जुवार का भाव वि स १८३८ में साढे तीन रु मण था। भाव अधिक सा था पर लोगों के पास खरीदने को पैसे नहीं थे। राज्य का कोष मरहठों व लगातार युद्धों के कारण खाली हो रहा था। मरहठों को धन देने के लिय व्यापारियों से ब्याज पर ऋण लेना पड़ता था। आर्थिक स्थिति सुधारने के लिय जालिमसिंह ने पशुओं व साधारण व्यापार के मेले प्रारम्भ किये। विशेषकर उम्मेदगंज और नांता का बृजनाथजी का मेला व झालरापाटन का मेला प्रारम्भ किया। इन मेलों में आने वाली वस्तुओं पर कर नहीं लिया जाता था। दूर-दूर से व्यापारियों को आने का निमन्त्रण दिया जाता था। अपने आदमियों को डाक द्वारा सूचना भजी जाती थी। यह काम सेठ किशनदास हुल्दिया किया करता था।

उम्मेदसिंह का देहान्त—महाराव उम्मेदसिंह ५ वर्ष तक राज्य करके सं० १८७७ मे मार्गशीर्ष शुक्ला २ शनिवार (ई स० १८१९ की २१ नवम्बर) को एकाएक रामशरण हो गय। उस समय मुसाहिब जालिमसिंह झाला झालरापाटण की छावनी में रहता था। महाराव की मृत्यु सुन कर वह तुरन्त कोटा गया और कर्नल टाड को महाराव के देहान्त की सूचना देते हुए यह पत्र लिखा कि महाराव उम्मेदसिंह शनिवार की शाम तक पूर्णरूप से स्वस्थ थे सूर्यास्त के बाद श्रीबृजनाथजी के मन्दिर में गये और ६ बार दण्डवत की। सातवीं बार दण्डवत करने के लिए झुकते ही उनको मूर्छा आ गई और उसी दशा में रात को दो बजे

उनका देहान्त हो गया। यहाँ उनके जेष्ठ राजकुमार किशोरसिंह को गद्दी पर बैठा कर आपको मित्रता के नाते यह सूचना दी है[1]। महाराव उम्मेदसिंह के किशोरसिंह, विष्णुसिंह और पृथ्वीसिंह नाम के ३ पुत्र थे।

महाराव किशोरसिंह दूसरा (वि० स० १८७६-१८८४)

इसका जन्म वि० स० १८३६ (ई० स० १७८१) मे हुआ था। गद्दी पर बैठने के समय इसकी अवस्था ४० वर्ष की थी[2]। सम्वत् १८७६ मार्गशीर्ष सुदि १४ को इसका राज्याशिषेक हुआ। इसके समय मे मुसाहिबआला का पद जालिमसिंह झाला को ही दिया गया था। अग्रेजी सरकार की गुप्त सधि के अनुसार[3] यह पद झाला वश का पैतृक हो गया था। जालिमसिंह कोटा राज्य का सर्वेसर्वा था। वृद्धावस्था मे इसकी नजर अति कमजोर हो गई थी। अत इसने अपने पुत्र कुवर माधोसिह झाला को मुसाहिब बना दिया था तथा स्वय छावनी मे रहने लगा था। फिर भी बिना उसकी सलाह से कोई निर्णय या नीति राज्य निश्चित नही करता था। महाराव किशोरसिहजी जालिमसिंह के प्रभाव से मुक्त होकर स्वय शासक के रूप मे राज्य करना चाहता था। परन्तु जालिमसिंह का समर्थक अग्रेजी सरकार का राजदूत कर्नल टाड था जो कि कोटा-अग्रेज-सधि के अनुसार जालिमसिंह की स्थिति बनाए रखना चाहता था।

जालिमसिंह के दो पुत्र थे। एक माधोसिह और दूसरा औरस पुत्र गोवर्धन दास। था माधोसिह कुछ गर्विला और राजमद मे छका हुआ था। उसके और गोवर्धनदास के वीच मे अनवन थी[4]। इससे गोर्वधनदास महाराव से जा मिला।

---

१ कनल टाड की यह सूचना उस समय प्राप्त हुई जब वह मारवाड से मेवाड जा रहा था। उदयपुर कुछ दिन ठहर कर वह कोटा पहुँचा जहाँ गद्दी के लिये युद्ध की सभावना थी। टाड राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५८५ व फुटनोट मे पत्र का उल्लेख है।

२ राजकुमार के रूप मे किशोरसिंह अधिक उदार प्रवृत्ति का था। अधिकतर समय इसका एकान्त में वीतने के कारण धार्मिक प्रवृत्ति अधिक थी। अपने कुटुम्ब पर इसे गर्व था जिसे जागृत करने पर यह जालिमसिंह से लड पडा।

३ २१ मार्च १८१८।

४ गोवर्धनदास तथा पृथ्वीसिंह (महाराव किशोरसिंह का छोटा भाई) मे घनिष्टता थी जिसे माधोसिंह पसन्द नही करता था। एक वार माधोसिंह ने गोवर्धनदास को गिरफ्तार करके हवालात मे भी रखवा दिया था जिससे दोनो भाइयों की शत्रुता बढ़ गई। टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५८४।

महाराव का दूसरा भाई विष्णुसिंह तो जालिमसिंह से मिल चुका था और सबसे छोटा भाई पृथ्वीसिंह महाराव की तरफ रहा। उस समय महाराव ने[१] एक खलीता पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल टाड को लिख भेजा कि जब अहदनामे में यह शर्त है कि महाराव और उसके वंशधर उत्तराधिकारी अपने मुल्क के पूरे मालिक होंगे फिर उसके विरुद्ध कार्यवाही क्यों होती है[२]? इस पत्र ने अग्नि में आहुति का काम किया और विरोध अधिक बढ़ गया। तब कर्नल टाड जो जालिमसिंह झाला का मित्र था कोटा आया[३]। उसने महाराव को समझाने का प्रयत्न किया तथा गोवर्धनदास व महाराज पृथ्वीसिंह को कोटा से निकाल देने की सलाह दी। मगर उन्होंने एक न मानी। बात यहाँ तक बढ़ गई कि गोवर्धनदास ने गुस्से में आकर तलवार की मूठ पर हाथ डाला कि कर्नल टाड ने शान्ति और भेद द्वारा काम समाप्त करने का सोचा। टाड के इस व्यवहार को युद्ध का सन्देश समझा गया। महाराव और उसके साथी तो किले में घुस कर सामना करने की तयारी करने लगे। कर्नल टाड को जालिमसिंह के अधिकार सुरक्षित करने थे। उसने किले का घेरा डलवा दिया। तंग आकर महाराव अपने ५०० साथियों सहित ब्रजनाथ की मूर्ति लेकर नक्कारा बजाते हुए फौज के बीच में से होकर निकल चला गया[४]। जब इसका पता टाड को लगा तो उसे भय हुआ कि महाराव किले के बाहर रह कर फिसाद करेगा। उसने जालिमसिंह से सलाह ली जालिमसिंह ने अपनी स्वामी भक्ति का परिचय देते हुए महाराव को लौटा लेने तथा उसको पुनः किले में रखने की कोशिश की[५]। माधोसिंह का दृष्टिकोण महाराव की ओर अधिक

---

१ महाराव यद्यपि शान्त प्रकृति का था पर उसका भाई पृथ्वीसिंह तथा गोवर्धनदास महाराव को व कोटा की जनता को जालिमसिंह व माधोसिंह के निरंकुश अत्याचारी शासन से मुक्त करना चाहते थे। अतः उन्होंने महाराव को स्वतन्त्र रूप से शासन करने की सलाह दी।

२ वास्तव में संघर्ष मार्च १८१८ की संधि को मान्यता न देने का था जो कि महाराव को मालूम नहीं थी।

३ खलीते के उत्तर में लिखा "महाराव नाम मात्र के शासक हैं कोटा राज्य का वास्तविक शासक जालिमसिंह है न कि महाराव"। टाड राजस्थान जिल्द ३ पृ. १५६।

४ टाड राजस्थान जिल्द ३ पृ. १५६।

५ "वह अपने स्वामी के चरणों की सेवा में रहना चाहता है। वह नमकहराम बनकर कलंक धारण करना पसन्द करेगा न कि मालिक के साथ विद्रोह करके अपना मुंह काला करेगा"। जालिमसिंह। टाड राजस्थान जिल्द ३ पृ. १५६१।

झलकता था[1]। कर्नल टाड घोडे पर सवार होकर उस तरफ चला जिधर महाराव गया हुआ था। महाराव ने रगवाडी मे अपना डेरा स्थापित किया था। विना सूचना दिये कर्नल टाड रगवाडी जा पहुँचा। उस समय महाराव के साथ सलाहकार के रूप मे गोवर्धनदास झाला तथा महाराज पृथ्वीसिंह थे। कर्नल टाड ने यह स्पष्ट किया कि अग्रेजी सरकार आपकी इज्जत और मर्तव का बहुत ख्याल रखती है परन्तु १८१८ ई० की कोटा-अग्रेज सन्धि मे जालिमसिंह के प्रति जो शर्ते हो चुकी हैं वे किसी दशा मे रद्द नही की जा सकती हैं। महाराव और जालिमसिंह के इस झगडे को सुलह मे परिवर्तित करने मे कर्नल टाड का मुख्य हाथ था। अपने सलाहकारो की राय न होते हुए भी महाराव टाड के साथ पुन किले मे चले गये। जालिमसिंह ने चरण छूकर नजर दी और माधोसिंह झाला ने तलवार बाँधने की रस्म अदा कर नजर न्योछावर की[2]। गोवर्धनदास को पेन्शन देकर सदा के लिये कोटा से निर्वासित कर उसे देहली भेज दिया[3]।

यह शान्ति अल्पकालीन ही रही। सम्वत् १८७७ (ई० स० १८२०) में राज्य की सेना के कुछ अधिकारियो से मिल कर महाराव ने किले पर पूर्ण अधिकार स्थापित कर लिया[4]। उस वक्त जालिमसिंह ने किला घेर कर गोले चलाने आरम्भ किये। महाराव किला छोड कर कोटे से विना सवारी और विना नौकरो के पैदल ही अपने भाई पृथ्वीसिंह सहित पोष वदि ३ (ता २२ दिसम्बर १८२०) को बून्दी चले गये। वहा रावराजा विष्णुसिंह ने पहिले तो उनका बडा आदर-सत्कार किया परन्तु जालिमसिंह के दवाव व अग्रेजी सरकार की

---

१ वातचीत के दौरान मे दोनो दल इतने गर्म हो गये कि गोवर्धनदास ने तलवार की मूठ पर हाथ रखा कि कर्नल टाड को ही समाप्त कर दिया जाये पर सरदारो ने बीच-बचाव कर शान्ति की। उपरोक्त

२ किशोरसिंह का दूसरी वार राज्याभिषेक हुआ। कर्नल टाड की उपस्थिति मे इस प्रकार अग्रेजी सरकार ने देशी नरेशो को जव तक शासक स्वीकार करना स्थगित कर दिया जव तक उनका प्रतिनिधि राज्याभिषेक मे शरीक न हो। यह परम्परा प्रारम्भ हुई। महाराव ने १०१ मोहरें गवर्नर जनरल को नजर की और गवर्नर जनरल ने एक खिलअत भेजा। टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५९३।

३ उपरोक्त पृ० १५९५।

४ गोवर्धनदास दिल्ली मे रहने लगा। थोडे समय वाद वह झाबूआ शादी करने गया और वहा से वह महाराव को पत्र-व्यवहार करने लगा। एक बार वह पुन अपने पिता और भाई से वदला लेना चाहता था। इस पर जालिमसिंह ने किले पर निगरानी रखनी शुरू कर दी। महाराव सेफअली से सहायता प्राप्त कर किले मे युद्ध की तैयारी करने लगा। टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५९६, वशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ४०२१।

सन्धि के कारण महाराव किशोरसिंह को अधिक दिनों तक शरण न दे सका। महाराव बून्दी से देहली पहुँचा। वहाँ अंग्रेजी सरकार के उच्चाधिकारियों से मिल कर स्थिति को साफ करवाना चाहा परन्तु वहाँ पर भी उसे कोई सहारा प्राप्त न हुआ। तब वह मथुरा-वृन्दावन चला गया। महाराव की यह दशा देख कर राजपूताने के कई राजा उससे सहानुभूति रखने लगे[1]।

वृन्दावन में कष्टों से तंग आकर महाराव हाड़ोती की तरफ १८२१ ई० में रवाना हुआ। हाड़ोती के बहुत से जागीरदार और हाड़ा सरदार लगभग तीन हजार हाड़ा राजपूतों के साथ महाराव की सहायता के लिए उपस्थित हुए और वे सब सीधे कोटे के किले में प्रविष्ट हुए। १६ सितम्बर १८२१ में महाराव ने पोलिटिकल एजेन्ट को सूचना दी कि मामा जालिमसिंह का तो मुझे भरोसा है। वह अपनी मृत्युपर्यन्त राज्य का काम किया करे परन्तु माधोसिंह से मेरी नहीं बनती है इसलिए उसको जुदा जागीर देदी जावेगी और उसका पुत्र बापूलाल (मदनसिंह) मेरे साथ रहेगा। सेना तथा खजाना आदि मेरे हाथ में रहेंगे[2]। इस पत्र में लिखी हुई शर्तें कर्नल टाड ने स्वीकार नहीं की। एक बार पुनः किशोरसिंह को अंग्रेजों की पूर्ण मातहत में रहने का और माधोसिंह को जालिमसिंह के कहने के अनुसार चलने का आदेश दिया गया परन्तु महाराव को जो नई शक्ति राजपूताने के शासकों व हाड़ा सरदारों से प्राप्त हो रही थी उसके आधार पर उसने अपनी स्वतंत्र स्थिति बनाये रखने का प्रयास किया। अंग्रेजों को यह कब सहन हो सकता था। कर्नल टाड ने अपनी सरकार से फौजें मंगवाई और जालिमसिंह को साथ लेकर वह कोटा गया। नदी में बाढ़ आ जाने के कारण कालीसिन्ध के किनारे कई दिन तक उन्हें वहाँ ठहरना पड़ा। इस बीच में कर्नल टाड ने महाराव को पुनः इस बात पर राजी करने को तयार किया कि जालिमसिंह व माधोसिंह से झगड़ा नहीं किया जावे। महाराव का यही उत्तर मिला प्रतिष्ठा बिना जीवन और अधिकार के बिना मालिक कहलाने में कोई महत्व नहीं है। इसलिए मैंने अपने पिता पितामहों की तरह राज्य करना या मर मिटना ही निश्चय किया है[3]। उस समय जालिमसिंह ने चाहा कि सरकारी सेना ही महाराव से युद्ध करे और वह स्वयं युद्ध में प्रविष्ट न हो जिससे लोग मरेश के विरुद्ध हरामखोरी करने का कलंक तो न लग सकेगा कर्नल टाड ने इस बात

१ टाड जिल्द ३ पृ १५८७-८८।

२ उपरोक्त पृ १५११ फुटनोट यह पत्र किशोरसिंह ने मिती आसोज बदी पंचमी १८७८ १६ सितम्बर १८२१ को लिखा।

३ टाड राजस्थान जिल्द ३ पृ १६११।

पर अधिक दबाव डाला कि या तो महाराव के प्रति राज्य-भक्ति ही प्रदर्शित हो सकती है या अपने अधिकार ही सुरक्षित रखे जा सकते हैं। जालिमसिंह ने अपने अधिकारो को सुरक्षित बनाए रखना ज्यादा उचित समझा और महाराव के विरुद्ध युद्ध के लिये तैयार हो गया।

महाराव के पास ७-८ हजार सेना ग्रामीण-हाडा-राजपूतो की थी पर उनके पास तोपखाने की कमी थी। उधर दीवान जालिमसिंह झाला के पास उसकी आठ पल्टनें, चौदह रिसाले, और ३२ तोपे थी। इसके अलावा जालिमसिंह की सहायता के लिये दाहिनी तरफ अग्रेजो की ओर से एम मिलन की अध्यक्षता मे २ पल्टनें, ६ रिसाले और एक बडा तोपखाना था। नदी के उस पार महाराव की फोज थी। अग्रेजी फोज आगे बढी चली गई। इस फोज और महाराव की फोज के बीच सिर्फ २०० गज का फासला रह गया। उस समय भी आगे बढ कर कर्नल टाड ने महाराव को सुलह कर लेने के लिये समझाया परन्तु महाराव युद्ध करना अधिक पसद करते थे। टाड ने पौन घटे की मोहलत दी। यह समय व्यतीत होने पर युद्ध आरम्भ हुआ[1]। अग्रेजी तोपे आग उगलने लगी। महाराव के हाडो ने भी अपनी वश परम्परागत बहादुरी व रण-कौशल का परिचय देना आरम्भ किया। महाराव के साथियो ने हमला करके तोपखाने को छीनना चाहा और कई राजपूत तोपो के मुह तक पहुँच कर मारे गये। यदि उस समय अग्रेजी रिसाले का धावा उन पर न होता तो वे अवश्य फोजदार जालिमसिंह झाला को नीचा दिखा देते। परन्तु उनके भाग्य मे पराजय लिखी थी। सैकडो वीर हाडा खेत रहे। महाराव जल्दी से नदी उतर कर ५ कोस दूर जा ठहरे। अग्रेजी फोज ने पीछा किया और रिसाले का पुन हमला आरम्भ हुआ। इस बार अग्रेजी सेनापति को विश्वास हो गया कि महाराव की फोज भाग जावेगी परन्तु राजपूत लोग लोहे की लाट की तरह मैदान मे डटे रहे व दुश्मनो को पास आने दिया और फिर एक एक कर उन पर टूट पडे। इस द्वन्द युद्ध मे कोयला के जागीरदार राजसिह और गेंता के कुवर बलभद्रसिह व सलावतसिह तथा उसके चाचा दया-नाथ, हरीगढ के चन्द्रावत अमरसिंह और उसके छोटे भाई दुर्जनसाल आदि ने जिस वीरता का प्रदर्शन किया उससे अग्रेजी फोज के पैर उखडने लगे। ठाकुर राजसिह ने लेफ्टीनेंट क्लार्क और कुवर बलभद्रसिह ने लेफ्टीनेंट रीड का काम तमाम कर दिया। उनका बडा अफसर लेफ्टीनेट कर्नल जेरिज युद्ध-क्षेत्र मे घायल

---

१ उपरोक्त पृ० १६०२-३, डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द तीन, पृ० ५७१ ५८२।

महाराव रामसिंह (दूसरा) (वि० सं० १८८४–१९२२)
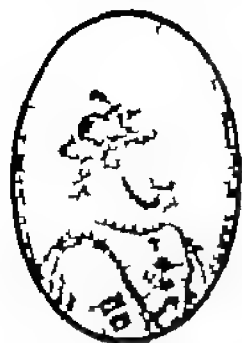
इसका जन्म वि० सं० १८६५ (ई० स० १८०८) में हुआ था। यह महाराव किशोरसिंह के लघु भ्राता महाराजा पृथ्वीसिंह का पुत्र था। किशोरसिंह के कोई पुत्र नहीं होने के कारण अपने बाद रामसिंह को उत्तराधिकारी घोषित किया। इसका राज्याभिषेक सं० १८८४ (ई० स० १८२७) में हुआ था। इसका शासन प्रारम्भ में शांति व अन्य राज्यों से मित्रता का काल था। सं० १८८८ (ई० स० १८३१) में अपने मुसाहिब सहित अजमेर लार्ड विलियम बैंटिंग से मिले[1]। उस समय इसको चंवर इनायत हुआ। माधोसिंह अपनी पिछली करतूतों के प्रायश्चित के रूप में इसे हर प्रकार से प्रसन्न रखने का प्रयास करता था, परन्तु सं० १८९० (ई० स० १८३३) में मुसाहिब आला माधोसिंह का देहान्त हो गया। अपनों के साथ

आपस में युद्ध कर रहे थे) मित्रता बनाये रखना अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को कोटा के पक्ष की ओर बनाना उसी व्यक्ति का काम हो सकता है। वह एक योग्य सेनापति तथा साहसी सिपाही था। युद्ध क्षेत्र में प्रथम पंक्ति में लड़ना तथा हारे हुए युद्ध को विजय में बदलना यह उसकी विशेषता थी। अपनी राजनीति की सफलता के लिये मित्रता को भी वह ठुकरा सकता था। अम्बाजी इंगले उसकी इस नीति का शिकार था। अपने पुत्र गोवर्धनदास को जिसे कि वह अत्यन्त प्यार करता था। अपनी स्थिति मजबूत बनाये रखने के लिये उसने उसका देश त्याग करवाया। देश की परिस्थितियों का उसे सही ज्ञान था। कोटा को कभी अपने पेशवा सिंधिया अंग्रेज और पिंडारियों की उलझनों में इतना नहीं फँसने दिया कि वह उसे न बचा सके। उसमें क्षत्रियोचित वीरता थी और मराठों की सी नीति। विजय पराजय दोनों का वह लाभ उठाना जानता था।

वह एक उच्च कोटि का प्रशासक था। उसके सैनिक-सुधार भूमि-प्रबंध राजकीय खेती प्रणाली कर व्यवस्था आधुनिक अर्थ-व्यवस्था से मिलती जुलती है, परन्तु उस युग में यह सुधार जनप्रिय न हो सके। क्योंकि वह वास्तव में समय से आगे की थी। जन-कल्याण जालिमसिंह का उद्देश्य नहीं था। वह सिर्फ इन साधनों द्वारा अपनी शक्ति का संचय करना और अपना प्रभाव विस्तार करना चाहता था। वही पहला राजस्थानी था जिसने राजस्थान के द्वार अंग्रेजों के लिए खोल दिये। अंग्रेजों ने भी उसकी स्थिति मजबूत बनाने का भरसक प्रयत्न किया।

१ इसके काल में प्रथम बार अंग्रेज सरकार के गवर्नर जनरल ने राजस्थान व देशी रियासतों के शासकों से मुलाकात की। अजमेर में वह उन नरेशों से मिल कर अंग्रेजी सत्ता के प्रति वफादार हुये और अंग्रेजों द्वारा इन्हें आन्तरिक शान्ति बनाए रखने में मदद का आश्वासन दिया। सन् १८३४ में महाराणा उदयपुर कोटा आये। इस प्रकार राजाओं के आपसी की मिलन प्रथा प्रारम्भ हुई जिससे शान्ति और मित्रता बनी रही।

ी हुई गुप्त सन्धि (मार्च १८२१) के अनुसार मुसाहिब पद पर माधोसिंह का पुत्र मदनसिंह नियुक्त किया गया। प्रारम्भ मे तो दोनो युवक शासनकर्ताओ मे बनी रही परन्तु धीरे २ दोनो की शत्रुता इतनी बढ गई कि कोटा का विभाजन करना पडा।

मदनसिंह जब किले मे प्रवेश करता तो महाराव की तरह तोपें दगवाता था। यह इज्जत शक्ति का प्रदर्शन समझी जाती थी। ऐसी ही कई हरकतो से[1] महाराव और उसमे गहरी अनबन हो गई। कोटा की प्रजा झाला मदनसिंह मुसाहिब आला को नही चाहती थी। आम विद्रोह होने का भय हो गया। ऐसी अवस्था मे अंग्रेजी सरकार ने मध्यस्थता द्वारा प्रधान मन्त्री व शासक के बीच समझौता करा दिया जिससे मदनसिंह झाला को कोटा की पैतृक मुसाहिबी से त्याग पत्र देना पडा। उसके स्थान पर उसे कोटा राज्य की एक तिहाई आमदनी का भाग दिया गया। इस प्रदेश मे १७ परगने थे और वार्षिक आमदनी १२ लाख रु. थी[2]। अंग्रेजी सरकार ने मदनसिंह झाला से एक प्रथम सन्धि करली जिसके अनुसार इस भाग (जिसका नाम झालावाड रखा गया) का स्वतंत्र शासक मदनसिंह झाला को स्वीकार कर लिया गया[3]। कोटा की खिराज मे से ८० हजार रु. सालाना घटा कर झालावाड की तरफ जोडे गये। एक नयी सरकारी

---

१ मदनसिंह झाला की कई अन्य हरकतो को महाराव पसन्द नही करते थे। मदनसिंह स्वभाव से ही उदण्ड, असहनशील, शीघ्रगामी और स्वतन्त्र प्रकृति का था। रामसिंह की आज्ञाओं का वह पालन नही करने लगा। गढ मे उसका जन्म-दिवस धूमधाम से मनाया जाता था। राजाज्ञाओ पर नरेशो की तरह उसका नाम भी लिखा जाने लगा, अंग्रेजी राज्य की पूर्ण शक्ति झाला के पीछे होने पर महाराव सिर्फ नाम मात्र के शासक थे। अत महाराव उससे अधिक नाराज हो गये। मदनसिंह ने अंग्रेजो से कोटा कान्टीनजेन्ट का निर्माण-कोण कोष से कर दिया। यह भी अनबन का एक कारण था।

२ इन परगनो मे चौमहला व शाहबाद के परगने झाला जालिमसिंह ने कोटा राज्य मे मिलाए थे। इनकी आमदनी पाच लाख ही थी। परन्तु मदनसिंह ने १७ परगने लिए व १२ लाख के स्थान पर १७ लाख की आय के परगने लिये। चेचट, सकेत, आवर, डग, गगराड, झालरापाटन, रीचवा, बफानी, बाहलनपुर, कोटडा, भाजन सरडा, रटलाई, मनोहरपाना, फूलवडादे, चाचोरोनी, गु जारी, छीपाबडोद, शाहबाद। डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास २, पृ० ५९६।

३ इस राज्य की निर्माण तिथि वैसाख शुक्ला ३, सम्वत् १८९४ (सन् १८३७) की है। इसके नरेशो को राजराणा की उपाधि से विभूपित किया जाता है जो कि झाला जालिमसिंह को महाराणा उदयपुर श्री अरिसिंह ने उसके प्रति की गई सेवाओं के बदले दी थी। झालावाड को छावनी या बृजनगर भी कहा जाता है।

होकर गिर पड़ा[१]। विजय महाराव को सेहरा बांध रही थी। इस स्थिति का लाभ उठा कर महाराव कोटा गुप्त रूप से लौट जाना चाहता था। वह एक मक्का के खेत की ओट लेकर निकल गया परन्तु इस तरह रण-क्षेत्र से भाग जाने से अपने कुल को कलंक लगने का ख्याल कर महाराव का छोटा भाई पृथ्वीसिंह लौट पड़ा। उसने राजगढ़ के जागीरदार देवसिंह आदि २५ राजपूत वीरों के साथ दूसरी तरफ से दिवान जालिमसिंह पर आक्रमण कर दिया। इस समय जालिमसिंह के पास ३०० सिपाही थे। २५ वीरों के युद्ध कौशल से जालिमसिंह की सेना में घबराहट तो फैल गई परन्तु वे कहां तक लड़ते। उनके साथी मारे गये। देवसिंह घायल हुआ। महाराव पृथ्वीसिंह भी घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा। उसकी पीठ में एक रिसालदार के हाथ का बर्छा लगा। वह एक खेत में बाद में पड़ा मिला। टाड उसको पालकी में लिटा कर अपने डेरे तक लाया और बड़ी हिफाजत के साथ इलाज करना शुरू किया परन्तु वह दूसरे दिन ही मर गया[२]। मरते समय भी उस वीर राजपूत ने हिम्मत न हारी। उसकी तलवार तथा अंगूठी तो कोई ले गया था परन्तु मेरा दस्त कठमाला और दूसरा जेवर जो वह पहने हुए था वे सब ऐजेंट को देते हुए कहा कि "मेरा पुत्र आपके भरोसे है"। कर्नल टाड ने इस युद्ध में प्रदर्शित हाड़ा राजपूतों की वीरता का अवर्णनीय शब्दों में उल्लेख किया है। यह घमासान युद्ध राजधानी कोटा से ५ मील उत्तर पूर्व बाणगंगा के तट पर गांव मांगरोल में वि० सं० १८७८ आश्विन सुदि ५ सोमवार (ई० स० १८२१ १ अक्टूबर) को हुआ था। इसमें विजय फौजदार जालिमसिंह झाला को ही मिली।

फिर महाराव किशोरसिंह किसी तरह रणक्षेत्र से निकल कर पार्वती नदी को पार कर सेना से हीन हुए गाड़ा के ठिकाने सिरपुर बराट की तरफ चला गया। वहां से नाथद्वारा (मेवाड़) गया जहां उसने कोटा राज्य को भगवान श्रीनाथजी के नाम पर अर्पण कर दिया। यह कहा जाता है कि इसकी आज्ञा के सिवा [illegible] नाथद्वारे को [illegible]। [illegible] उस भेंट के रूप में लिया जाता है। विजय के बाद [illegible] जालिमसिंह के विरोधी [illegible] [illegible]।[३] महाराव [illegible]

१ टाड [illegible]

२ [illegible] कहा जाता है कि [illegible] पृथ्वीसिंह [illegible] टाड [illegible] मर गया। [illegible]

३ [illegible]

गई और उन्हे पुन उनकी जागीरें दे दी गईं। हाडो ने इसे स्वीकार किया और वे अपनी २ जागीरो मे चले गये। महाराव किशोरसिंह और जालिमसिंह झाला के बीच मे समझौता कराने का कार्य उदयपुर के महाराणा भीमसिंह ने किया था[1]। यह समझौता २२ नवम्बर १८२१ मे हुआ। इस समझौते के अनुसार महाराव का खास खर्च महाराणा उदयपुर के बराबर कर दिया गया और महाराव के निजी कामो मे दिवान और दिवान के रियासती कामो मे महाराव का हस्तक्षेप नही करने का समझौता हुआ[2]। महाराव कर्नल टाड के साथ पोष वदि ६ ता० ३१ दिसम्बर को वापस कोटा आया[3]। इसके २ वर्ष बाद वि० स० १८८० ज्येष्ठ सुदि ८ (ई० स० १८२४ ता० १५ जून) को ८५ वर्ष की आयु मे मुसाहिब जालिमसिंह का स्वर्गवास हुआ और उसका पुत्र माधोसिंह झाला राज्य का दीवान व फौजदार बना। यह अपने पिता के काल मे ही कोटा राज्य का सब प्रकार का प्रबंध करता था परन्तु महाराव से जो पिछली नाराजगी हुई उस विषय मे जालिमसिंह ने माधोसिंह को बहुत झिडकियां दी और कहा कि यह सब उपद्रव तेरी खराब आदतो के कारण हुआ है। इसी शर्म से माधोसिंह ने अपनी आयुभर महाराव को हर प्रकार से प्रसन्न रखा[4]। वि०स० १८२४ आषाढ सुदि ८ (ई० स० १८२८ ता २२ अगस्त) को महाराव किशोरसिंह भी परलोक सिधारे। उसके कोई पुत्र नही था। असली हकदार उसका छोटा भाई अणता का महाराज विष्णुसिंह था पर महाराव ने अपने तीसरे भाई महाराज पृथ्वीसिंह के पुत्र रामसिंह को युवराज बनाया, अत रामसिंह ही उत्तराधिकारी हुआ। इसका एक यह भी कारण था कि विष्णुसिंह ने फौजदार जालिमसिंह झाला का पक्ष लिया था[5]।

---

१ भीमसिंह किशोरसिंह की बहन से शादी कर चुका था, अत ऐसी अवस्था मे मध्यस्थ बनना पडा।

२ टाड जिल्द ३, पृ० १६०६।

३ महाराव इस विश्वास पर कोटा पुन लौटा कि उसके प्रति विश्वासघात न हो और अंग्रेजी सरकार इस बात की जिम्मेदारी ले।

४ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ५८०।

५ जालिमसिंह का चरित्र —

१८ वी शताब्दी के अन्तिम चरण और १९ वी शताब्दी के प्रथम चरण मे राजपूताने के प्रमुख राजनीतिज्ञ के रूप मे जालिमसिंह झाला हमारे समक्ष उपस्थित होता है। उसने अपनी योग्यता, नीतिज्ञता, वीरता और क्षमता के बल पर ही यह उच्च पद प्राप्त किया। वह उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ था। कोटा के महारावो के प्रति भक्त होते हुए भी वह अपनी स्थिति मजबूत बनाये रखना चाहता था। एक ही बार होल्कर और अंग्रेजो मे (जो

की हुई गुप्त सधि (मार्च १८२१) के अनुसार मुसाहिव पद पर माधोसिंह का पुत्र मदनसिंह नियुक्त किया गया। प्रारम्भ मे तो दोनो युवक शासनकर्ताओ मे वनी रही परन्तु धीरे २ दोनो की शत्रुता इतनी वढ गई कि कोटा का विभाजन करना पडा।

मदनसिंह जब किले मे प्रवेश करता तो महाराव की तरह तोपें दगवाता था। यह इज्जत शक्ति का प्रदर्शन समझी जाती थी। ऐसी ही कई हरकतो से[1] महाराव और उसमे गहरी अनवन हो गई। कोटा की प्रजा झाला मदनसिंह मुसाहिव आला को नही चाहती थी। आम विद्रोह होने का भय हो गया। ऐसी अवस्था मे अग्रेजी सरकार ने मध्यस्थता द्वारा प्रधान मत्री व शासक के बीच समझौता करा दिया जिससे मदनसिंह झाला को कोटा की पैतृक मुसाहिवी से त्याग पत्र देना पडा। उसके स्थान पर उसे कोटा राज्य की एक तिहाई आमदनी का भाग दिया गया। इस प्रदेश में १७ परगने थे और वार्षिक आमदनी १२ लाख रु. थी[2]। अग्रेजी सरकार ने मदनसिंह झाला से एक प्रथम सन्धि करली जिसके अनुसार इस भाग (जिसका नाम झालावाड रखा गया) का स्वतंत्र शासक मदनसिंह झाला को स्वीकार कर लिया गया[3]। कोटा की खिराज मे से ८० हजार रु. सालाना घटा कर झालावाड की तरफ जोडे गये। एक नयी सरकारी

---

१ मदनसिंह झाला की कई अन्य हरकतो को महाराव पसन्द नही करते थे। मदनसिंह स्वभाव से ही उदण्ड, असहनशील, शीघ्रगामी और स्वतत्र प्रकृति का था। रामसिंह की आज्ञाओ का वह पालन नही करने लगा। गढ मे उसका जन्म-दिवस धूमधाम से मनाया जाता था। राजाज्ञाओ पर नरेशो की तरह उसका नाम भी लिखा जाने लगा, अग्रेजी राज्य की पूर्ण शक्ति झाला के पीछे होने पर महाराव सिर्फ नाम मात्र के शासक थे। अत महाराव उससे अधिक नाराज हो गये। मदनसिंह ने अग्रेजों से कोटा कान्टीनजेन्ट का निर्माण कोण कोप से कर दिया। यह भी अनवन का एक कारण था।

२ उन परगनो में चौमहला व शाहवाद के परगने झाला जालिमसिंह ने कोटा राज्य मे मिलाए थे। इनकी आमदनी पाच लाख ही थी। परन्तु मदनसिंह ने १७ परगने लिए व १२ लाख के स्थान पर १७ लाख की आय के परगने लिये। चेचट, सकेत, आवर, डग, गगराड, झालरापाटन, गंधवा, वफानी, वाहलनपुर, कोटडा, भाजन, सरडा, रटलाई, मनोहरपाना, फूलवडादे, चाचोरोनी, गु जारी, छीपावडोद, शाहवाद। डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास २, पृ० ५९६।

३ इस राज्य की निर्माण तिथि वैसाख शुक्ला ३, सम्वत् १८९४ (सन् १८३७) की है। इसके नरेशो को राजराणा की उपाधि से विभूषित किया जाता है जो कि झाला जालिमसिंह को महाराणा उदयपुर श्री अरिसिंह ने उसके प्रति की गई सेवाओ के वदले दी थी। झालावाड को छावनी या वृजनगर भी कहा जाता है।

फौज कोटा के लिये तैयार की गई। उसका खर्च ३ लाख रु वार्षिक कोटा से लिया जाना तय हुआ। महाराव रामसिंह ने जब इसका कड़ा विरोध किया तो सं० १९०० (ई स १८४३) में यह रकम घटा कर २ लाख रु. करदी गई। यह सेना कोटा कान्टिन्जेंट कहलाती थी और इसका मुख्य स्थान छावनी कोटा से एक मील दूरी पर रामचन्द्रपुरा नामक गाँव में रखा गया।

सम्वत १९१४ (सन् १८५७ की मई १०) को उत्तरी भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। उस समय नीमच में भारतीय सैनिकों के विद्रोह का भय था। तब मेवाड़ कोटा और बूंदी राज्यों की सेनायें वहां पर अंग्रेजी सरकार की सहायता के लिये पहुँचो। हाड़ोती का पोलिटिकल एजेन्ट मेजर बर्टन भी कोटा से सेना लेकर नीमच पहुँचा। नीमच के विद्रोहियों को दबा कर तीन सप्ताह बाद १२ अक्टूबर १८५७ को कोटा लौटा। अपना कुटुम्ब नीमच के अंग्रेजों के भरोसे छोड़ कर महाराव से मिलने आया। १३ अक्टूबर को बर्टन की महाराव से मुलाकात हुई जिसमें कोटा विद्रोही सामंतों व व्यक्तियों को दण्ड देने (मृत्यु दण्ड या निर्वासित) का आदेश महाराव को दिया गया। जब सामंतों को यह मालूम हुआ तो वे और उनके सिपाही अंग्रेजी सत्ता के विद्रोही होकर रेजिडेन्सी हॉस्पीटल पर हमला कर बैठे। सर्जन सेडलर और डाक्टर सविल मार डाले गए। फिर रेजिडन्सी पर हमला कर मेजर बर्टन और उसके दो पुत्रों को जो उसके साथ थे तलवार के घाट उतार दिये गये[1]। राजकीय सेना के नायक जयदयाल और महराबखाँ ने विद्रोहियों से मिल कर महाराव रामसिंह को भी कैद कर लिया। कोटा महाराव ने ऐसी स्थिति में गुप्त रूप से पत्र भेज कर[2] करौली राज्य से सहायता प्राप्त की[3]। करौली की सेना ने पहुँच कर विद्रोही सेना से महाराव को मुक्त कराया। किला महल व आसे

---

१ विस्तृत विवरण के लिये केनी—कोरेन्ज हिस्ट्री ऑफ दी इण्डियन म्यूटिनी जिल्द ३ पृ ५५५ ५५६।

२ गुप्त रूप से महाराणा खरीता भेज कर भिन्न-भिन्न स्थानों से सहायता मंगवाता था। एक खरीता जयदयाल के हाथ पड़ गया जिससे उसके सैनिकों का बुरा हाल किया। कई ठाकुरों ने विशेष कर भतरोड़ पैथा पीपल्दा आदि ठाकुरों ने गुप्त रूप से महाराणा के पास सैनिक भेजने शुरू किये जो लगभग १५ तक पहुँच गये थे। अंग्रेजी सरकार को सहायता के लिये खरीते लिखे गये। यह कार्य नारायणराव दक्षिणी को सौंपा गया।

३ करौली के महाराजा मदनसिंह रामसिंह के समधी थे। रामसिंह के पुत्र भव दास की शादी करौली राजकुमारी से हुई थी। यह सम्बन्ध इस समय काम में आया। लगभग १५ सैनिक महाराजा ने भेजे थे। इनके नायक ठाकुर मानकचन्दजी और हिम्मतरामजी थे।

शहर और नदी के घाट पुन महाराव के अधिकार मे आ गए[1]। इसी बीच मे नसीराबाद की अग्रेजी छावनी से अग्रेजी सेना लेकर राबर्ट ता० २२ मार्च १८५८ को कोटा पहुँचा। करौली और अग्रेजी सेना ने मिल कर कोटा विद्रोहियो के विरुद्ध २९ मार्च से गोलाबारी शुरू करदी। विद्रोही कोटा छोड कर भाग गए। उनकी ५० तोपें छीन ली गई[2]। महाराव के राज्य मे पूरा अधिकार और शान्ति स्थापित कर अग्रेजी सेना वापिस नसीराबाद चली गई।

अग्रेज सरकार ने यद्यपि महाराव रामसिंह को निर्दोष समझा[3]। परन्तु उन्होने विद्रोह को मिटाने और सरकारी अफसरो को बचाने की पूरी कोशिश नही की थी इसलिये सरकार ने अप्रसन्न होकर महाराव की सलामी के लिये १७ तोपो के स्थान पर घटा कर १३ तोपें करदी[4]। सम्वत् १९२३ मे अन्य नरेशो की तरह इसे भी गोद लेने की सनद अग्रेजी सरकार द्वारा प्राप्त हुई। इसकी मृत्यु के कुछ वर्ष पहले ही कोटा का राज्य-प्रबध बिगड चला था और मनमानी करने वाले मेमियो की कार्यवाहियो से राज्य पर २७ लाख रुपयो का कर्ज बढ गया था।

३८ वर्ष राज्य करके ६४ वर्ष की आयु मे सम्वत् १९२३ चैत्र सुदि ११ (ई० स० १८६६, २७ मार्च) को महाराव रामसिंह का स्वर्गवास हुआ। इसकी एक शादी उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह की बहिन से हुई थी। ऐसे समय मे महाराणा ने इससे यह शर्त लिखवाई थी कि उदयपुरी रानी से उत्पन्न

---

१ कहा जाता है, महाराव ने विद्रोहियो से सुलह करनी चाही। कुछ दिनो के लिये अल्पकालीन शान्ति रही। इस शान्ति की सुलह कराने का श्रेय मथुरेशजी के मन्दिर के गुसाई कन्हैयालाल को दिया जाता है।

२ विद्रोहियो के नेता मोहम्मदखा, अम्बरखा, गुलमुहम्मदखा युद्ध मे मारे गये। पकडे हुये कैदियो के सिर कटवा दिये गये और नदीशेख आदि को तोप से उडा दिया गया।

३ सन् १८५७ मे अग्रेज सरकार का कोटा नरेश के नाम एक खरीता आया जिसमे गदर की शान्ति के लिये उनको बधाई दी गई। डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, पृ० ६२८।

४ विद्रोह के बाद कोटा राज्य मे परिणाम —

(1) विद्रोही नेता मेहरावखा और लाला जयदयाल पकडे गये तथा उन्हें ऐजन्टी बगले के पास फासी दी गई। (11) रामसिंह को मेजर बर्टन की विद्रोहियो द्वारा हत्या को न रुकवाने के कारण उसकी सलामी की तोपें १७ से १३ करदी। (111) मेजर बर्टन का स्मारक राजकीय कोष से बनवाया गया। (1V) शहर का व्यापार नष्ट हो गया, राज्य को आर्थिक क्षति पहुँची। चोरियो व डकैतियो का राज्य कायम हो गया। (V) शहर पर महाराव का प्रभाव हो गया, पर सुदूर गावो मे विद्रोहियों का ही कई वर्ष तक हुक्म बना रहा। उपरोक्त पृ० ६२९-६३०।

पुत्र ही चाहे वह छोटा हो राज्याधिकारी होगा उदयपुर की राजकुमारी की प्रतिष्ठा सब रानियों से बढ़ कर रहे उदयपुर की राजकुमारी को १०,०००) रु० सालाना आमदनी की जागीर अलग मिले तथा उदयपुर की राजकुमारी की ड्योढ़ी या मोहरे में कोई अपराधी शरण लेवे वह सजा से बचाया जावे। ये शर्तें महाराणा ने एजेन्ट गवर्नरजनरल राजपूताना के पास स्वीकृति के लिए भेजी लेकिन उक्त साहब ने प्रथम शर्त के सिवाय सब शर्तों को मंजूर करके कहा कि यह पहली शर्त महाराणा अमरसिंह द्वितीय तथा जगतसिंह द्वितीय के समय में तय हुई थी[1]। उसका फल अच्छा नहीं निकला क्योंकि किसी दूसरी रानी से उत्पन्न हुआ ज्येष्ठ पुत्र हो तो भी वह राज्य से वंचित रहे तो झगड़े की संभावना होती है। इससे राजपूतों में पहले भी फूट पड़ गई थी और मरहठों को शक्ति बढ़ कर राजपूताना को विनाश की ओर ले गयी। अंग्रेजी सरकार ऐसे झगड़ों की जड़ कायम करना नहीं चाहती थी। अतः यह शर्तें अस्वीकृत की गई।

महाराव शत्रुशाल (वि० सं० १९२१ १९४६)
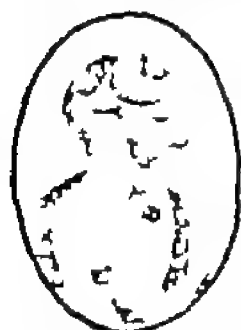
रामसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका गोद लिया हुआ पुत्र भीमसिंह गद्दी पर बैठा। वि० सं० १९२३ चैत्र सुदि १ (ई० स० १८६६)। बाद में इसका नाम बदल कर शत्रुशाल रख दिया गया। इसकी सलामी की तोपें अंग्रेजी सरकार ने पुनः १७ कर दीं। पहले तो इसने राज्य का सुप्रबन्ध किया परन्तु बाद में कुसंगत और मदिरापान के कारण शासन कार्य में उदासीनता आने लगा। परिणाम स्वरूप शासन का प्रबन्ध बिगड़ गया। लूट-मार और रिश्वत का बाजार गर्म हो गया। व्यापारियों और सौदागरों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। हर जगह हर बहाने से कुछ न कुछ महसूल ले लिया जाता था। अदालतों में न्याय नहीं होता था[2]। अच्छे कर्मचारी तो हटा दिये गये। जिससे महाराणा [illegible]

१ महाराणा अमरसिंह द्वितीय की बहिन की शादी सवाई जयसिंह से हुई। उस समय तय हुआ कि [illegible] से ही उत्पन्न हुआ पुत्र राज्य [illegible] [illegible]। [illegible] जयसिंह की मृत्यु के बाद (ई० स० १७४३) [illegible] [illegible] के पुत्र माधोसिंह [illegible] [illegible] राजपूताने में [illegible] [illegible]।

२ [illegible]।

पटेली दी गई[1] । कोटा राज्य आर्थिक सकट से गुजर रहा था । अग्रेजी सरकार का खिराज, फौज खर्च, सन् १८५७ के विद्रोह को दबाने का खर्च, उससे अस्त-व्यस्त आयकर, भालावाड का निर्माण। अत आमदनी के क्षेत्र की कमी आदि स्थितियो ने कोटा की आर्थिक दुर्दशा को और भयंकर वना दिया था। राज्य का कर्जा बढ गया जो ९० लाख तक पहुँच गया[2] । अयोग्य मनुष्यो के हाथ मे शासन का उत्तरदायित्व होने से प्रजा पर अत्याचार होने लगे । राज्य के परगने ठेके पर दिये जाते थे। अग्रेजी सरकार ने वार-वार शत्रुशाल को शासन-प्रबध ठीक करने के लिये समझाया परन्तु उसने प्रभावशाली व्यक्तियो से मुक्ति नही पाई। अन्त मे शत्रुशाल ने अग्रेजो सरकार को एक सुयोग्य प्रवन्धकर्ता को कोटा भेजने की प्रार्थना की। अग्रेजी सरकार ने मुसाहिव के पद पर नवाव फैज-अलीखा को नियुक्त किया।

नवाव फैजअलीखा प्रवन्धक के रूप मे अक्टूबर १८७४ (सम्वत १९३०) के आसोज मे कोटा आया[3] । नवाव ने आय-वृद्धि की ओर सर्वप्रथम ध्यान दिया। खजाने मे उस समय ६३२२७ रु. ही जमा थे और कर्जा ९० लाख रुपये का था। ऊपर से दुर्भिक्ष, भारी कर से किसान तग आ चुके थे। राज के नौकरो को तनख्वाह कई मास से नही मिली थी। खर्च का कोई हिसाब नही था। नवाब साहिव ने आज्ञा दी कि स्वीकृत चालू खर्च के सिवाय जिलेदार और कुछ खर्च न करें और यदि ऐसा हुआ तो वसूली उसी कर्मचारी से ही की जायेगी। वाद में चालू खर्च की भी स्वीकृति लेनी पडने लगी। प्रति मास कर्मचारियो को वेतन देने की व्यवस्था की गई। वकाया लगान की किश्तो को वसूल किया गया और व्याज सहित राजकोष मे जमा करने की आज्ञा दी गई। कर-सग्रह का कार्य जिलेदार को सुपुर्द कर दिया गया। भिन्न २ विभागो से वसूली करने का काम हटा दिया गया। नजराना के एक लाख रुपये जो वकाया

---

१ नजराना ८ आ० प्रति बीघे के हिसाब से लिया जाता था। डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, ६४०।

२ सम्वत १९०३ (सन १८४६) के आसपास राज्य की यह स्थिति थी। शत्रुशाल के समय राज्य की आय २१ लाख रुपये थी जिसमे १४ लाख लगभग तोपखाना, मामलात और कर्ज की किश्तों तथा काज में खर्च होता था। उपरोक्त, पृ० ६५४-५५।

३ मदनसिंह झाला जव कोटा का मुसाहिव न रहा तो महाराव रामसिंह ने पाडे गोपाल को मुसाहिव का पद दिया पर वह सफलतापूर्वक कार्य न कर सका। शत्रुशाल ने गणेशलाल वीजा को मुसाहिव पद दिया। आर्थिक स्थिति को सुधारने का कार्य वीजा से न हो सका अत नवाव फैजअली बुलाया गया। यह पहले जयपुर का एक मन्त्री रह चुका था। अग्रेजी सरकार ने इसे ९ तोपों की सलामी दी तथा इस पर चवर ढूलता था।

थे भूमि-कर के कई वर्षों के जो रु० बाकी थे, राज्य कभी-कभी तकावी ऋण देता था वे भी वापिस न आये थे। इस्तमरारदार व जागीरदार कर तो पूर्णतया बाकी थे। जिलेदारों को इन बकाया रुपयों को शीघ्र तथा सख्ती से प्राप्त कर हिसाब पेश करने की आज्ञा दी गई। एक बकाया महकमा अलग स्थापित किया गया। सरकारी बचत के लिये टप्पण की कचहरी[1] तोड़दी और लोगे की आमदनी सीधी राज्य-कोष में जमा करनी शुरू की। गुप्त हरकारे जो राज्य के लिये सूचना इकट्ठी करते थे घूस रिश्वत लेते और आतंक जमा बैठे थे यह आज्ञा निकाल दी गई कि लोग इन्हें घूस न दें। न हरकारे घूस लें। अन्यथा कठोर दण्ड दिया जायेगा[2]।

नवाब ने कुछ अन्य महत्वपूर्ण सुधार कर कोटा राज्य की स्थिति में प्रगति करनी चाही। सम्वत् १९३० में डाकखाने का प्रबन्ध किया गया। तोल पर डाक महसूल लिया जाता था जो एक आना तोला था। सरकारी व कामिगत डाक की भिन्न २ व्यवस्था की गई। प्रत्येक जिले को गजेटियर बनाया गया[3]। मुकाता प्रथा को व्यवस्थित कर दिया गया। वार्षिक कर तीन किस्तों में लिया जाता था। जिला प्रबन्ध में भी सुधार किया गया। कोटा राज्य ८ निजामतों में बांटा गया। प्रत्येक निजामत पर एक नाजिम होता था जिसकी आमदनी ८० रु० थी। प्रत्येक निजामत में दो तहसीलें होती थीं। तहसीलदार को ३० रु० मासिक वेतन दिया जाता था। इसके अलावा खर्च पर नियन्त्रण करने के लिये प्रत्येक विभाग का बजट तयार किया गया। वि० स० १९३१ में लड़के व लड़कियों के स्कूल जारी किये गये जहां अंग्रेजी हिन्दी व फारसी पढ़ाई जाती थी[4]। शिक्षा पर कुल खर्च ३७६ रु० होता था[5]। पहला सुव्यवस्थित अस्पताल कोटा में सम्वत् १९३१ में खोला गया और नगर सफाई के प्रबन्ध के लिये एक अलग कर्मचारी नियत किया गया। राजधानी में सड़कों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। अठ सड़क

---

१ सरकारी कार्य के लिये आना जाने वाली के दैनिक खर्च का हिसाब रखने वाली कचहरी थी। यह दैनिक खर्च जिसके यहां कर्मचारी जाता था देता था। कर्मचारी यहां जाना जाने की जाता और पैसे की नकल। यह पैसे इस कचहरी में जमा होते थे जिन्हें पैसी आमदनी कहते थे।

२ गुप्त हरकारा प्रथा मुसाहिब आलिमसिंह ने स्थापित की थी।

३ यह गजेटियर सिर्फ जनगणना तक ही आधारित थे—गांव के सभी पुरुष बाल-बच्चे कुए, बावड़ी पक्के मकान खेती की भूमि मन्दिर, मस्जिद आदि पर यह योजना सफल नहीं हो सकी।

४ अध्यापिकाओं और अध्यापकों का वेतन १० रु० मासिक होता था।

५ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास पृ० ६६६।

इमारत विभाग स्थापित किया गया। उर्दू भाषा राज्य की भाषा बनाई गई। जालिमसिंह के भूमि-प्रबन्ध मे भी सुधार किये गये। पुन जमीन की पैमाइश हुई तथा लगान नियत किया गया। इस कार्य के लिये सम्वत् १९३१ मे २४०० रु बजट मे रखे गये थे[1]।

नबाब फैजअलीखा दो वर्ष तक ही कार्य कर सका। महाराव से उसकी बनती नही थी[2]। अत स० १९३३ (सन् १८७६ की १ दिसम्बर) को इस्तीफा देकर नवाब चला गया। अग्रेजी सरकार ने शासन भार स्थानीय राजनैतिक ऐजेन्ट को सौंप दिया। नबाब ने सम्वत् १९३१ मे ३ सदस्यो की एक कौंसिल का निर्माण किया था[3]। यह न्याय सम्बन्धी कार्य की देखरेख भी करती थी। एजेन्ट की एक सलाहकार समिति के रूप मे इसका विकास हुआ। यह कौंसिल सम्वत् १९५३ तक कार्य करती रही। एजेन्ट कर्नल बेन्ती के तत्वावधान मे कौंसिल ने कोटा राज्य के शासन मे सुधार करने की कोशिश की। इस कौंसिल ने कोटा को ऋण-मुक्त कराया। नवाब फैजअली के समय ९० लाख रुपये ऋण मे थे। परन्तु बोहरो से ऋण की विगत मागी गई तो ४७ लाख रु. ही निकले[4]। इस कौंसिल ने अपने अन्तिम समय मे बर्खास्त होने से पहले राज-कोष मे १७ लाख रु बचाया था। यह सब बचत जनहित कार्य के कामो मे खर्च करने के बाद बची थी। नबाब ने जालिमसिंह के भूमि-प्रबन्ध मे सुधार करने का प्रयास किया पर अपने सुधारो को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के पहले ही वह इस्तीफा देकर चला गया। इस पर कौन्सिल ने वह कार्य पूरा किया। कौन्सिल में कर्नल पोलिट ने यह कार्य मुन्शी दुर्गाप्रसाद को सौंपा जिसने सम्वत् १९३३ मे कार्य प्रारम्भ किया और सम्वत् १९४३ को कार्य समाप्त किया। प्रत्येक बीघे

---

१ उपरोक्त पृ० ६७०।

२ महाराव नवाब की नियुक्ति से पसन्द नही था क्योंकि अग्रेजी सरकार ने इस मुसाहिब आला को जो सम्मान व पद दे रखे थे वे महाराव को अच्छे नही लगते थे। कहा जाता है कि प्रथम दिन के मिलन से ही महाराव नवाब से अलग रहने लगा और गढ मे उसके प्रवेश करने पर उसकी सलामी मे तोपें नही दगवाई थी। अग्रेजो के दबाव मे आकर महाराव ने इस प्रबन्धक को स्वीकार किया था परन्तु जब नवाब ने सम्वत १९३३ में झालावाड के राजराणा पृथ्वीसिंह की मृत्यु पर कोटा मे झालावाड मिलाने का प्रयास किया तो रावराजा उससे पूर्ण अप्रसन्न हो गया।

३ प्रथम तीन सदस्य पलायथ के आप श्री अमरसिंह, राजगढ़ के आप श्री कृष्णसिंह और प० श्री रामदयालजी। डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, पृ० ६७२।

४ कुछ इतिहासकारो का मत है कि ऋण तो ९० लाख रु ही था पर बोहरो को चुकाने के लिये ९ या १० आना रुपये मे से ही पैसे दिये गये।

थे। भूमि-कर के कई वर्षों के जो रु० बाकी थे, राज्य कभी-कभी तकावी ऋण देता था वे भी वापिस न आये थे। टन्कीबराड व जागीरबराड कर तो पूर्णतया बाकी थे। जिलेदारों को इन बकाया रुपयों को शीघ्र तथा सख्ती से प्राप्त कर हिसाब पेश करने की आज्ञा दी गई। एक बकाया महकमा अलग स्थापित किया गया। सरकारी बचत के लिये टप्पण की कचहरी[1] तोड़दी और सोने की आमदनी सीधी राज्य-कोष में जमा करनी शुरू की। गुप्त हरकारे जो राज्य के लिये सूचना इकट्ठी करते थे, घूस रिश्वत लेते और आतंक जमा बैठे थे, यह आज्ञा निकाल दी गई कि लोग इन्हें घूस न दें। न हरकारे घूस लें। अन्यथा कठोर दण्ड दिया जायगा[2]।

नवाब ने कुछ अन्य महत्वपूर्ण सुधार कर कोटा राज्य की स्थिति में प्रगति करनी चाही। सम्वत् १९३० में डाकखाने का प्रबन्ध किया गया। तोल पर डाक महसूल लिया जाता था जो एक आना तोला था। सरकारी व कामिगत डाक की भिन्न २ व्यवस्था की गई। प्रत्येक जिले को गजेटियर बनाया गया[3]। मुकाता प्रथा को व्यवस्थित कर लिया गया। वार्षिक कर तीन किश्तों में लिया जाता था। जिला प्रबन्ध में भी सुधार किया गया। कोटा राज्य ८ निजामतों में बांटा गया। प्रत्येक निजामत पर एक नाजिम होता था जिसकी आमदनी ८० रु० थी। प्रत्येक निजामत में दो तहसीलें होती थी। तहसीलदार को ३० रु० मासिक वतन दिया जाता था। इसके अलावा खर्च पर नियन्त्रण करने के लिये प्रत्येक विभाग का बजट तयार किया गया। वि० सं० १९३१ में लड़के व लड़कियों के स्कूल जारी किये गये जहां अंग्रेजी, हिन्दी व फारसी पढ़ाई जाती थी[4]। शिक्षा पर कुल खर्च १७६० रु० होता था[5]। पहला सुव्यवस्थित अस्पताल कोटा में सम्वत् १९३१ में खोला गया और नगर सफाई के प्रबन्ध के लिये एक अलग कर्मचारी नियत किया गया। राजधानी में सड़कों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। अतः सड़क

१ सरकारी कार्य के लिये आने जाने वालों के दैनिक खर्च का हिसाब रखने वाली कचहरी थी। यह दैनिक खर्च जिसके यहां कर्मचारी जाता था वह देता था। कर्मचारी वहां खाना खाने की आज्ञा और पैसे भी लेता। यह पैसे इस कचहरी में जमा होते थे जिसे कि सीरी आमदनी कहते थे।

२ गुप्त हरकारे प्रथा मुसाहिब आलिमसिंह ने स्थापित की थी।

३ यह गजेटियर सिर्फ जनगणना तक ही आधारित थे—गांव के रूपी कुएं आम-बगीचे कुए, बावड़ी, पक्के मकान, मिट्टी की भूमि, मन्दिर, मस्जिद आदि पर यह योजना सफल नहीं हो सकी।

४ अध्यापिकाओं और अध्यापकों का वेतन [illegible] रु० मासिक होता था।

५ डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास पृ० ६६६।

के नियम बनाये। अंग्रेजी सरकार का सिक्का जारी होने के बाद कोटा की टकसाल बन्द करदी गई। शिक्षा की उन्नति के लिये सम्वत् १९५० मे शिक्षा का बजट २० हजार तक बढ गया और प्रत्येक व्यापारिक केन्द्र पर एक-एक स्कूल खोला गया। अजमेर के मेयो कालेज मे एक छात्रालय कोटा राज्य की ओर से निर्मित हुआ और कालेज को आर्थिक सहायता दी गई। प्रजा की सेहत के लिये तहसीलो मे अस्पताल खोले गये[1]।

इस प्रकार कौन्सिल की सरक्षता मे कोटा राज्य ने उन्नति की। महाराव शत्रुशाल ने अपना राज्य-प्रबन्ध अंग्रेजी सत्ता पर छोड कर ऐश्वर्य मे जीवन व्यतीत किया। इसके कोई सन्तान नही थी। वह सदा बीमार रहता था। अत अपने जीवन-काल मे ही उसने अपना कोई पुत्र नही होने के कारण, कोटडा के जागीरदार महाराज छगनसिह के दूसरे पुत्र उदयसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया। इसकी मृत्यु ज्येष्ठ सुदि १३, सम्वत् १९४६ (ई० सन् १८८९ ता० ११ जून) को हुई[2]।

महाराव उम्मेदसिंह (वि० स० १९४६-१९९७)

महाराव शत्रुशाल के कोई सन्तान न होने से कोटडे के जागीरदार का पुत्र भीमसिंह गोद लिया गया[3]। राज्याभिषेक के समय इसका नाम बदल कर उम्मेदसिंह रखा गया। इसका जन्म स० १९३० भादवा सुदि १३ शुक्रवार (सन् १८७३ ता० ५ सितम्बर) को हुआ। राज्याभिषेक १६ वर्ष की आयु मे ही जेष्ठ सुदि १३ स १९४६ (सन् १८८९ को ११ जून) को ही हो गया था

---

१ उपरोक्त, पृ० ६७९-६९६।

२ कहते हैं इसको मारने के लिये कुछ कामियों ने जहर दे दिया था। इस सम्बन्ध मे धाय भाय घोसा और वैद्य रामचन्द्र गिरफ्तार कर लिये गये। वैद्यराज की मृत्यु तो जेल मे ही हो गई। परन्तु इस सम्बन्ध मे कोई पर्याप्त प्रमाण नही मिले हैं।

३ कुछ इतिहासकार इनका आदि नाम उदयसिंह भी कहते हैं किशोरसिंह
विशनसिंह (अन्ता के जागीरदार, दक्षिण मे पिता के साथ न जाने कारण गद्दी मे वचित)
धनसिंह (पाचवां पौत्र, विशनखेडी का जागीरदार)
छगनसिंह (कोटडे का जागीरदार)
उदयसिंह या भीमसिंह या उम्मेदसिंह

का नाप सब स्थान पर एक सा कर दिया। सैकड़ों प्रकार की डोरियां समाप्त करके केवल ११ प्रकार की रहने दीं जिनका नाप १३० फिट ५ इंच से १४१ फिट ८ इंच तक रखा[1]। इससे राज्य के १ वर्ष में ४ लाख रु खर्च हुये। और १ लाख रु की वार्षिक वृद्धि हुई। इसके अलावा कृषकों को कम ब्याज पर रुपये राज्य द्वारा देने तथा बीज देने की प्रथा भी जारी की गई। सिंचाई के लिये नहरों का निर्माण किया गया। पार्वती नहर अकलेरा का सागर, रामगढ़ की नहर आदि निर्मित हुई जिसमें संवत् १९५२ से साढ़े ११ हजार बीघे भूमि की सिंचाई होने लगी[2]।

कौंसिल द्वारा न्याय क्षेत्र में भी सुधार किये गये। सम्वत् १९३९ में औरतों को कोड़े लगाने बन्द किये गये। पुरुषों के कोड़े लगाने से पहले उनका डाक्टरी मुआयना किया जाता। कैदियों को राज्य की ओर से खुराक मिलने लगी। अन्य सुधारों में जगात विभाग में सुधार किया गया। राज्य के अन्दर एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाने पर जो महसूल लिया जाता था वह सम्वत् १९३५ में बन्द कर दिया गया। सम्वत् १९४० में जगात विभाग और माल विभाग पृथक कर दिये गये। सम्वत् १९३३ में कौन्सिल ने जगत के ठेके देने के नियम बनाए और सम्वत् १९२३ में इसकी आय ३ हजार के ऊपर हो गई। कोटा में अफीम की खेती को कम कर दिया गया। पहले से सम्वत् १९५ में २२ % कम की गई। कोटा राज्य में नमक बनाने का कार्य जब भारत-सरकार ने ले लिया तब मुआवजा प्रति वर्ष १६ हजार रु दिया जाने लगा।

सम्वत् १९३७ में सेना का पुनः प्रबन्ध किया गया। सेना का खर्च चार लाख रु से ऊपर किया जाने लगा। नगर पुलिस व जिला पुलिस में सुधार करने के लिये सम्पूर्ण राज्य के तीन विभाग किये गये और प्रत्येक डिवीजन में एक उपाध्यक्ष पुलिस नियुक्त किया। कामेदार जो मालगुजारी वसूल करते थे वह कार्य उनसे अलग किया गया। कई अन्य प्रकार के नियम बनाए गये। जमीन छोड़ने बेचने व गिरवी रखने के नियम बने। माल विभाग में नये तरीके का प्रबन्ध किया गया। अध्यक्ष के नीचे दो उपाध्यक्ष रखे गये। एक कोटा में और दूसरा शेरगढ़ में जगात माल से अलग किया गया परन्तु पुनः शामिल कर दिया गया। पशु-बाड़े बने। खेतों का लगान नकद दिया जाने लगा। सम्वत् १९४७ में कौन्सिल ने राज्य-कर्मचारियों को पेन्शन

---

१ इसे हाथी वाला बन्दोबस्त भी कहते क्योंकि यह बन्दोबस्त मुन्शी देवीप्रसाद ने हाथी पर बैठ कर किया था। डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास भाग २, पृ० १६७।

२ उपरोक्त पृ० १७८-१७९।

रघुनाथदास माल विभाग का अध्यक्ष था। धीरे-धीरे अपनी योग्यता के कारण कौंसिल की सहायता प्राप्त की और सं० १९५३ मे इसे कोटा राज्य का दीवान बनाया। इस पद पर यह सम्वत् १९८० तक रहा जबकि इसका देहात हो गया। २७ वर्ष तक यह राज्य का दीवान रहा। मुन्शी शिवप्रताप महाराव का प्राइवेट सेक्रेटरी था। बाद मे इसे शिक्षा विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। राज्य-शासन मे दीवान इसकी सलाह लिया करता था। दीवान रघुनाथ का देहावसान हो जाने के बाद दीवान पद पर पलायथे के ठाकुर ओंकारसिंह को नियुक्त किया गया। आप ओंकारसिंह ने भी कोटा राज्य मे गढ कमेटी के सदस्य के रूप मे प्रारम्भ कर धीरे-धीरे माल विभाग के उपाध्यक्ष, गिराही महकमा (पुलिस विभाग) के अफसर व आइ जी. के रूप मे कार्य करने के बाद सेनाध्यक्ष और फिर दीवान का पद प्राप्त किया। यह पद ६ जनवरी १९४२ तक सभाला। महकमा खास का अन्य सदस्य राय बहादुर प० विशम्भर भी था। यह सर रघुनाथ का पुत्र था। परन्तु स० १९९२ मे इसने अस्वस्थता के कारण त्यागपत्र दे दिया। उसके स्थान पर स० १९३६ मे सरदार कान्हचन्द की नियुक्ति हुई।

महाराव उम्मेदसिंह ने पडौसी राज्यो से मित्रता की नीति अपनानी प्रारम्भ की। बून्दी के हाडा शासको से अनबन सन् १७०८ से चली आ रही थी[1]। इस वैमनष्य को दूर करने का प्रयास महाराव ने किया। स० १९८० (सन् १९२३) मे बून्दी के नरेश बीमार पडे। स्वास्थ्य-लाभ पूछने के लिये महाराव उम्मेदसिंह बून्दी गया। वर्षो की वैमनष्यता का अत हो गया और पुन हाडाओ मे मेलजोल व भाईचारा स्थापित हो गया। इसी प्रकार कोटा-जयपुर मे भी वैमनष्य था[2]। इस अनबन को दूर करने के लिये कोटा नरेश ने वैवाहिक सबध स्थापित किये। जयपुर के प्रसिद्ध ठिकाने ईशरदा के ठाकुर की बहिन से इसने विवाह कर लिया। जयपुर के राजा मानसिंह ईशरदा ठाकुर के कनिष्ट पुत्र थे[3]। कोटा

---

१ जाजव का युद्ध मार्च १७०८, औरगजेब की मृत्यु के बाद उसके बडे शाहजादा युवराज मुअज्जम और दक्षिण का सूबेदार शाहजादा आजम दिल्ली पर अधिकार के लिये लडे जिसमें मुअज्जम का पक्ष बून्दी वालो ने तथा आजम का पक्ष कोटा वाले हाडाओ ने लिया। जिसमे मुअज्जम की जीत हुई। बून्दी के राव बुद्धसिंह अर्थात मुअज्जम से कोटा प्राप्त करने का फरमान ले लिया।

२ सन् १७६१ के मरवाहा के युद्ध मे कोटा से जयपुर हार गया। तब से दोनो राज्यो में अनबन बढती रही।

३ महाराव के ३ विवाह हुए। पहला विवाह उदयपुर महाराणा फतहसिंह की पुत्री नन्दकुवर के साथ सन् १८९२ में हुआ। परन्तु वह प्रसव-वेदना से १८९५ मे मर गई। दूसरा विवाह कच्छ के महाराव की पुत्री से हुआ जिसकी सन् १९२३ मे मृत्यु हो गई तीसरी शादी ईशरदा ठिकाणा के ठाकुर की बहिन से किया। इसके एक पुत्र भीमसिंह है।

परन्तु नाबालिग होने के कारण राज्य-कार्य कौन्सिल के हाथ में रहा। राजकाज के अधिकार इसे वि० सं० १९४९ को पौष सुदि २ बुधवार (ई० सन् १८९२ ता० २१ दिसम्बर) को दिये गये[1]। और सं० १९५३ में कौन्सिल की समाप्ति कर कोटा राज्य के शासन का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व इसने अपने ऊपर ले लिया। इसकी शिक्षा मेयो कालेज अजमेर में हुई थी।

शासन कार्य प्रारम्भ करते समय इसने जन-कल्याण की प्रथम घोषणा की। पूर्ण शासन प्राप्ति के दिवस 'क्रोस्तवेट इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की जो कि एक सार्वजनिक पुस्तकालय खेल-कूद के मैदान के रूप में स्थापित हुआ[2]। कालांतर में शासन-कार्य से प्रसन्न होकर समय २ पर अंग्रेजी सरकार इसे अपनी पदवियों से सुशोभित कर इसका अपनी सरकार की सेवाओं का आदर करती रही। सं० १९५७ (ई० सन् १९००) में इसे के० सी० एस० आई० की पदवी दी गई[3]। जून १९०७ को जी० सी० आई० ई०[4] और १ जनवरी १९१८ को जी० बी० ई०[5] की उच्च पदवियां दी गईं। सन् १९११ में सम्राट एडवर्ड सप्तम ने इसे देहली रेजीमेंट का आनरेरी मेजर नियुक्त किया और सन् १९१४ में आनरेरी लेफ्टीनेंट कर्नल बनाया। शिक्षा के क्षेत्र में समय २ पर दान-दक्षिणा देने की प्रथा कोटा में महाराव उम्मेदसिंह ने शुरू की। काशी विश्व विद्यालय की स्थापना के समय इसने मदनमोहन मालवीयजी को डेढ़ लाख रु० दिया। और दिल्ली की लेडी हार्डिंग मेडीकल कालेज को १ लाख रु० दिये। सन् १९२७ में काशी विश्व विद्यालय ने महाराव उम्मेदसिंह को एल० एल० डी० की उपाधि दी।

महाराव उम्मेदसिंह का शासन-काल सुधार और प्रगति का शासन-काल था। यह अन्य रियासतों से मित्रता प्रेमभाव तथा सहयोग की नीति का अनुसरण करता था। जनता के सुख और उन्नति के मार्ग की बाधाओं को दूर करने की नीति इसने अपनाई थी। इसके शासन-कार्यों में मुख्य सलाहकार चौबे रघुनाथदास सी० एस० आई० और मुंशी शिवप्रताप थे। कौन्सिल के कार्य-काल में

---

1. इस समय इसे सेना, कोर्ट रिवार्ड, पुण्य विभाग और महलों के प्रबंध का अधिकार दिया गया।

2. यह संस्था कोटा निवासियों की भाषा में गारवर है। १ नवम्बर १८९६ में राजनैतिक प्रतिनिधि सर चार्ल्स क्रोस्तवेट महाराव को पूर्ण शासन भार सौंपने को आया। उसकी स्मृति में यह संस्था स्थापित की।

3. नाइट कमाण्डर स्टार आफ इण्डिया।

4. नाइट ग्राण्ड कमाण्डर आफ इण्डियन एम्पायर।

5. [illegible]

रघुनाथदास माल विभाग का अध्यक्ष था। धीरे-धीरे अपनी योग्यता के कारण कौंसिल की सहायता प्राप्त की और सं० १९५३ मे इसे कोटा राज्य का दीवान बनाया। इस पद पर यह सम्वत् १९८० तक रहा जबकि इसका देहात हो गया। २७ वर्ष तक यह राज्य का दीवान रहा। मुन्शी शिवप्रताप महाराव का प्राइवेट सेक्रेटरी था। बाद मे इसे शिक्षा विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। राज्य-शासन मे दीवान इसकी सलाह लिया करता था। दीवान रघुनाथ का देहावसान हो जाने के बाद दीवान पद पर पलायथे के ठाकुर ओंकारसिंह को नियुक्त किया गया। आप ओंकारसिंह ने भी कोटा राज्य मे गढ कमेटी के सदस्य के रूप मे प्रारम्भ कर धीरे-धीरे माल विभाग के उपाध्यक्ष, गिराही महकमा (पुलिस विभाग) के अफसर व आइ जी. के रूप मे कार्य करने के बाद सेनाध्यक्ष और फिर दीवान का पद प्राप्त किया। यह पद ६ जनवरी १९४२ तक सभाला। महकमा खास का अन्य सदस्य राय बहादुर प० विशम्भर भी था। यह सर रघुनाथ का पुत्र था। परन्तु स० १९९२ मे इसने अस्वस्थता के कारण त्यागपत्र दे दिया। उसके स्थान पर स० १९३६ मे सरदार कान्हचन्द की नियुक्ति हुई।

महाराव उम्मेदसिंह ने पडौसी राज्यो से मित्रता की नीति अपनानी प्रारम्भ की। बून्दी के हाडा शासको से अनबन सन् १७०८ से चली आ रही थी[1]। इस वैमनष्य को दूर करने का प्रयास महाराव ने किया। स० १९८० (सन् १९२३) मे बून्दी के नरेश बीमार पडे। स्वास्थ्य-लाभ पूछने के लिये महाराव उम्मेदसिंह बून्दी गया। वर्षो की वैमनष्यता का अत हो गया और पुन हाडाओ मे मेलजोल व भाईचारा स्थापित हो गया। इसी प्रकार कोटा-जयपुर मे भी वैमनष्य था[2]। इस अनबन को दूर करने के लिये कोटा नरेश ने वैवाहिक सबध स्थापित किये। जयपुर के प्रसिद्ध ठिकाने ईशरदा के ठाकुर की बहिन से इसने विवाह कर लिया। जयपुर के राजा मानसिंह ईशरदा ठाकुर के कनिष्ट पुत्र थे[3]। कोटा

---

१ जाजव का युद्ध मार्च १७०८, औरगजेब की मृत्यु के बाद उसके बडे शाहजादा युवराज मुअज्जम और दक्षिण का सूबेदार शाहजादा आजम दिल्ली पर अधिकार के लिये लडे जिसमे मुअज्जम का पक्ष बून्दी वालो ने तथा आजम का पक्ष कोटा वाले हाडाओ ने लिया। जिसमे मुअज्जम की जीत हुई। बून्दी के राव बुद्धसिंह अर्थात मुअज्जम से कोटा प्राप्त करने का फरमान ले लिया।

२ सन् १७६१ के मरवाडा के युद्ध में कोटा से जयपुर हार गया। तब से दोनो राज्यो में अनबन बढ़ती रही।

३ महाराव के ३ विवाह हुए। पहला विवाह उदयपुर महाराणा फतहसिंह की पुत्री नन्दकुवर के साथ सन् १८९२ मे हुआ। परन्तु वह प्रसव-वेदना से १८९५ मे मर गई। दूसरा विवाह कच्छ के महाराव की पुत्री से हुआ जिसकी सन् १९२३ में मृत्यु हो गई तीसरी शादी ईशरदा ठिकाणा के ठाकुर की बहिन से किया। इसके एक पुत्र भीमसिंह है।

राज्य से अलग झालावाड़ राज्य की स्थापना हुई। झाला मदनसिंह को सं १८९४ (ई० सन् १८३७) में झालावाड़ का राज्य दिया गया। सं० १९५३ (ई० सन् १८९६) में झालावाड़ के तत्कालीन राजराणा जालिमसिंह का शासन प्रबंध बुरा होने के कारण उसे गद्दी से उतार दिया और उसके कोई पुत्र न होने के कारण ये जो १७ परगने थे उनमें से १५ परगने सन् १८९९ में कोटा राज्य को दे दिये गये। ये परगने कोटा में मिल जाने से झालों व हाड़ों में अनबन होगई। परन्तु १९२४ में महाराव उम्मेदसिंह ने महाराज राणा झालावाड़ से मित्रता करली और झालावाड़ का नरेश उम्मेदसिंह से मिलने कोटा आया[1]।

अंग्रेजी सरकार के प्रति महाराव कोटा ने सहयोग व राजभक्ति का प्रदर्शन किया। लार्ड कर्जन ६ नवम्बर १९०२ को कोटा आया और महाराव का ४ दिन तक मेहमान रहा। इसी तरह लार्ड मिंटन १९२५ में कोटा आया और मार्च १९२९ को लार्ड रीडिंग ने कोटा-यात्रा की। सब वायसरायों ने कोटा राज्य की शासन प्रगति की प्रशंसा की। कोटा में हाड़ोती एजेन्सी का प्रमुख केन्द्र करीब १० वर्ष सं १८७४ से १९७९ तक रहा। महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती कोटा में सं १८९९ में धूमधाम से मनाई गई। सन् १९०१ में महारानी विक्टोरिया मरी तो राज्य में शोक की छुट्टियें की गई व ८१ तोपें चलाई गई। एडवर्ड सप्तम की गद्दीनशीनी के उपलक्ष्य में महाराव को स्वर्ण पदक दिया गया। सं १९११ में जार्ज पंचम ने दिल्ली में आम दरबार किया। महाराव वहां उपस्थित था। उसे के सी एस आई की पदवी से विभूषित किया गया। महाराव ने सम्राट को कोटे आने का निमन्त्रण भेजा। सम्राट तो न आया परन्तु साम्राज्ञी मेरी २४ दिसम्बर १९११ को कोटा आई। महाराव ने अंग्रेजों को युद्धों में हमेशा सहायता दी। सं १८९९ में अफ्रीका में अंग्रेज का बोअरों से युद्ध छिड़ गया[2]। कोटा राज्य ने अंग्रेजों को आर्थिक व रसद की सहायता दी। प्रथम महायुद्ध १९१४ से १९१९ तक यूरोप में हुआ। भारत में अंग्रेजी सरकार ने देशी राज्यों से सहायता चाही। कोटा नरेश ने अप्रेल १९१७ में अंग्रेजी सरकार को युद्ध में ५ लाख और राजमहिमाओं ने १ लाख रु दिये। कोटा की जनता से धन इकट्ठा करने के लिये एक समिति बनाई गई जिससे १ लाख रु इकट्ठा किया। अन्य प्रकार के फण्ड खोले गये। भारतीय रिलीफ फण्ड

---

१ डा शर्मा कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय पृ ७१५।

२ यह प्रसिद्ध द्वितीय बोअर का युद्ध था। (१८९९ से १९ २) जबकि ट्रांसवाल का और ऑरेंज के बोअर राज्य अंग्रेजों ने विजय कर दक्षिणी अफ्रीका में मिला लिये। इसी युद्ध मे महात्मा गांधी स्वयंसेवक बन कर घायलों की सेवा सुश्रूषा करते थे।

वायुयान फण्ड आदि, रेडक्रास आदि मे भी धन दिया गया। कोटा से करीव १५ लाख का धन गया[1]। युद्ध-समाप्ति के बाद राष्ट्र सघ १६१६ ई० मे निर्माण हुआ। जन-कल्याण के लिये इस सघ ने नशे की वस्तुओ का उत्पादन रोकना चाहा। कोटा मे भी अफीम का उत्पादन कम किया गया। १६१६ के भारतीय सविधान के कानून (चेन्सफोर्ड माटेग्यू सुधार) के अनुसार नरेन्द्र मण्डल की स्थापना हुई। महाराव इस मण्डल का सदस्य वना। १६३५ के सघीय विधान में कोटा राज्य के सम्मिलित होने की स्वीकृति महाराव ने देदी। दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ मे महाराव ने प्रथम महायुद्ध की तरह अग्रेजो को भरपूर सहायता दी।

महाराव उम्मेदसिंह के शासन-काल में कई सुधार हुए। भूमि-प्रवध आधुनिक ढग से सुव्यवस्थित किया गया। राजकीय लगान निश्चित किया गया। भूमि की उपज और पीवत के अनुसार साढे छ (६॥) रु बीघा से लेकर ६ आने तक नियत की गई। सेर के बाट नये जारी किये गये। पडत जमीन उपजाऊ कराई गई। यह बन्दोबस्त का कार्य १६०० मे प्रारम्भ हुआ और १६१६ मे समाप्त हुआ। मि० बटलर ने यह कार्य किया। राजकीय आय मे ३ लाख रु. की वृद्धि हुई[2]। इस प्रकार हर १०वें साल वन्दोबस्त की प्रथा शुरू की। तीसरे बन्दोबस्त मे जमीदारी जमीन का भी वन्दोवस्त किया गया। कृषि मे सुधार किये गये। कृषको को तकावी दी जाने लगी। नये प्रकार के बीज दिये गये और वैज्ञानिक ढग से खेती करने को प्रोत्साहन दिया गया। पटेलो को भारत के भिन्न २ कोनो में होने वाली कृषि-प्रदर्शनिया देखने भेजा गया। वहाँ से राज्य के लिये नये कृषि यत्र खरीदे गये। कोटा में समय २ पर अकाल पडते थे। सम्वत १६५६ मे, १६६१ में, १६७५ में भयकर अकाल पडे। राज्य ने दुर्भिक्ष सहायता के लिये कमेटी निर्मित की। अन्न को निकासी पर भारी कर लगा दिया गया।

शिक्षा के क्षेत्र में महाराव उम्मेदसिंह के समय काफी उन्नति हुई। सम्वत् १६५० में राज्य भर मे १८ पाठशालाए थी। और १०८५ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे व ३४ अध्यापक थे और ८ हजार ७ सौ १० (८७१०) रु शिक्षा पर खर्च

---

१ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय, पृ० ७४६-७४७।

२ १६०४ में भूमि कर की आय २२ लाख १६ हजार १ सौ ४४ रु. थी। १६०६ मे २४ लाख ३७ हजार ४ सौ ६४ हो गई और इसमे खर्च ३ लाख ५६ हजार ३ सौ ४६ हुआ। "उपयोगी जमीन १६०४ मे १८६२०२७ बीघा थी। १६२० में २४३०८४६ बीघा होगई डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय, पृ० ७५६-६०।

बाद में इसमें उदयपुर के १८ अप्रेल १९४८ को शामिल हो जाने पर उदयपुर के महाराणा भोपालसिंह राजप्रमुख बनाये गये और कोटा महाराव भीमसिंह उप-राजप्रमुख बने। जब वृहद राजस्थान ३० मार्च १९४९ को बना[1] तो जयपुर के शासक मानसिंह राजप्रमुख बने और महाराव भीमसिंह उप राजप्रमुख बने। यह पद उन्होंने ३१ अक्टूबर १९५६ तक सम्हाला। बाद में १ नवम्बर १९५६ से राजप्रमुख प्रथा समाप्त करदी गई।

महाराव भीमसिंह शिक्षा प्रेमी रहे हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग की चेयर की स्थापना के लिये धन देकर राजस्थान के इतिहास व शोध के लिये विद्यार्थियों को उत्साहित किया है।

कोटा राज्य का मुगलों से संबंध

१३वीं शताब्दी के अन्तिम चरण १२७४ ई० में बून्दी के शासक राव समरसिंह के पुत्र जैतसिंह ने कोट्या भील से अकेलगढ़ के युद्ध में कोटा छीन कर हाड़ाओं का राज्य वहाँ स्थापित किया। यद्यपि कोटा पृथक राज्य केन्द्र हो गया था परन्तु कोटे के शासक बून्दी नरेश की अधीनता में रहा करते थे। ई १५४६ में कोटे पर मालवा के केसरखाँ और डोकरखाँ पठान सैनिकों का अधिकार हो गया। राव सुर्जन हाड़ा ने इनसे कोटा सन् १५६१ में छीन लिया और अपने पुत्र भोज के सुपुर्द कर दिया[2]। जब राव सुर्जन ने अकबर के साथ रणथम्भोर समर्पण करने की संधि १५६९ ई० में की तो सम्भव है कि कोटा

---

१ इसमें बीकानेर, जयपुर, जैसलमेर व जोधपुर की रियासतें भी शामिल हो गईं।

२ बून्दी राज्य का इतिहास बून्दी राज्य का मुगलों से सम्बन्ध।

राज्य का फरमान अकबर से प्राप्त कर कोटा का कानूनी अधिकार स्थापित किया हो। स० १६३६ (१५७९ ई०) के गेपरनाथ के शिलालेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोटा मे राजकुमार भोज का राज्य स्वतन्त्र रूप से था। जब भोज बून्दी की गद्दी पर बैठा तो उसका पुत्र हृदयनारायण कोटे का राजा बना और उसने शाही फरमान प्राप्त किया[1]।

(क) **मुगल राजनीति की देन—'कोटा'**—कोटा की स्वतन्त्र राज्य के रूप मे स्थापना मुगल सम्राटो की देन कहा गया है। शाहजादा खुर्रम के विद्रोह के कारण बादशाह जहाँगीर की स्थिति अत्यन्त शोचनीय होने लगी थी। उस समय बून्दी के राव रतन ने जहाँगीर की सहायता की[2]। इस सेवा से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने कोटा राज्य का फरमान राव रतन को दे दिया। राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिह को उस राज्य का अधिकारी बना दिया। राव रतन की मृत्यु के बाद माधोसिह एक स्वतन्त्र शासक के रूप मे कोटा पर शासन करने लगा।

जहाँगीर के राज्यकाल मे नूरजहाँ का मुगल राजनीति पर प्रभावशाली अधिकार था। १६२२ ई० तक नूरजहाँ मुगल परम्पराओ के अनुसार राज्य करती परन्तु उसके बाद उसकी गर्वीली तथा महत्वाकाक्षी प्रवृत्तियो के कारण झगडे उत्पन्न होने लगे। जहाँगीर का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा। नूरजहाँ को भय हुआ कि कही जहाँगीर की मृत्यु के बाद वह राज्य सत्ता से पृथक न करदी जाय। वह यह पद मृत्युपर्यन्त तक चाहती थी। जहाँगीर के बाद शाह बनने की योग्यता शाहजादे खुर्रम मे ही थी और खुर्रम नूरजहाँ के प्रभाव मे रहने वाला व्यक्ति नही था। अत नूरजहाँ खुर्रम को राज्य प्राप्ति से दूर रखने के लिए योजनाएँ बनाने लगी। जहाँगीर का सबसे छोटा पुत्र शहरयार था। वह अयोग्य और निकम्मा था। उसे राज्य का उत्तराधिकारी बना कर नूरजहाँ स्वय शासन करना चाहती थी। इसके अलावा नूरजहाँ और खुर्रम धार्मिक दृष्टि से एकमत नही हो सकते थे। नूरजहाँ शिया मत की थी तो खुर्रम सुन्नी[3]। अत शहरयार को राज्यारूढ करने की योजना को सफल बनाने के लिए उसने शेर-अफगन से उत्पन्न अपनी कन्या लाडली बेगम की शादी शहरयार से अप्रेल १६२१

---

१ टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १४८६ फुटनोट न० २।

२ सागर फूट्यो जल बह्यो, अबकी करो जतन।
जातो गढ जहाँगीर को, राख्यो राव रतन ॥ टाड पृ० १४८६।

३ डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव मुगलकालीन भारत, पृ० ३२३-३२४।

होता था। अग्र की शिक्षा राजधानी में ही थी। स्त्री-शिक्षा नाम मात्र को थी। अब शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति होने लगी। १९२१ में हाई स्कूल खुला। बाद में यह कालेज बन गया जिसे आज हरबर्ट कालेज कहते हैं। स्त्री-शिक्षा के लिये महारानी कन्या पाठशाला की स्थापना हुई। नार्मल स्कूल स्थापित किये गये। विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिये छात्र-वृत्तियाँ दी जाने लगीं। चिकित्सा विभाग के अन्तर्गत कोटा राज्य में स्थान २ पर अस्पताल खुलने लगे। सम्वत् १९२६ में पांच सफाखाने थे पर सन् १९४० तक हर तहसील मे १-१ अस्पताल खुल गया। कई सामाजिक सुधार हुए।

सम्वत् १९८० में बेगार प्रथा बन्द करदी गई। सन् १९२७ में यह कानून बना दिया गया कि १२ वर्ष से पहले लड़की और १६ वर्ष से पहले लड़के का विवाह करना जुर्म है[1]। कोटा में पहली रेलवे लाइन सम्वत् १८५९ में बारां तक बनी थी। कोटा राज्य ने इसका खर्च दिया। सम्वत् १९६१ में कोटा तक यह लाइन खुल गई। स १९६५ में मथुरा नागदा रेलवे मार्ग खुल गया। इसी प्रकार कोटा राज्य ने इस काल में डाक तार का भी प्रबन्ध किया। सन् १९० में कोटा राज्य का डाक विभाग अंग्रेजी सरकार ने ले लिया। कोटा म पहली तार लाइन २१ मई १८९२ में देवली से कोटा तक खोली गई। सहकारी समितियां बैंक १९२१ ई में स्थापित किये गये। रेल के आने पर रूई के पैक टेल की फैक्ट्री पत्थरों की खानें आदि व्यवसाय जारी हुए। बारां और रामगंज मण्डी इन व्यवसायों के मुख्य नगर थ। कोटा में पहले हाली और मदनशाही रुपये चलते थे। सन् १९ ० में कलदार रुपये शुरू किये। उम्मेदसिंह के समय बनने वाली इमारतों में हरबर्ट कालज कर्जन वायसी स्मारक क्रायपेस्ट इन्स्टीट्यूट महारानी कन्या पाठशाला (आजकल कॉलेज) राजकीय भवन आदि प्रसिद्ध हैं। कोटा में प्रथम बार राजनैतिक चेतना का प्रारम्भ इसके समय में हुआ। सन् १९१४ में जयपुर के प्रसिद्ध देशभक्त प अर्जुनलाल सेठी बी ए तथा शाहपुरा (मेवाड़ निवासी) केसरीसिंह बारहठ कोटा के हीरालाल जालोटी आदि आरा बिहार महन्त हत्या केस तथा जोधपुर महन्त हत्याकेस नाम के राजनैतिक मुकदमे अंग्रेजी सरकार के इशारे से कोटा राजधानी में चलाये गये और इन अभियुक्तों को दोषी करार देकर कई वर्षों की सजा दी गई। राजपूताने के राज्यों में यह पहला ही राजनैतिक षड्यन्त्र का मामला था।

---

१ १९२ में केन्द्रीय धारा-सभा ने शारदा कानून बना कर विवाह की उम्र निश्चित करदी। लड़के की कम से कम १८ वर्ष और लड़कियों की १४ वर्ष होने पर ही विवाह करने का कानून बना। यह कानून सफल न हो सका। इसी प्रकार कोटा राज्य का यह कानून भी असफल रहा।

महाराव उम्मेदसिंह का देहान्त सन् १९४० की २७ दिसम्बर को हुआ। इसके बाद उसके पुत्र भीमसिंह राजगद्दी पर बैठे। महाराव उम्मेदसिंह अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। सम्वत् १९७१ (ई० सन् १९१४) मे इसने द्वारिका-यात्रा की। सन् १९१७ मे यह हरिद्वार गया और वहाँ पुण्यदान दिया। अपने राज्य में पुराने मन्दिरो व मस्जिदो का जीर्णोद्धार करवाया।

महाराव भीमसिंह—वि० स० १९९७-२००४

राजस्थान-निर्माण के समय कोटा के राज्य पर महाराव भीमसिंह विराजमान थे। इसका जन्म स० १९६५ (सन् १९१८) में हुआ था। प्रारम्भ से ही इनकी शिक्षा मेयो कॉलेज अजमेर में हुई। शिक्षा-प्राप्ति व खेलकूद में इन्होने अपना नाम विद्यार्थी जीवन में उच्च स्तर तक पहुँचा दिया था। मेयो कॉलेज के १९१७ से १९२९ तक विद्यार्थी रहे। बाद मे शासन-प्रबध की शिक्षा प्राप्त करने के लिये महकमा खास और महकमा माल का काम देखने लगे। इनका विवाह महाराजा बीकानेर श्री गंगासिंह की पुत्री से ३० अप्रेल १९३० को हुआ था। अपने पिता की मृत्यु के बाद (२७ दिसम्बर १९४०) कोटा की राजगद्दी पर आप बैठे। इनका शासनकाल राजनैतिक उथल-पुथल का काल था। गद्दी पर बैठते ही द्वितीय महायुद्ध का सामना करना पडा। युद्ध-काल मे अग्रेजो के प्रति इन्होने वही नीति अपनाई जो कि इनके पिता ने अपनाई थी। १९४५ में युद्ध समाप्त होगया तो भारत का राजनैतिक वातावरण क्रांति की ओर अग्रसर होने लगा। कोटा भी इससे अछूता न बच सका। कोटा मे अखिल भारतीय लोक परिषद् की शाखा खुली। कोटा में स्वशासन स्थापित करने की माग पर जन आदोलन हुए। यद्यपि जन आदोलन कमजोर था परन्तु महाराव समय की गति को देख रहे थे। अगस्त १९४१ में 'भारत छोडो आंदोलन' की देखादेखी यहा के प्रताप मण्डल ने भी पूर्ण उत्तरदायी शासन की माग की। तथा रियासत का अग्रेजी सरकार से सबध विच्छेद के लिये महाराव को कहा गया। इस पर कोटा में उपद्रव हुए। नेता गिरफ्तार किये गये। इस पर जनता ने बहुत विरोध किया। महाराव ने किसी प्रकार जनता से समझौता कर लिया। १५ अगस्त १९४७ को भारत को स्वतत्रता प्राप्त हुई। महाराव कोटा ने अपने यहा १९४७ के प्रारम्भ में ही जनप्रिय सरकार की स्थापना की। सरदार पटेल, केन्द्रीय ग्रहमत्री को देशो राजनीति पर छोटे २ राज्यो का एकीकरण प्रारम्भ हुआ। राजस्थान के छोटे राज्यो ने भी बडा राजस्थान बनाने मे सहायता दी। महाराव कोटा इस काम में अग्रणी थे। २५ मार्च १९४८ को स रियासतो को छोटे राजस्थान का निर्माण हुआ[1]।

---

१ इसमे बासवाडा, बून्दी, डूगरपुर, झालावाड, किशनगढ, कोटा, प्रतापगढ, शाहपुरा टोक सम्मिलित हुए थे।

बाद में इसमें उदयपुर के १८ अप्रैल १९४८ को शामिल हो जाने पर उदयपुर के महाराणा भोपालसिंह राजप्रमुख बनाये गये और कोटा महाराव भीमसिंह उप-राजप्रमुख बने। जब बृहद राजस्थान ३० मार्च १९४९ को बना[1] तो जयपुर के शासक मानसिंह राजप्रमुख बने और महाराव भीमसिंह उप राजप्रमुख बने। यह पद उन्होंने ३१ अक्टूबर १९५६ तक संभाला। बाद में १ नवम्बर १९५६ से राजप्रमुख प्रथा समाप्त करदी गई।

महाराव भीमसिंह शिक्षा प्रेमी रहे हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग की चेयर की स्थापना के लिए धन देकर राजस्थान के इतिहास व शोध के लिये विद्यार्थियों को उत्साहित किया है।

कोटा राज्य का मुगलों से संबंध

१३वीं शताब्दी के अन्तिम चरण १२७४ ई० में बून्दी के शासक राव समरसिंह के पुत्र जैतसिंह ने कोट्या भील से अकेलगढ़ के युद्ध में कोटा छीन कर हाड़ाओं का राज्य वहाँ स्थापित किया। यद्यपि कोटा पृथक राज्य केन्द्र हो गया था परन्तु कोटे के शासक बून्दी नरेश की अधीनता में रहा करते थे। ई० १५४६ में कोटे पर मालवा के केसरखाँ और डोकरखाँ पठान सैनिकों का अधिकार हो गया। राव सुर्जन हाड़ा ने इनसे कोटा सन् १५६१ में छीन लिया और अपने पुत्र भोज के सुपुर्द कर दिया[2]। जब राव सुर्जन ने अकबर के साथ रणथम्भोर समर्पण करने की संधि १५६९ ई० में की तो सम्भव है कि कोटा

---

१ इसमें बीकानेर, जयपुर, जैसलमेर व जोधपुर की रियासतें भी शामिल हो गईं।

२ बून्दी राज्य का इतिहास बून्दी राज्य का मुगलों से सम्बन्ध।

राज्य का फरमान अकबर से प्राप्त कर कोटा का कानूनी अधिकार स्थापित किया हो। स० १६३६ (१५७९ ई०) के गेपरनाथ के शिलालेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोटा मे राजकुमार भोज का राज्य स्वतन्त्र रूप से था। जब भोज बून्दी की गद्दी पर बैठा तो उसका पुत्र हृदयनारायण कोटे का राजा बना और उसने शाही फरमान प्राप्त किया[1]।

(क) मुगल राजनीति की देन—'कोटा'—कोटा की स्वनन्त्र राज्य के रूप मे स्थापना मुगल सम्राटो की देन कहा गया है। शाहजादा खुर्रम के विद्रोह के कारण बादशाह जहाँगीर की स्थिति अत्यन्त शोचनीय होने लगी थी। उस समय बून्दी के राव रतन ने जहाँगीर की सहायता की[2]। इस सेवा से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने कोटा राज्य का फरमान राव रतन को दे दिया। राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को उस राज्य का अधिकारी बना दिया। राव रतन की मृत्यु के बाद माधोसिंह एक स्वतन्त्र शासक के रूप मे कोटा पर शासन करने लगा।

जहाँगीर के राज्यकाल मे नूरजहाँ का मुगल राजनीति पर प्रभावशाली अधिकार था। १६२२ ई० तक नूरजहाँ मुगल परम्पराओ के अनुसार राज्य करती परन्तु उसके बाद उसकी गर्वीली तथा महत्वाकाक्षी प्रवृत्तियो के कारण झगडे उत्पन्न होने लगे। जहाँगीर का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा। नूरजहाँ को भय हुआ कि कही जहाँगीर की मृत्यु के बाद वह राज्य सत्ता से पृथक न करदी जाय। वह यह पद मृत्युपर्यन्त तक चाहती थी। जहाँगीर के बाद शाह बनने की योग्यता शाहजादे खुर्रम मे ही थी और खुर्रम नूरजहाँ के प्रभाव मे रहने वाला व्यक्ति नही था। अत नूरजहाँ खुर्रम को राज्य प्राप्ति से दूर रखने के लिए योजनाएँ बनाने लगी। जहाँगीर का सबसे छोटा पुत्र शहरयार था। वह अयोग्य और निकम्मा था। उसे राज्य का उत्तराधिकारी बना कर नूरजहाँ स्वय शासन करना चाहती थी। इसके अलावा नूरजहाँ और खुर्रम धार्मिक दृष्टि से एकमत नही हो सकते थे। नूरजहाँ शिया मत की थी तो खुर्रम सुन्नी[3]। अत शहरयार को राज्यारूढ करने की योजना को सफल बनाने के लिए उसने शेर-अफगन से उत्पन्न अपनी कन्या लाडली बेगम की शादी शहरयार से अप्रेल १६२१

---

१ टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १४८६ फुटनोट न० २।

२ सागर फूट्यो जल बह्यो, अवकी करो जतन।
जातो गढ़ जहाँगीर को, राख्यो राव रतन॥ टाड पृ० १४८६।

३ डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव मुगलकालीन भारत, पृ० ३२३-३२४।

ई० में करदी। शहरयार ८००० जात व ४००० सवार का मनसबदार बनाया गया। इसी वर्ष नूरजहाँ के माता-पिता का देहांत हो गया। ये दोनों व्यक्ति नूरजहाँ की निरंकुशता को रोके हुए थे। नूरजहाँ का भाई आसफखाँ खुर्रम का श्वसुर था इसलिए उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। खुर्रम और नूरजहाँ की अनबन के कारण राज्य शक्ति शिथिल होने लगी और ठीक इसी समय फारस के शाह ने १६२२ ई० में कन्धार पर अधिकार कर लिया।

कन्धार की पुन प्राप्ति का उत्तरदायित्व खुर्रम पर सौंपा गया परन्तु वह इस योजना को नूरजहाँ का षड्यन्त्र समझ कर अपनी सुरक्षा के लिए सेना पर पूर्ण नियन्त्रण पंजाब पर अधिकार व रणथम्भोर के किले को प्राप्त करना चाहा। खुर्रम की यह मांग नूरजहाँ के लिए चुनौती थी अत उसने शहरयार को कन्धार-विजय का भार सौंपा। धौलपुर की हाकिमी के लिए भी नूरजहाँ और खुर्रम में मनमुटाव था। खुर्रम की ओर से दरियाखाँ व शहरयार की ओर से शरीफ-उल-मालिक धौलपुर की हुकूमत पर अधिकार करने चले। दोनों में मुठभेड़ हो गई। नूरजहाँ ने सारा दोष खुर्रम का बतला कर जहाँगीर को खुर्रम से पृथक कर दिया। इसी समय नूरजहाँ ने काबुल से महाबतखाँ को बुला भेजा। उसके पद में वृद्धि की गई। शाहजादा परवेज को बंगाल से बुला लिया गया। इसी समय खुर्रम ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। माण्डू को अपना मुख्य केन्द्र बनाया। मेवाड़ के राणा से पगड़ी-बदल भाईचारा स्थापित किया। उसके राजकुमार भीमसिंह को अपना सेनापति बनाया[1]।

ऐसी स्थिति में बून्दी का राव रतन तथा कोटे का हृदयनारायण नूरजहाँ व जहाँगीर की सहायता को पहुँचे। राव रतन के साथ उसके दो पुत्र माधोसिंह व हरिसिंह भी थे[2]। खुर्रम के विरुद्ध महाबतखाँ व शाहजादा परवेज भेजा गया। परवेज को ४ जात व ३० सवार का मनसब दिया गया। मांडू के घेरे में राव रतन भी शामिल था। खुर्रम हार कर भाग गया। वह नर्मदा पार कर असीरगढ़ की ओर भागा। खुर्रम ने राव रतन को मध्यस्थ बना कर संधि की बातचीत करनी चाही परन्तु शर्तें तय नहीं[3] होने के कारण खुर्रम को भाग कर

---

१ विद्रोह की ध्वजा फहरा कर खुर्रम ने पहले आगरा लेना चाहा पर १६२३ ई० में बिलोचपुरे में उसकी हार हुई। उपरोक्त, पृ० १२१।

२ ईश्वरीप्रसाद : ए शार्ट हिस्ट्री ग्राफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया पृ० ५१४-५१५। गौरीशंकर ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग १ पृ० ८२५।

३ बेणीप्रसाद : जहाँगीर पृ० ३७०।

असीरगढ के किले में शरण लेनी पडी। अपने कुटुम्ब को वही छोड कर वह बुरहानपुर चला गया। उसने अहमदनगर से मलिक अम्बर की सहायता प्राप्त करनी चाही परन्तु उसे सहायता न मिली। मुगल-राजपूत सेना ने बुरहानपुर घेर लिया। खुर्रम भाग कर गोलकुण्डा पहुँचा। बुरहानपुर विजय का मुख्य श्रेय राव रतन को दिया गया। अत उसे बुरहानपुर का हाकिम नियुक्त किया गया। उसके दोनो पुत्रो ने भी युद्ध मे भाग लिया था। गोलकुण्डा से खुर्रम उडीसा होकर बगाल पहुँचा। वहाँ स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की। उसके सेनापति भीमसिंह सिसोदिया ने बिहार पर अधिकार कर लिया। विद्रोही सेना भीमसिंह के नेतृत्व मे इलाहाबाद की ओर बढने लगी। इस पर जहाँगीर ने दक्षिण से महाबतखा और परवेज को खुर्रम का रास्ता रोकने के लिए बुला भेजा। परवेज ने बुरहानपुर के पास के इलाको का शासक राव रतन को नियुक्त किया[1]। हृदयनारायण परवेज के साथ पूर्व की ओर खुर्रम के विरुद्ध गया। भूसी के स्थान पर खुर्रम हार कर भाग गया। हृदयनारायण भी युद्ध के समय भाग चुका था अत जहाँगीर ने उससे कोटा छीन कर अस्थायी रूप से राव रतन को सौंप दिया।

ज्योही महाबत खा और परवेज दक्षिण से हटे, अहमदनगर के मलिक अम्बर ने शाही सेना पर हमला करना आरम्भ किया। पर राव रतन ने बुर-हानपुर पर शाही अधिकार बनाए रखा। भूसी के युद्ध मे हार कर खुर्रम पुन उडीसा, तेलगाना और गोलकुण्डा होता हुआ अहमदनगर पहुँचा। इस बार मलिक अम्बर से मित्रता स्थापित हो गई। दोनो ने बुरहानपुर का घेरा डाल दिया। घोर सग्राम हुआ। राव रतन ने अत्यन्त कठिनाई मे होते हुए भी विजय प्राप्त की। महाबत खा व परवेज पुन दक्षिण की ओर चले। इस पर खुर्रम ने घेरा उठा लिया। इस युद्ध मे राव रतन को बहुत सा धन प्राप्त हुआ। शत्रु के ३०० सैनिक कैद कर लिए गए। माधोसिंह व हरिसिंह युद्ध करते हुए घायल[2] तो अवश्य हुए परन्तु माधोसिंह की सेवाओ से प्रसन्न होकर जहागीर ने १६२४ ई० मे कोटा का राज्य माधोसिंह के नाम पर स्वीकार करने की अनुमति देदी।

बुरहानपुर से हार कर खुर्रम दक्षिण की ओर भागने लगा परन्तु इसमे

---

१ खफीखा जिल्द १, पृ० ३४८।
टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १४८७।
२ इलियट डाउसन जिल्द ६, पृ० ३९५ तथा ४१८।
वशभास्कर जिल्द ३, पृ० २४८७, २५००—०४

माधोसिंह की मुगल साम्राज्य-सेवा।—राव माधोसिंह अपनी राज्य-भक्ति के कारण शाहजहाँ का कृपापात्र बन गया। अब तक शाही दरबार मे जोधपुर, जयपुर, बीकानेर व जैसलमेर आदि राजपूताने की रियासतो के शासको का ही प्रभाव था परन्तु प्रथम बार बून्दी और कोटा के हाडा राजपूतो ने साम्राज्य-सेवा मे प्रवेश कर शाहजहाँ व उसके बाद की मुगल राजनीति को प्रभावित करना शुरू किया। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठते ही उसे कई विद्रोहो का सामना करना पडा। पहला विद्रोह खानजहा लोदी का था जिसने १६२८ ई० मे दक्षिण मे बालघाट की सूबेदारी से हटाने पर विद्रोह कर दिया। धौलपुर के पास युद्ध मे माधोसिंह हाडा के नेतृत्व मे मुगल सेना से वह हार गया। खानजहा इस पर दक्षिण की ओर भाग गया और निजाम शाही सुलतानो से वह मिल गया। माधोसिंह ने खानजहाँ का पीछा किया। उज्जैन के पास पुन: दोनो की सेनाओ मे भिडन्त हुई। वह बुन्देलखड जा पहुँचा। वहा जुझारसिंह बुन्देला भी शाहजहाँ के विरुद्ध विद्रोही हो रहा था। खानजहाँ कालिन्जर के उत्तर में तालसिघाडे के पास मुगल सेना से घिर गया। इस युद्ध मे माधोसिंह हाडा ने खानजहाँ को अपनी बर्छी से छेद दिया। उसके दोनो पुत्रो के टुकडे कर डाले गए। तीनो के सिर बादशाह के समक्ष नजर किए गए[1]। शाहजहाँ ने इस विजय के उपलक्ष्य में जीरापुर, खैराबाद, चेचट और खिलचीपुर के चार परगने माधोसिंह को दिए और उसे तीनहजारी मनसबदार बना दिया[2]।

शाहजहाँ के समय वीरसिंह बुन्देला के पुत्र जुझारसिंह ने भी अपनी स्वतंत्र इकाई के लिए मुगलो के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह का मुख्य कारण उससे बुन्देलखण्ड के हिसाब की जाच की आज्ञा कहा जाता है। इसे अपना अपमान समझ कर १६३५ ई० मे उसने ओरछा मे स्वतन्त्र ध्वजा फहरा दी। इस विद्रोह को दबाने के लिए शाहजहाँ ने माधोसिंह हाडा से सहायता की आशा की। माधोसिंह १५०० हाडा सैनिको को लेकर बुन्देला-विद्रोह दबाने चला। जुझारसिंह पर उसने शानदार विजय प्राप्त की, इससे मुगल दरबार मे माधोसिंह की प्रतिष्ठा

---

१ बादशाहनामा जिल्द १, भाग २, पृ० ३४८-५०, वंशभास्कर तृतीय भाग, पृ० २५९५। डा ए एल श्रीवास्तव लिखते हैं कि खानजहाँ लोदी बादा जिले के सिहमदा नामक स्थान पर पकडा गया और मारा गया। (मुगलकालीन भारत पृ० ३५१), इलियट व डाउसन जिल्द ७, पृ० २०-२२।

२ ठाकुर लक्ष्मणदास ने कोटा राज्य की ख्यात में इस वीरता के उपलक्ष्य मे माधोसिंह को १७ परगने देना लिखा है। फारसी तवारीखो मे इसका उल्लेख नही है। पर माधोसिंह की मृत्यु के समय कोटा राज्य में ये परगने सम्मिलित थे। डा० एम एल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० ११२।

यह सफल न हो सका। वह कैद कर लिया गया । राव रतन व महाबतखां दोनों ही बुरहानपुर के शासक नियुक्त हुए। महाबतखां को जब शाही दरबार में बुलाया गया तो राव रतन को बुरहानपुर का फौजदार बनाया गया[1]। खुर्रम की देख रेख का भार हरिसिंह पर छोड़ा गया परन्तु उसका व्यवहार खुर्रम के साथ नौकरों जैसा था। इस पर माधोसिंह को यह कार्य सौंपा गया। माधोसिंह ने उसके साथ मित्रता व प्रेम का व्यवहार रख कर खुर्रम को अपनी ओर कर लिया[2]। माघ १२ १६२६ को नूरजहां ने खुर्रम को यह आदेश देकर क्षमा देनी चाही कि रोहतासगढ़ व असीरगढ़ के दुर्ग जहांगीर को सौंप दे। उसने यह स्वीकार किया परन्तु दिल्ली में हाजिर न होने की आज्ञा चाही। आज्ञा न मिलने पर खुर्रम बुरहानपुर की कैद से भाग खड़ा हुआ। राव रतन व माधोसिंह का इस घटना में हाथ रहा हो क्योंकि भागने के पूर्व खुर्रम ने राव रतन को पत्र लिखा कि कारागार में माधोसिंह ने मुझे बहुत आदरपूर्वक रखा है और मालिक समझा है। मैं इसको विशेष राज्य देकर सम्मानित करूंगा[3]।" इस घटना का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। वंशभास्कर के रचयिता सूर्यमल मिश्रण की कल्पना हो सकती है पर खुर्रम ने शाहजादा बनते ही हरिसिंह को बुला भेजा। इस भय से, कहीं पुराने व्यवहार के कारण उसे दण्ड प्राप्त न हो इसलिए राव रतन ने उसे उपस्थित नहीं किया। इस पर शाहजहां ने बून्दी के ८ परगनों को जब्त कर लिया।

जहांगीर काश्मीर से लौटता हुआ लाहोर के पास ७ नवम्बर १६२७ ई० को मर गया। खुर्रम ने अपने श्वसुर आसफजहां की सहायता से दिल्ली की राज्य गद्दी प्राप्त करली। वह शाहजहां के नाम से १६२८ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। राव रतन ने शाहजहां का माधोसिंह की सेवाओं की ओर ध्यान आकर्षित किया। शाहजहां ने कोटे राज्य का फरमान माधोसिंह के नाम पर कर दिया[5]। राव रतन ने बून्दी के आठ परगने भी माधोसिंह को दे दिए। राव रतन के देहान्त के बाद (१६३१ ई०) माधोसिंह ने अपना राज्याभिषेक किया और महाराजाधिराज की पदवी धारण की। इस अवसर पर शाहजहां ने माधोसिंह को खिलअत प्रदान की और उसको २५ जात व २५०० सवारों का मनसबदार बना दिया। इस तरह कोटा का स्वतन्त्र राज्य मुगल राजनीति की देन कहा जा सकता है।

१ वंशभास्कर जिल्द ३ पृ २[illegible]६।
२ इम्पीरियल गजेटियर जिल्द १ पृ ४११-४१२।
३ वंशभास्कर जिल्द ३ पृ २६१०-२६१२।
४ हवालेन पृ ११२१-२६।
५ वंशभास्कर : जिल्द ३ पृ २५४०-४१ ४१।

थे। दोनो ओर से शान्ति-प्रयास किया। नजरमोहम्मद इसके लिए तैयार नही था। शाहजहाँ के लिए मध्य एशिया-विजय महगी पड रही थी। अत उसने औरगजेब को लिखा कि यदि नजरमोहम्मद क्षमा-याचना करले तो सधि कर लेना। बाध्य होकर औरगजेब ने नजरमोहम्मद से सन्धि कर १० नवम्बर १६४७ ई० को काबुल लौट जाना पडा। इस लौटती हुई सेना पर उजबगो ने कई बार आक्रमण किया। मध्य एशिया की नीति शाहजहाँ के लिए महगी पडी। कई करोड रुपयो की हानि के बाद भी मुगलो ने एक इन्च की भूमि प्राप्त नही की। उनकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा। बाल्ख से लौटने पर राव माधोसिंह की मृत्यु सन् १६४८ ई० मे कोटे में हो गई। माधोसिंह मरते समय ३००० का मनसबदार था[1]। बाल्ख और बदकशा आक्रमण के समय उसके दो पुत्र मोहनसिंह व किशोरसिंह साथ थे जो क्रमश ८०० और ४०० के मनसबदार थे[2]।

मुकुन्दसिंह और मुगल—सन् १६४६ ई० में राव मुकुन्द कोटे की गद्दी पर बैठा। शाहजहाँ ने उसे खिलअत दी व उसे ३००० का मनसबदार बनाया। गद्दी पर बैठते ही उसे मुगल-सेवा में बुला लिया गया। १६२३ ई० में शाह अब्बास, फारस सुल्तान ने कन्धार को अपने अधिकार में कर लिया था। १६३५ ई० में कन्धार के सूबेदार अलीमर्दनखा ने शाह अब्बास से क्रोधित होकर कन्धार मुगलो को सौंप दिया परन्तु १६४८ ई० मे फारस के शासक ने पुनः कन्धार पर अधिकार कर लिया। शाहजहाँ ने तीन बार कन्धार लेने का प्रयत्न किया। सन् १६४६ व १६५२ में औरगजब के नेतृत्व में और १६५३ ई० मे दारा के नेतृत्व मे। तीनो बार असफलता प्राप्त हुई। मुकुन्दसिंह ने कन्धार-प्राप्ति के लिए दारा की हरावल में युद्ध में भाग लिया[3]।

मुकुन्दसिह के समय सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ के चारो पुत्रो—दारा, शुजा, औरगजेब व मुराद में राज्य-प्राप्ति के लिए युद्ध हुआ[4]। दारा ने औरगजेब व मुराद के विरुद्ध जोधपुर नरेश राजा जसवन्तसिंह को भेजा। मुकुन्दसिंह को भी शाही फरमान प्राप्त हुआ कि जसवन्तसिंह की सहायता के लिए फौजें

---

१ अब्दुलहमीद जिल्द २, पृ० ७२२, डा० एम एल शर्मा, कागडा-विजय के बाद माधोसिंह को ४५०० का मनसबदार लिखते हैं (कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १३०)

२ मुंशी मूलचन्द पृ० ९६।

३ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द १, पृ० १४२, परन्तु इनायतखा ने कन्धार के घेरे के वर्णन मे मुकुन्दसिंह का कहीं उल्लेख नही किया है (शाहजहाँनामा, पृ० ८८)।

४ डा० ए एल श्रीवास्तव मुगलकालीन भारत, पृ० ३७२-३८०।

बढ़ने लगी। १६४१ ई० में पंजाब में कांगड़ा में विद्रोह हुआ। वहाँ के सूबदार जगतसिंह ने मुगलाई सार्वभौमिकता से अपने को स्वतन्त्र कर लिया। शाहजादा मुराद के नेतृत्व में कांगड़ा पर आक्रमण करने के लिए एक बहुत बड़ी सेना भेजी गई। माधोसिंह भी मुराद के साथ चला। आक्रमण की सफलता के बाद माधोसिंह के मनसब में ५ की वृद्धि की गई।

कोटा के हाड़ा शासकों ने मुगल शक्ति को मध्य एशिया तक पहुँचाने में पूर्ण मदद की। शाहजहाँ मुगलों की मातृभूमि समरकन्द पर अधिकार करने की योजना निर्मित की। इसी समय समरकन्द की राजनैतिक स्थिति मुगल आक्रमण के पक्ष में थी। समरकन्द के शासक इमामकुली के भाई नजरमोहम्मद ने काबुल पर अधिकार करने की कई बार चेष्टा की। उसकी इन हरकतों को रोकने के लिए सन् १६४५ ई में शाहजहाँ स्वयं काबुल गया और समरकन्द विजय का भार मुराद को सौंपा। उसे ५० ०० सैनिक-शक्ति दी गई। उस समय माधोसिंह लाहोर में था। समरकन्द विजय में शामिल होने का उसे फरमान भेजा गया[1]। काबुल पहुँचने पर माधोसिंह को हरावल में रखा गया। शाही सेना के ३ भाग कर दिए गए। एक भाग में रावराजा शत्रुशाल दूसरे भाग में विट्ठलदास राठौड़ व तीसरे भाग का नेतृत्व माधोसिंह को दिया गया। इस सेना ने कन्दल के किले पर २२ जून को आक्रमण कर अधिकार कर लिया। २ जुलाई १६४६ को बाल्ख में यह सेना प्रवेश करने लगी। नजरमोहम्मद भाग गया। उसका कुटुम्ब गिरफ्तार कर लिया गया। सारा शहर लूट लिया गया। अतुल धन प्राप्त कर तिरमिज पर अधिकार हो जाने पर मुराद बिना शाही आज्ञा के भारत लौट आया। बाल्ख की रक्षा का भार माधोसिंह हाड़ा को सौंपा गया। मुराद की अनुपस्थिति में नजरमोहम्मद और तुराम के शासक अब्दुलअजीज ने बाल्ख लेना चाहा परन्तु माधोसिंह ने बाल्ख और उसके आसपास के क्षेत्रों से मुगलों का अधिकार नहीं हटने दिया। इसी बीच शाहजहाँ ने औरंगजेब को अतिरिक्त सेना देकर बाल्ख भेजा। मार्ग में शत्रुओं को हराता हुआ औरंगजेब २५ मई सन् १६४७ ई० को बाल्ख पहुँचा। शाहजहाँ ने माधोसिंह के लिए चाँदी के आभूषणों से अलंकृत एक घोड़ा भेजा। औरंगजेब ने भी बाल्ख की किलेदारी माधोसिंह पर छोड़ तथा साथ में शाही खजाना रसद आदि का भार भी छोड़ कर औरंगजेब नजरमोहम्मद को पूर्ण शिकस्त देने चला। कभी नजरमोहम्मद विजयी हुआ तो कभी औरंगजेब। ७ जून १६४७ ई० को बाल्ख के पास भयंकर युद्ध हुआ। इसमें बाल्ख बदख्शाँ का शासक अब्दुलअजीज व कई उजबक सरदार शामिल

---

१ वंशभास्कर जिल्द २ पृ ७२१।

थे। दोनो ओर से शान्ति-प्रयास किया। नजरमोहम्मद इसके लिए तैयार नही था। शाहजहाँ के लिए मध्य एशिया-विजय महगी पड रही थी। अत उसने औरगजेब को लिखा कि यदि नजरमोहम्मद क्षमा-याचना करले तो सधि कर लेना। बाध्य होकर औरगजेब ने नजरमोहम्मद से सन्धि कर १० नवम्बर १६४७ ई० को काबुल लौट जाना पडा। इस लौटती हुई सेना पर उजबेगो ने कई बार आक्रमण किया। मध्य एशिया की नीति शाहजहाँ के लिए महगी पडी। कई करोड रुपयो की हानि के बाद भी मुगलो ने एक इन्च की भूमि प्राप्त नही की। उनकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा। बाल्ख से लौटने पर राव माधोसिंह की मृत्यु सन् १६४८ ई० मे कोटे में हो गई। माधोसिंह मरते समय ३००० का मनसवदार था[1]। बाल्ख और बदकशा आक्रमण के समय उसके दो पुत्र मोहनसिंह व किशोरसिंह साथ थे जो क्रमश ८०० और ४०० के मनसबदार थे[2]।

मुकुन्दसिंह और मुगल—सन् १६४९ ई० में राव मुकुन्द कोटे की गद्दी पर बैठा। शाहजहाँ ने उसे खिलअत दी व उसे ३००० का मनसबदार बनाया। गद्दी पर बैठते ही उसे मुगल-सेवा मे बुला लिया गया। १६२३ ई० में शाह अब्बास, फारस सुल्तान ने कन्धार को अपने अधिकार में कर लिया था। १६३५ ई० में कन्धार के सूबेदार अलीमर्दनखा ने शाह अब्बास से क्रोधित होकर कन्धार मुगलो को सौंप दिया परन्तु १६४८ ई० मे फारस के शासक ने पुनः कन्धार पर अधिकार कर लिया। शाहजहाँ ने तीन बार कन्धार लेने का प्रयत्न किया। सन् १६४९ व १६५२ में औरगजब के नेतृत्व में और १६५३ ई० मे दारा के नेतृत्व मे। तीनो बार असफलता प्राप्त हुई। मुकुन्दसिंह ने कन्धार-प्राप्ति के लिए दारा की हरावल में युद्ध में भाग लिया[3]।

मुकुन्दसिंह के समय सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ के चारो पुत्रो—दारा, शुजा, औरगजेब व मुराद मे राज्य-प्राप्ति के लिए युद्ध हुआ[4]। दारा ने औरगजेब व मुराद के विरुद्ध जोधपुर नरेश राजा जसवन्तसिंह को भेजा। मुकुन्दसिंह को भी शाही फरमान प्राप्त हुआ कि जसवन्तसिंह की सहायता के लिए फौजें

---

१ अब्दुलहमीद जिल्द २, पृ० ७२२, डा० एम एल शर्मा, कागडा-विजय के बाद माधोसिंह को ४५०० का मनसबदार लिखते हैं (कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १३०)

२ मुशी मूलचन्द पृ० ६६।

३ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द १, पृ० १४२, परन्तु इनायतखा ने कन्धार के घेरे के वर्णन मे मुकुन्दसिंह का कहीं उल्लख नही किया है (शाहजहाँनामा, पृ० ८८)।

४ डा० ए एल श्रीवास्तव · मुगलकालीन भारत, पृ० ३७२-३८०।

भेजे। मुकुन्दसिंह ५००० सैनिकों और अपने भाई मोहनसिंह, जुझारसिंह, कन्नीराम और किशोरसिंह को साथ लेकर जसवन्तसिंह से आ मिला। धर्मत के स्थान पर मुगल राजपूत सेना ने औरंगजेब मुराद की सेना का सामना किया। मुकुन्दसिंह व उसके भाई युद्ध करते हुए मारे गए। सबसे छोटा भाई किशोरसिंह घायल होकर युद्धस्थल में गिर पड़ा[1]। जसवन्तसिंह जोधपुर भाग गया। औरंगजेब ने इस युद्ध के बाद इस स्थान का नाम फतेहाबाद रखा।

औरंगजेब व कोटा के हाड़ा शासक—शाहजहाँ के पुत्रों में राज्य प्राप्ति के युद्ध में औरंगजेब सफल हुआ। २१ जुलाई १६५८ को दिल्ली के सिंहासन पर वह बैठा। गद्दी पर बैठते ही उसने राजपूत शासकों के प्रति मित्रता की नीति अपनायी। यद्यपि कोटा का राजा मुकुन्द उसके विरुद्ध धर्मत के युद्ध में लड़ा था फिर भी गद्दी पर बैठते ही उसने राव मुकुन्द के उत्तराधिकारी जगतसिंह को दिल्ली बुला भेजा। जगतसिंह औरंगजेब के फरमान को पाकर दिल्ली के लिए रवाना हुआ। उस समय औरंगजेब दारा का पीछा करता हुआ पंजाब की ओर गया हुआ था। जगतसिंह भी पंजाब की ओर चला। सतलज के समीप जगतसिंह ने औरंगजेब से मुलाकात अगस्त १६५८ ई० को की। इस अवसर पर औरंगजेब ने खिलअत देकर जगतसिंह को २० ० का मनसबदार बनाया[2]। पंजाब से लौट कर औरंगजेब शुजा की ओर चला। शुजा शाहजहाँ का द्वितीय पुत्र था। बंगाल का वह सूबेदार बनाया गया था। शाहजहाँ की बीमारी के समय वह वहाँ का स्वतन्त्र शासक बन बैठा और दिल्ली प्राप्ति के लिए दारा के विरुद्ध बढ़ आया परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। सामूगढ़ के मैदान में दारा औरंगजेब से हार गया। वह पंजाब की ओर भागा। औरंगजेब ने उसका पीछा किया। इसका लाभ उठा कर शुजा ने दिल्ली लेने का पुनः प्रयास किया। वह दिल्ली की ओर बढ़ा। औरंगजेब दारा का पीछा छोड़ शुजा को रोकने के लिये आगरे की ओर गया। कोटा के शासक जगतसिंह हाड़ा व उसके चाचा किशोरसिंह हाड़ा को शाही फरमान प्राप्त हुआ कि वे शुजा को आगरे की तरफ बढ़ने से रोके। खजुहा के रणक्षेत्र में शुजा से भयंकर युद्ध हुआ। जोधपुर नरेश इस युद्ध में औरंगजेब का साथ दे रहा था परन्तु गुप्त रूप से वह शुजा के पक्ष में योजना बना रहा था अतः युद्ध के पहले ही उषाकाल के समय शाही फौज को लूटता हुआ वह आगरे की तरफ चला गया। जगतसिंह ने औरंगजेब का साथ

---

१ आलमगीरनामा पृ० ६६-६७ हाड़ा राजस्थान भाग १ पृ० १६-२२।
२ वंशभास्कर तृतीय भाग पृ० २७१८ हाड़ा राजस्थान जिल्द १ पृ० १६२१।
३ सरकार हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब जिल्द २, पृ० १११-११४।

नही छोडा। विजयश्री औरगजेब को हाडा राजपूतो की वीरता के कारण प्राप्त हुई।

राजपूतो का सहयोग पाकर औरगजेब ने अपनी शक्ति को सुदृढ करली। परन्तु शीघ्र ही वाद मे कट्टर सुन्नी होने के कारण वह राजपूतो को दूर रख कर मुसलमानी शासन व्यवस्था के आधार पर राज्य करने लगा। हिन्दुओ के विरुद्ध ध्वसात्मक नीति अपनाई गई। जब उसने १६७९ ई० मे मारवाड पर आक्रमण किया[1] तो राजपूताने के राजपूत शासको को यह मुगलाई चुनौती थी परन्तु फिर भी कोटा के शासक जगतसिंह ने मुगलाई सेवा मे तन, मन, धन लगा दिया। दक्षिण मे शिवाजी के विरुद्ध मुगल शक्ति को हाडा राजपूतो से सशक्त करने का भार उस पर सौंपा गया। जगतसिंह औरगाबाद मे रह कर दक्षिणी युद्धो मे भाग लेने लगा। मारवाड मे औरगजेब ने मन्दिर-ध्वस करने की नीति अपनाई। कोटे का शासक अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति का था। अत कही औरगजेब की इस नीति का शिकार उसके गृह-देवता श्रीनाथजी का मन्दिर नही हो जाय, उसके लिए उसने अपने मन्त्रियो को सूचना भेजी कि श्रीनाथजी की प्रतिमा बोरावा के स्थान पर सुरक्षित की जावे। जगतसिंह दक्षिण मे हैदराबाद के घेरे के युद्ध मे लडता हुआ मारा गया[2]। सम्भवतः उसकी मृत्यु सन् १६८३ ई० मे हुई हो[3]।

जगतसिंह के कोई पुत्र न होने के कारण उसका चाचा किशोरसिंह गद्दी पर बैठा। वह मुगल सेवा मे रहता आया था। खजहा के रणक्षेत्र मे शुजा के विरुद्ध उसने युद्ध किया। दक्षिण मे मराठो के विरुद्ध मुगलाई स्वामी-भक्ति का परिचय उसने दिया। बीजापुर, गोलकुण्डा को विजय करने के लिए उसने मुगलो के लिए हाडा-रक्त बहाया। राज्याभिषेक के कुछ समय पहले हो उसे एक हजार का मनसब प्राप्त हुआ था। राज्याभिषेक के बाद दक्षिण की ओर वह प्रस्थान करने लगा। वह अपने सब पुत्रो को अपने साथ ले जाना चाहता था परन्तु उसके ज्येष्ठ पुत्र बिशनसिंह ने मुगल सेवा में रहने से इन्कार कर दिया। इस पर किशोरसिंह ने उसे राज्य-च्युत कर दिया और अन्ते का जागीरदार बना दिया।

---

१ जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह की मृत्यु १६७८ ई० मे जमरूद (काबुल के पास) मे हो जाने के कारण मारवाड की गद्दी पर उसका पुत्र अजीतसिंह शासक घोषित किया गया परन्तु औरगजेब ने इसे स्वीकार न कर मारवाड को अपने अधीन कर लिया।

२ टाड राजस्थान जिल्द ३, पृ० १५२३।

३ टाड के अनुसार इसकी मृत्यु सम्वत् १७२६ वि० स० को हुई परन्तु सम्वत् १७४० मे दक्षिण के एक फराश की जमानत देने का उल्लेख राजकीय कागजो से प्राप्त हुआ है अत सम्वत् १७४० के आसपास वह जीवित था।

बीजापुर के घेरे में किशोरसिंह ने औरंगजेब का पूर्ण विश्वास जीत लिया था। इब्राहिमगढ़ और हैदराबाद के घेरे में जगतसिंह ने मुगलाई-शक्ति को दृढ़ बनाया था। मराठा शासक शम्भाजी से रायगढ़ व बसन्तगढ़ छीनने में कोटा के महाराव का प्रमुख हाथ रहा। जिस समय दक्षिण में औरंगजेब युद्ध कर रहा था उत्तर में जाटों ने विद्रोह कर दिया। शाहजादा बेदारबख्त व किशोरसिंह जाटों के विद्रोह को दबाने के लिए भेजे गए। सन् १६८८ ई० में वह पुन: दक्षिण की ओर चला गया और अर्काट में राजाराम भोंसले से युद्ध करता हुआ घायल हो गया। टाड का कथन है कि किशोरसिंह दक्षिण में अर्काट के किले पर दीवार चढ़ते हुए गिर कर मर गया था। शिवाजी का द्वितीय पुत्र राजाराम जिन्जी में रहा करता था। मुगल सेनापति जुल्फिकारखाँ ने जिन्जी का घेरा डाल कर राजाराम को मुगलाई अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य करने लगा। यह घेरा कई वर्षों तक चलता रहा। जिन्जी के क्षेत्रों में अर्काट पर मुगलाई अधिकार करने में किशोरसिंह ने प्रमुख सहायता दी। जिन्जी में मुगलों की सफलता अत्यन्त कठिनाई से हो रही थी। मुगल सेनापति जुल्फिकारखाँ अर्काट में शरण लेकर जिन्जी युद्ध का संचालन करता रहा। मरने के समय किशोरसिंह चारहजारी मनसबदार था।

किशोरसिंह के मरते ही सन् १६९५ ई० में कोटा गद्दी के लिए उसके पुत्रों में गृह-युद्ध छिड़ गया। ज्येष्ठ पुत्र विशनसिंह ने अपना अधिकार प्रस्तुत किया। औरंगजेब ने रामसिंह को कोटा का शासक स्वीकार कर उसे ३००० का मनसबदार बनाया। मुगलाई सहायता से रामसिंह कोटा के इस गृह-युद्ध में सफल हुआ। सन् १६९६ ई० में रामसिंह का राज्याभिषेक हुआ। वह पुन: दक्षिण की ओर चला गया। कर्नाटक में अरनी को अपना गृह-केन्द्र बना कर[1] मुगल सेना को सहायता देने लगा। दक्षिण में रहते रामसिंह ने मराठा शासक राजाराम से मित्रता स्थापित करली। जब राजाराम जिन्जी के किले में घिर गया और उसके सेनापतियों सन्ताजी घोरपड़े व धन्नाजी जादव में संघर्ष होने शुरू हुए तो राजाराम ने जुल्फिकार से संधि की वार्ता शुरू की। अगस्त सन् १६९७ ई० में राजाराम ने रामसिंह के मार्फत शान्ति प्रस्ताव मुगल सेनापति के पास भेजे। औरंगजेब शान्ति के पक्ष में न था। वह जिन्जी पर मुगलाई अधिकार चाहता था। राजाराम में नेतृत्व व साहस की कमी होने के कारण ऐसी स्थिति में जिन्जी से भाग निकला और अपने कुटुम्ब को वहीं छोड़ दिया। जिन्जी पर १६९८ ई

१ सरकार हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब भाग २ पृ १४।

में मुगलो का अधिकार हो गया। रामसिंह ने राजाराम के कुटुम्ब की रक्षा कर उन्हे उत्तर मे राजाराम के पास भिजवा दिया। इसके वाद औरगजेव की मृत्यु तक रामसिंह दक्षिण मे ही रहा। वहाँ शाहजादा आजम से घनिष्ट सम्वन्ध स्थापित कर लिया।

औरगजेव की मृत्यु अहमदनगर मे मार्च १७०७ ई० को हुई। उसकी मृत्यु के वाद दिल्ली सिंहासन के लिए शाहजादा आजम और मुअज्जम मे युद्ध की सम्भावना वढने लगी। दक्षिण मे शाहजादा आजम ने अपने को सम्राट घोपित कर दिया[1]। रामसिंह ने उसे सम्राट स्वीकार कर उसे सहायता दी। मुअज्जम ने भी उत्तर-पश्चिम क्षेत्र से रवाना होकर १ जून १७०७ ई० को दिल्ली पर अधिकार कर लिया। औरगजेव की मृत्यु के समय रामसिंह जुल्फिकार के साथ कर्नाटक मे था। वहाँ से वह चल कर २ अप्रेल को औरगावाद मे आजम से मिला। १४ मई को शाही सेना के साथ सिरोज पहुँचा। सीरोज से जुल्फिकार व रामसिंह के नेतृत्व में ४५००० सेना चम्वल के थागो पर कब्जा करने के लिए भेजी गई। उधर मुअज्जम के पुत्र अजीम चम्वल के थागो पर अधिकार करने आ रहा था। रामसिंह व जुल्फिकार का नूरावाद[2] के पास चम्वल नदी पर अजीम से सघर्ष हुआ जिसमे अजीम का सेनानायक मोहतशखा तोपें छोड कर भाग गया। मुअज्जम ने औरगजेब के वसियतनामे के अनुसार साम्राज्य का विभाजन कर राज्य करने की सन्धि करनी चाही पर आजम ने इसे स्वीकार नही किया[3]। बूदी से राव बुद्धसिंह ने मुअज्जम का साथ दिया। इस प्रकार हाडा राजपूतो की दोनो शाखाओ ने प्रथम वार एक दूसरे के विरुद्ध लडना तय किया। वास्तव मे दोनो राव 'पाटन' पर प्रभुत्व के लिए मुगलाई सहायता चाहते थे। आजम ने औरगावाद मे रामसिंह को वचन दिया था कि "मुअज्जम की सहायता से बुद्धसिंह ने तुमसे पाटन छीन लिया है, मैं तुमको बूदी देता हूँ। तुम मेरे पक्ष मे लडो[4]।" जून १८, १७०७ ई० को जाजव के रणक्षेत्र मे औरगजेव के पुत्रो मे सघर्ष हुआ। आजम हार गया व मारा गया[5]। रामसिंह भी इस युद्ध मे

---

१ १४ मार्च १७०७ ई०।

२ ग्वालियर से १६ मील उत्तर की ओर।

३ इरविन लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृ० २२।

४ वशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० २९४७।

५ जुल्फिकार भाग कर ग्वालियर चला गया और जयपुर नरेश जयसिंह अपने सिर पर दुशाला लपेट कर चपके से मुअज्जम से जा मिला। (वशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० २९८०-२९८३।

वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारा गया। युद्ध की समाप्ति पर मुअज्जम के आदेश से रामसिंह का शव रणक्षेत्र से उठा कर मुरादाबाद लाया गया और वहाँ उसका दाह-संस्कार हुआ। रामसिंह मुगलों का तीनहजारी मनसबदार था तथा मुगल दरबार में वह अपने तोपखाने के कारण भड़वाया कहलाने लगा था।

मुगलों का पतन और कोटा के हाड़ा शासक—औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल राजनीति का दिवाला स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा। प्रान्तीय शक्तियाँ स्वतन्त्र होने लगी। केन्द्रीय शक्ति में शिथिलता आई और राज्य में ऐसा कोई कूटनीतिज्ञ नहीं था जो सही नेतृत्व दे सके। जाजव के युद्ध के बाद मुअज्जम विजयी हो बहादुरशाह के नाम पर दिल्ली सिंहासन पर बैठा। बूंदी के राव बुद्धसिंह ने बहादुरशाह से कोटे पर अधिकार करने का फरमान प्राप्त कर लिया[1]। कोटा का रामसिंह व उसके उत्तराधिकारी मुअज्जम-विरोधी होने के कारण कोटा को मुगलाई कोप से बचा न सके। बुद्धसिंह ने अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि आक्रमण कर नव शासक राव भीमसिंह से कोटा छीन लें। बुद्धसिंह स्वयं जयपुर और बेंगू विवाह करने चला गया। बूंदी के मन्त्रियों ने दो बार कोटे पर चढ़ाई की परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। बहादुरशाह अधिक समय तक शासन न कर सका। फरवरी १७१२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद जहाँदारशाह गद्दी पर बैठा। वह कुछ मास के लिए ही शासन कर सका क्योंकि सयद भाई अब्दुल्ला व हुसैनअली की सहायता से फर्रुखसियार ने फरवरी १७१३ में दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

फर्रुखसियार के गद्दी पर बैठने पर राजनैतिक स्थिति ने पलटा खाया। बुद्धसिंह ने फर्रुखसियार को कोई सहायता नहीं दी। कोटा के राव भीमसिंह ने सैयद-बन्धुओं का पक्ष लिया था। इस सहायता के बदले में पुरस्कारस्वरूप भीमसिंह को बूंदी पर अधिकार करने का मुगल फरमान दिया[2]। भीमसिंह ने बूंदी पर आक्रमण कर उस पर सन् १७१३ ई० के अन्तिम माह में अधिकार कर लिया। भीमसिंह का बूंदी पर अधिक समय तक अधिकार न रह सका। जयसिंह की मध्यस्थता द्वारा बुद्धसिंह पुनः मुगल शासन का प्रिय पात्र बन गया। बूंदी पर पुनः बुद्धसिंह का अधिकार हो गया। बारां व मऊ के परगने भी बुद्धसिंह को दे दिए गए। भीमसिंह व बुद्धसिंह की शत्रुता का अन्त फिर भी न हुआ। सन् १७१६ ई० को सैयद-बन्धुओं ने मराठों व राठौड़ी सहायता से फर्रुखसियार

---

१ वंशभास्कर चतुर्थ भाग पृ० २९९८-९९।

२ वंशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० ३१४०-४२।

को गद्दी से उतार दिया। भीमसिंह ने वुद्धसिंह के विरुद्ध सैयद-भाइयो की सहायता प्राप्त की। भीमसिंह की सलाह पर, कि कही वुद्धसिंह और जयसिंह फर्रुखसियार का पक्ष न लेलें। अत उनका काम तमाम कर देना चाहिए। सैय्यद वन्धुओ ने २२ फरवरी १७१९ ई० को फर्रुखसियार पर दवाव डाला कि जयसिंह व वुद्धसिंह को दिल्ली मे चले जाने का आदेश देदे। इसी दिन भीमसिंह ने वुद्धसिंह की हत्या करने के लिए उस पर आक्रमण कर दिया। वुद्धसिंह का दीवान व कई आदमी मारे गए। भीमसिंह को विजय प्राप्त हुई और वुद्धसिंह अपने वचेवचाए सैनिको को लेकर सराय अलीवर्दीखा मे जाकर जयसिंह का आश्रय प्राप्त किया[1]। सैय्यदो का पक्ष ग्रहण करने से भीमसिंह का शाही दरवार मे वहुत सम्मान वढा। उसको पचहजारी मनसव दिया गया। बूदी राज्य, पठार, माडलगढ से बूदी तक के इलाके और खीचीपाडे तथा उमटवाडे का उसको पट्टा दे दिया गया[2]। इसी अवसर पर गागरोण का किला भी उसे सुपुर्द किया गया। फर्रुखसियार को गद्दी से उतारने मे (२८ फरवरी १७१९ ई०) भीमसिंह ने सैय्यद अजीतसिंह की सहायता की। उसके एक दिवस पहले २७ फरवरी को ही शाही किले पर अधिकार भीमसिंह व कुतुवमुल्मुल्क ने कर लिया था। फर्रुखसियार के वाद मुगलो की राजधानी दो दल—इरानी व तुरानी—मे वट गई। सैयद-वन्धुओ ने एक के वाद एक नया शासक मुगल गद्दी पर वैठाया। दक्षिण का सूवेदार निजाममुल्मुल्क सैयदो का प्रभाव नष्ट करने के लिए तैयारी करने लगा। इसी वीच मे इलाहावाद का सूवेदार छवेलाराम ने सैयदो के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। राव राजा वुद्धसिंह ने छवेलाराम को दस हजार सैनिको की सहायता दी। इस पर सैयदो ने भीमसिंह और दिलावरखा को १५००० सैनिक देकर बूदी पर आक्रमण करने भेजा। १२ फरवरी १७२० के आसपास यह युद्ध हुआ, जिसमे ६००० राजपूत काम आए[3]। इसी समय निजामुल्मुल्क दक्षिण से मालवा पहुँचा। सैयदो का हुक्म आया कि दिलावरखा, भीमसिंह और गजसिंह का साथ लेकर वह अपनी सेना का पडाव मालवा प्रान्त की सीमा पर डाले। इस अवसर पर भीमसिंह को वचन दिया गया कि निजाम का दमन होने के पश्चात् उसको उच्च कोटि का महाराजा बनाया जावेगा,

---

१ खफीखा जिल्द २, पृ० ८०६

वशभास्कर के अनुसार यह युद्ध सन् १७१७ मे हुआ। यह असत्य है, क्योकि फारसी तवारीखो में सन् १७१९ ई० मे फर्रुखसियार का राज्यगद्दी पर से उतरना लिखा है।

२ टाड राजस्थान, भाग ३, पृ० १५२८।

३ खफीखां जिल्द २, पृ० ८४४-८५१।

सातहजारी मनसब दी जायगी। साथ ही शाही मरातब भी मिलेगा[1]। भीमसिंह २००० राजपूतों सहित व गजसिंह ३०० राजपूतों सहित युद्धक्षेत्र में आ डटा। पम्धार के स्थान पर १९ जून १७२० ई० को युद्ध हुआ। युद्ध के पहले निजाम ने भीमसिंह को एक पत्र लिख कर अपनी ओर करना चाहा[2] परन्तु भीमसिंह अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहा। कोराई खोराखा के क्षेत्र में युद्ध करते हुए तोप के गोले लगने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। भीमसिंह मरने के समय पंचहजारी मनसबदार था और उसे फर्रुखसियार ने महाराव की पदवी से विभूषित किया था।

भीमसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अर्जुनसिंह गद्दी पर बैठा। मुहम्मदशाह ने उसे खिलअत और मसनदनशीनी भजी। १७२ ई० में सयद भाइयों का पतन हो गया। अर्जुनसिंह सैयदों का खैरख्वाह होने से मुहम्मदशाह ने उसे कोई तरक्की नहीं दी। अर्जुनसिंह के बाद दुर्जनशाल कोटे का शासक हुआ। इस समय मुगल शक्ति अत्यन्त क्षीण हो चली थी। प्रांतीय शक्तियों को स्वतन्त्र होने का पूर्ण अवसर प्राप्त हो रहा था। जयपुर का जयसिंह वृहद जयपुर-निर्माण का स्वप्न देखने लगा। उसने बूंदी व कोटा पर अधिकार करने का प्रयास किया। मुगल शक्ति इन राजपूत शासकों की अनुशासनहीनता को दबाने में अशक्त थी। दक्षिण में मराठे शक्तिशाली हो रहे थे। वे मुगल शक्ति के अवशेषों पर हिन्दूपद बादशाही की स्थापना में संलग्न थे। राव दुर्जनशाल कोटा का अंतिम शासक था जिसने मुगलों से संबंध बनाए रखा। मुहम्मदशाह ने राव दुर्जनशाल को टीके का हाथी खिलअत तथा मनसदनशीनी भजी। दुर्जनशाल जब दिल्ली गया तो वहाँ का गोवध उसे बुरा लगा। उसने शाही कोतवाल और कसाइयों को मार डाला पर बादशाह ने उसको कोई दण्ड नहीं दिया।

इसी समय मराठे उत्तर भारत में मालवा व बुन्देलखण्ड से प्रवेश कर रहे थे। मालवा का सूबेदार जयसिंह मराठों को रोकने में असफल हो रहा था। १७३५ ई० में वजीर कमरुद्दीन व खानदौरान को बुन्देलखण्ड व राजपूताने की ओर भेज कर मराठों के प्रसार को रोकना चाहा। रास्ते में महाराव दुर्जनशाल खानदौरान की सेना से आ मिला। परन्तु जब यह सेना मुकन्दरा घाटी पार करके रामपुरे की ओर आगे बढ़ी तो दुर्जनशाल कोटा रुक गया और अपनी सेना को शाही सेना के साथ कर दिया। रामपुरे में खानदौरान जयसिंह अभय सिंह को सिंधिया व होल्कर ने आठ दिन तक घेरे रख कर लूटपाट की।

---

१ वमीका जिल्द २ पृ ५२१।

२ निजाम व भीमसिंह पगड़ीबदल भाई थे। टाड राजस्थान जिल्द ३ पृ १५२९।

दुर्जनशाल सेना लेकर खानदौरान की महायता को पहुँचाने के लिए प्रयाण करने लगा परन्तु होल्कर व मिन्धिया ने उसको शाही लश्कर तक नही पहुँचने दिया। हार कर दुर्जनशाल कोटा लौट गया[1]। खानदौरान ने कोटा मे मरहठो से सन्धि करली। जयसिह के प्रयत्न से यह सन्धि की गई थी कि मरहठो को २२ लाख रुपयो की चौथ दी जायेगी। इस घटना के वाद कोटा पर मुगल प्रभाव समाप्त हो गया और उमका स्थान मरहठो ने ले लिया।

मुगल शासन का कोटा पर प्रभाव—सन् १६२४ ई० मे जहाँगीर की आज्ञा से माधोसिह कोटा का राजा हुआ और मुगलो की देन कोटा, मुगल राज्य-शक्ति की सेवा मे प्रवेश होकर सन् १७३५ ई० तक वना रहा। एक सदी मे कोटा मुगलाई ढग मे रग गया। कोटा के शासक तीनहजारी मनसवदार से वढ कर पचहजारी मनमवदार वन गए। 'राव' से वे 'महाराव' की पदवी धारण करने लगे। तीनहजारी मनमवदार को प्रथम श्रेणी के रूप मे २४,६०० रुपये मासिक मिलते थे। कोटा नरेशो ने मुगलाई सेवा मे रह कर अटूट स्वामिभक्ति का परिचय दिया। सारा राजपूताना मुगल राज्य का एक सूवा माना जाता था जिसका सूवेदार अजमेर मे रहता था। यह प्रान्त कई परगनो मे विभक्त था। सूवेदार की नियुक्ति शाही फरमान द्वारा होती थी। प्रत्येक कोटा शामक को गद्दी पर वैठते समय शाही फरमान लेना पडता था। यह मुगल नियन्त्रण का सूचक था पर मुगलो का नियन्त्रण इस सीमा तक ही सीमित था कि वहाँ के शासक शाही सेवा मे उपस्थित रहें तथा शाही आज्ञाओ से नियुक्त अफसरो से सहयोग करते रहे। आन्तरिक रूप मे वे स्वतन्त्र थे। कोटा राज्य मे तीसरा अकुश मुगलाई सिक्को की सभ्यता के रूप मे था। गागरोण के किले मे इसके निर्माण की एक टकमाल भी थी।

कोटा के प्रत्येक परगने मे हकत व पडत जमीन का हिसाव, उसकी वृद्धि तथा कृषि की उन्नति करने का कार्य कानूगो के हाथ मे रहता था। यह कानूगो शाही अफसर होता था जिसकी नियुक्ति शाही फरमान से होती थी। जागीरदारो के अन्याय व कठोरता का हाल लिख कर वह सम्राट को भेजता था। भूमि का लगान, आमद व खर्च का हिसाव लिख कर प्रति वर्ष वह दफ्तरखाना-आली मे भेजता था। परगने के हाकिम, आलिम उसकी सलाह से कार्य करते थे। यह पद वश-परम्परानुगत था। भूमि कर का दो प्रतिशत कानूगो की रसूम होती थी। कोटा मे नकद वेतन की प्रणाली नही थी। केन्द्रीय सता का व्यक्ति होते

---

१ इरविन लेटरमुगल्स जिल्द, २, पृ० ३०४।

पृथक नही था। अपील का व्यवस्थित रूप नही किया गया था। दण्ड का कोई वर्गीकरण नही किया गया था। राजाज्ञा से ही दण्ड दिया जाता था। पुलिस कोतवाल ही न्यायाधीश बन जाता था। अत कोतवाली-चबूतरा न्यायालय और भय का केन्द्र हो गया था। अपील जब कभी होती तो लिखित नही होती थी। तुरन्त न्याय की व्यवस्था थी। मुगल बादशाहो की तरह कोटा नरेश की कोप-दृष्टि ही सब कुछ थी।

साधारण जीवन व दरबारी जीवन मे मुगलो के प्रभाव की स्पष्ट छाप दिखाई दे सकती थी। रावो के दरीखाने की बैठक मुगल दरबार की बैठक के समान थी। मुगलो मे मनसब के अनुसार खडे रहने की व्यवस्था की जाती थी। कोटा के राज्य दरबार मे यह ध्यान रखा जाता था कि कौनसा जागीरदार किस हैसियत का है और वह अपने स्थान पर बैठता है या नही। जागीरदारो को सेवाओ के बदले ताजीम दी जाती थी। कोटा मे राजकीय पुरुषो का पहनावा मुगलो जैसा था। चूडीदार पायजामा, घाघरकोट, मुगलाई-पगडी, बगलबदी आदि सरदार पहनते थे। उत्सव व मेले मुगलो की तरह होने लगे। गणगौर मीना बाजार की तरह, हाथियो की होली, नावडे की होली आदि सब मुगलो की तरह होते थे। महफिल व दावतो मे मुगल शिष्टाचार का प्रचार हो गया था। हुक्का और इत्र, हलुवा और खिचडी मुगल प्रभाव से बनने लगी। राज्य मे फारसी का प्रयोग होने लगा, विशेष कर अन्य रियासतो से पत्र-व्यवहार करते समय। कला के क्षेत्र मे गृह-निर्माण कला मे महरावें तथा मीनाररूपी स्तम्भ-प्रणाली, छज्जे और जालिएँ मुगलो के सम्पर्क मे आने के बाद ही कोटे मे बनने लगी। कोटा मे मुगल सास्कृति का प्रभाव इतना गहरा पडा कि मराठो व अग्रेजो के प्रभाव काल मे रहते हुए भी आज वे स्पष्ट रूप से जन-जीवन मे देखे जा सकते हैं।

राजनैतिक इतिहास

कोटा राज्य का मरहठों से सम्बन्ध

दक्षिण भारत में मुगल साम्राज्य के विरुद्ध राष्ट्रीयता की लहर उठ खड़ी हुई। शिवाजी के नेतृत्व में मराठे सामाजिक व धार्मिक प्रवृत्तियाँ संयुक्त व संगठित होकर एक राजनैतिक शक्ति बन गयी। शिवाजी ने सन् १६४७ में प्रथम बार बीजापुर के सुल्तान के विरुद्ध एक राजनैतिक बगावत कर नए स्वतन्त्र राज्य की स्थापना प्रारम्भ की। १२ वर्ष तक १६५९ तक बीजापुर-मराठा संघर्ष होता रहा। अन्त में नव चेतित मराठा शक्ति विजयी रही। १६६० से १७०७ तक मुगल मराठा संघर्ष चलता रहा। शिवाजी की राजनैतिक शक्ति को कुचलने का प्रयास औरंगजेब ने तीन बार किया। १६६२ ६३ में शायस्ताखाँ को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। १६६५ में जयसिंह ने शिवाजी पर विजय प्राप्त कर उसे आगरा आने को विवश किया वहाँ औरंगजेब ने उसे हमेशा के लिए समाप्त कर देना चाहा और १६६८ से १६७४ तक मुगल-मराठा भयंकर संघर्ष चलता रहा। सफलता शिवाजी को प्राप्त हुई और १६७४ ई० में उन्होंने मराठा राज्य की स्थापना कर ही डाली। जिसका उद्देश्य हिन्दू-पद-पादशाही था। परन्तु सन् १६८० में उनकी मृत्यु हो गयी। मराठा राज्य तो स्थापित हो चुका था पर मुगलाई शक्ति बना रहा जिसने १६८९ में शम्भाजी की हत्या कर मराठा राज्य का अन्त कर दिया। यद्यपि राज्य का अन्त तो नष्ट हो गया परन्तु राष्ट्रीय शक्ति नष्ट न हो सकी। राजा राजाराम के नेतृत्व में उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी ताराबाई के नेतृत्व में मराठी राष्ट्रीयता मुगलों से बराबर टक्कर लेती रही। २० वर्ष के इस लम्बे युद्ध से औरंगजेब की सारी शक्ति नष्ट हो गई। वह स्वयं मराठों को दबाने दक्षिण की ओर गया परन्तु इस राष्ट्रीयता ने उसे बर्बाद कर दिया। १७०७ ई० में वह अहमदनगर में मर गया।

औरगजेब की मृत्यु के बाद उसके लडको मे गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। अत मराठो को कई अर्से के वाद अपने शत्रु से मुक्ति मिली। उस गृह-युद्ध मे शाहजादा मुअज्जम जाजव के युद्ध मे (मार्च १७०७) सफल हो वहादुरशाह के नाम से मुगल सम्राट बना। दक्षिण मे तारावाई के नेतृत्व मे मराठा शक्ति राष्ट्रीय युद्ध तो कर रही थी पर राजा के रूप मे जव सगठित होने का अवसर आया तो एक राजनैतिक स्थिति पैदा हो गई। बहादुरशाह दक्षिण मे मुगलाई प्रभाव रखना चाहता था परन्तु मराठो से युद्ध करने के लिये उसके पास न शक्ति थी, न योग्यता। अत जुल्फिकारखा की सलाह पर उसने शम्भाजी के लडके शाहू को, जो १६८६ मे कैद कर लिया गया था और अब तक मुगल जीवन मे रम रहा था, मुक्त कर दिया गया। जिससे शाहू-तारावाई सघर्ष मे मराठी जन-जीवन पडा रहे और मुगल उमका लाभ उठा सके। शाहू मे रक्त तो मराठी था, वह भी शिवाजी का परन्तु मराठी गुण एक भी नही था। वह तो मुगलाई तौर-तरीके, आरामपसन्द जीवन का व्यक्ति था। शिवाजी की गद्दी जव उसने १७०८ मे मागी तो तारावाई ने देने से इन्कार कर दिया। ताराबाई एक राजनैतिक औरत थी पर नेतृत्व करने के गुण से अनभिज्ञ थी। अत कई मराठा सरदार उससे अप्रसन्न थे। उन्होने कमजोर शाहू का नेतृत्व स्वीकार किया जिससे अपनी मन-मानी कर सकें। मराठी गृह-युद्ध (१७०८ ई०) मे सफल हुआ।

शाहू सफल तो होगया परन्तु मराठो की राजनैतिक स्थिति से वह अनभिज्ञ था। उसकी कई समस्याएँ थी। उसका व्यक्तित्व उन समस्याओ को सुलझाने मे पूर्ण अयोग्य था। मराठा सरदार कभी तारावाई, कभी शाहू का साथ देकर अपनी शक्ति का प्रसार कर रहे थे। ऐसी परिस्थितियो मे शाहू के सेवक और भक्त के रूप मे बालाजीविश्वनाथ पेशवा के पद पर नियुक्त किया गया। पेशवा की सरक्षकता में मराठी पुन सगठित और केन्द्रित होने लगे। यह काल मुगल-पतन काल था। मुगलो के पतन काल मे दक्षिण की (व्यवहारिक रूप से) सार्व-भौमिक शक्ति मराठो ने १७१६ मे मराठा-मुगल सन्धि द्वारा प्राप्त करली। वास्तव मे यह सन्धि १७१६ के भारतीय राजनैतिक इतिहास मे एक नये युग को जन्म देती है जवकि मुगलो के वाद अखिल भारतीय शक्ति के रूप मे मराठे प्रवेश करते है। वालाजी विश्वनाथ ने स्वय दिल्ली आकर यह सन्धि मुगल शासको से की। लौटते समय वह राजपूताने की ओर से जाने लगा। धौलपुर, जयपुर होता वह दक्षिण को लौट गया। उसके साथ उसका पुत्र वाजीराव था। जो हिन्दू-पद-पादशाही का निर्माता कहा जा सकता है। मुगल काल की पत-नावस्था मे दक्षिण भारत में तो मराठा शक्ति सार्वभौमिक हो गयी परन्तु उत्तरी

भारत में राजपूतों की शक्ति सार्वभौमिक हो सकती थी पर यह नहीं हुआ। जब बाजीराव पेशवा बना तो उसने राजपूत मराठा सहयोग नीति अपनानी चाही पर शीघ्र ही राजपूती रियासतों के आपसी झगड़ों ने उसे बतला दिया कि राजपूत मराठों का साथ नहीं दे सकते। अतः एकाकी रूप में बाजीराव ने उत्तरी भारत में मराठी शासन स्थापित करनी चाही। राजपूत शासक, विशेष कर जयपुर और जोधपुर के शासक मुगल सूबेदार बन कर मराठों के प्रसार को रोकते रहे लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। उल्टे मराठों को विरोधी बना लिया। मुगलों को पतन से वे बचा न सके। १७४१ में बालाजी बाजीराव पेशवा ने मुगलों से उत्तरी भारत की प्रभुता छीनना प्रारम्भ कर दिया तो वे राजपूताने के शासकों के आपसी झगड़ों के न्यायकर्ता के रूप में प्रगट हुए और मराठे-राजपूत जहाँ मैत्री और सहयोगी होकर भारत में राज्य पर बढ़ती हुई अंग्रेजी शक्ति का विरोध कर सकते थे वह नहीं कर सके। मराठे राजपूताने के शासकों का धन शोषण करने में लग गये।

मराठों-राजपूतों का प्रथम सम्पर्क दो विरोधी शक्तियों के रूप में हुआ। राजपूतों ने मराठी राष्ट्रीयता को दबाने के लिये मुगल सम्राटों को तन मन धन से सहयोग दिया। कोटा के महाराव भी इससे वंचित नहीं थे। शिवाजी के विरुद्ध राव जगतसिंह ने औरंगजेब को पूर्ण सहायता दी। औरंगजेब ने जब सन् १६८९ में रायगढ़ पर अधिकार कर मराठा राजा सम्भाजी को गिरफ्तार कर उसका सिर कटवा लिया तो उस समय किशोरसिंह भी औरंगजेब के साथ लड़ा था[1]। वसन्तगढ़ के घेरे में तथा उस पर शाही सेना का अधिकार कराने में किशोरसिंह ने अपने हाड़ा राजपूतों का रक्त बहाया था। किशोरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र विष्णुसिंह ने अपने पिता के साथ दक्षिण में जाकर मराठों से लड़ने को इन्कारी करदी तो उसे राज्यच्युत कर दिया और अन्त की जागीर देदी[2]। उसका दूसरा पुत्र रामसिंह मराठों के विरुद्ध शाही सेना में बना रहा। उसने दक्षिण भारत में राजाराम के विरुद्ध मुगल सेनापति जुल्फिकारखां के नेतृत्व में युद्ध किया। सन् १६९९ से १७०७ तक वह मराठों से लड़ता रहा।

दक्षिण में करनाटक (कर्नाटक) के जिले में रामसिंह ने अपना निवास-स्थान बनाया जहां से मराठों की दक्षिण की राजधानी जिन्जी का घेरा निर्देशन हो सके। मुगलों की स्थिति में एक लाभ इस बात से पहुंचा कि राजाराम के दोनों सेनापति सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जादव आपस में लड़ पड़े। राजाराम ने

१ सरकार हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब जिल्द ४ पृ ७।

२ टाड राजस्थान जिल्द ३ पृ १२२६।

अपनी स्थिति को बचाने के लिये अगस्त सन् १६९७ मे रामसिंह द्वारा मुगलो से सन्धि करनी चाही पर औरगजेब ने इसे स्वीकार नही किया[1] । जिन्जी का पुन घेरा डाला गया जो दो माह तक चलता रहा । रामसिंह इस घेरे मे 'शेतानी दरी' नामक दरवाजे के सम्मुख मुगल पंक्ति का अध्यक्ष था । राजाराम को २ जनवरी १६९८ को जिन्जी छोड कर भागना पडा परन्तु उसका कुटुम्ब पीछे ही रह गया । उस कुटुम्ब की सुरक्षा का भार रामसिंह ने लिया और सकुशल उन्हे उत्तर की ओर राजाराम के पास भिजवाने का प्रबन्ध कर दिया । इसके बाद भी रामसिंह औरगजेब के देहावसान तक दक्षिण मे लडता रहा और बीजापुर, रामगढ, वसन्तगढ-विजय मे सहायता देता रहा ।

सन् १७०७ से १७३४ तक कोटा नरेश उत्तर मे मुगल राजनीति के दाव-पेच मे फसे रहे । दक्षिण में मराठे पेशवाओ के नेतृत्व मे अपनी शक्ति का प्रसार करते रहे । कोटा के शासक मुगलो के अत्यन्त भक्त थे । अत जब पेशवा बाजीराव गुजरात, मालवा, बुन्देलखड मे मराठी प्रसार कर रहा था, उस समय वे मुगल शक्ति को सैनिक व आर्थिक सहायता देते रहे । मराठो की नीति कभी स्थिर नही रही । जिन राज्यो ने या क्षेत्रो ने उनकी आधीनता स्वीकार करली थी वहाँ वे अपना साम्राज्य या स्थायी प्रबन्ध नही करते थे । अकारण लूटमार करने में व धन वसूल करने मे वे नही हिचकते थे । वे चौथ और सददेशमुखी तो प्राप्त करते ही थे, इसके अलावा कई प्रकार का कर भी लेते थे जिनमे नजराना व जुर्माना मुख्य थे । जो राज्य उनका सामना करते, उस पर तो टिड्डी-दल की तरह टूट पडते थ । उनके गावो, खेतो और खलिहानो को नष्ट कर देते थे ।

मालवा पर अधिकार हो जाने से कोटा पर उनकी आख बराबर पडती रही । क्योकि कोटा मालवा का पडोसी प्रान्त था । मराठो का प्रथम आतकीय सम्पर्क कोटा राज्य के महाराव शत्रुशाल के समय मे हुआ । राजस्थान मे मराठो का प्रवेश बूदी, जयपुर और जोधपुर के उत्तराधिकारी युद्धो से प्रारम्भ होता है । १७३४ ई० में पिलाजी जादव ने कोटा और बूदी पर आक्रमण करने की योजना वनाई थी पर वह योजना योजना ही रही । होल्कर और सिन्धिया ने कुछ लूट-पाट अवश्य की[2] । सन् १७३५ मे पेशवा वाजीराव के मालवा-प्रसार को रोकने के लिये मुगल बादशाद मोहम्मदशाह ने वजीर कमरुद्दीन को बुन्देलखड की ओर, और वख्शीखाँ खानदौरान को राजपूताना और मालवे की ओर भजा । सदाराव दुर्जनशाल ने अपनी सेना खानदौरान की सेवार्थ मे भेजी । मुकन्दरे

---

१ सरकार जिल्द ५, पृ० १०५ ।

२ सरकार फाल ऑफ-दी मुगल अम्पायर, पृ० २४९ ।

डाल दिया। चालीस दिन तक घेरा पडा रहा। अन्त मे महाराव ने सन्धि करली। इस सन्धि के अनुसार महाराव ने पेशवा को दस लाख रुपये दिये। आठ लाख रुपये तत्काल व २ लाख का दस्तावेज लिख दिया[1]। कोटा मरहठो मे राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। पेशवा ने वालाजी यशवन्त नामक एक सारस्वत ब्राह्मण को नियुक्त कर दिया[2]। इस कोकणी ब्राह्मण ने दुर्जनशाल को बरखेडी नामक परगना उरमाल मे जागीर मे दे दिया। इस प्रकार महाराव दुर्जनशाल ने भी मरहठो के विरुद्ध राजपूतो के हुरडा सम्मेलन (सन् १७३४) के सयुक्त निर्णय—कि मरहठो के विरुद्ध राजपूत सयुक्त कारवाई की जावे—का अन्त कर दिया। वालाजी यशवन्त कोटा की मामलात को सिन्धिया, पवार तथा होल्कर तीनो मे विभक्त कर देता था परन्तु यह दशा भी साफ नही होने पायी। बूदी पर जयसिंह ने अपना अधिकार स्थापित करने के लिये वुद्धसिंह को हटा कर दलेलसिंह को राजा बना दिया। वुद्धसिंह और उसके पुत्र उम्मेदसिंह ने मरहठो की सहायता तथा कोटा के राव दुर्जन की सहायता से पुन बूदी पर अधिकार कर लिया। इसी बीच १८४३ ई० मे जयसिंह की मृत्यु हो गई। उसके वाद उसके पुत्र इश्वरीसिंह और माधोसिंह मे गद्दी के लिये युद्ध हुआ। महाराणा उदयपुर, महाराव कोटा व उम्मेदसिंह ने माधोसिंह का साथ दिया। राजमहल की लडाई सन् १७४३ मे जहाँ मल्हारराव का पुत्र खाडेराव २ लाख रुपये देकर वुलाया गया था, माधोसिंह हार गया, परन्तु पेशवा के बीच मे पड जाने के कारण माधोसिंह को जयपुर के चार परगने दिए तथा उम्मेदसिंह को बूदी का राजा ईश्वरीसिंह ने मान लिया। सन्धि हो जाने पर भी ईश्वरीसिंह पुन दलेलसिंह को बून्दी की गद्दी पर वैठाना चाहता था। अत उसने होल्कर से सहायता मागी। बूदी के सहायक कोटा महाराव पर ईश्वरीसिंह व होल्कर ने आक्रमण कर दिया। ६१ दिन तक यह लडाई चली। हार कर सन् १७४८ मे दुर्जनशाल ने सन्धि की बातचीत की। जिसके अनुसार दलेलसिंह को कापरण और केशोराय पाटन दिए गये तथा—कोटा ने चार लाख रुपये देने का वचन दिया परन्तु कुछ दिन बाद सिन्धिया के साथ पत्र व्यवहार करके कोटा के फौजदार हिम्मतसिंह झाला ने ये रुपये माफ करवा दिये[3]।

कोटा मे मरहठी प्रभुत्व—सन् १७५६ मे महाराव दुर्जनशाल की मृत्यु के पश्चात् उसके कोई पुत्र न होने के कारण उसने अन्ता के ठाकुर अजीतसिंह के

---

१ इरविन लेटर मुगल्स जिल्द २, पृ० ३०४। वशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० ३२४१।
२ फाल्के शिंदेशाही इतिहास ची साधणे, जिल्द १, पृ० ३ नो सं ४।
३ डा शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ३९२।

पुत्र शत्रुशाल को गोद लेने की इच्छा प्रकट की परन्तु फौजदार हिम्मतसिंह झाला ने पिता के रहते पुत्र को गद्दी देने की व्यवस्था ठीक नहीं समझी अत अजीतसिंह १७५६ ई० में कोटे का शासक बना। उस समय मरहठे कोटा के 'बादशाह' थे अत जब सिंधिया को मालूम हुआ कि अजीतसिंह बिना उससे पूर्व स्वीकृति कोटे की गद्दी पर बैठ गया तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और एक बृहत् सेना लेकर कोटे पर चढ़ आया। होल्कर और पवार भी आ पहुँचे। ऐसी परिस्थिति देख कर महारानी माता (महाराव दुर्जनशाल की रानी) ने राणोजी सिंधिया को राखी भेज कर भाई बना लिया और नजराने के रूप में राज्य की ओर से चालीस लाख रुपया मरहठों को दिया गया[1]। यह धनराशि चार वार्षिक किश्तों में दी गई। वार्षिक खण्डी इसी में मान ली गई। अन्तिम किश्त के दो लाख रुपये छूट के दिये गये। तथा मरहठों का राजपूताने के अन्य भागों को विजय करने में सहायता देने का वचन अजीतसिंह ने दिया। जयपुर में गर्दिश के वक्त तथा कुंआर लूटते समय अजीतसिंह ने करीब सात हजारी रुकी माल तथा मूष्टणे मरहठी सेना को भेजी थी[2]।

मरहठों को विशेष कर पेशवा बालाजी बाजीराव को हर समय धन की आवश्यकता रहती थी। शासन युद्ध आदि के लिये धन प्राप्ति उत्तरी भारत से ही हो सकती थी। होल्कर और सिन्धिया को राजपूताने से धन प्राप्ति की आशा रहती थी। ये मरहठे सेनापति जब चाहते राजपूताने में प्रवेश कर जाते जब चाहा जिससे चाहा धन प्राप्त करते थ। न देने पर युद्ध स्वाभाविक था। राजनैतिक सन्धियों को बनाए रखना कोई महत्ता नहीं रखता था। अजीतसिंह के बाद जब सन् १७५८ में शत्रुशाल गद्दी पर बैठा तो जनकोजी सिन्धिया व मल्हारराव होल्कर ने शत्रुशाल से नजराना के २ लाख रुपय लेकर उसे शासक की स्वीकृति दे दी।

१७५८ ई तक मरहठों की शक्ति सारे भारत में फैल गई। पंजाब में वे अटक तक पहुँच चुके थ। दिल्ली के मुगल सुल्तान उनके ऋणी थे। पंजाब से दक्षिण भारत तक उनका प्रभाव था परन्तु वे इस बड़े साम्राज्य को न तो संगठित कर सके और न वे एक शासनसूत्र में बांध कर मरहठी राज्य की दृढ़ता ला सके। पंजाब पर मरहठों के अधिकार कर लेने को काबुल का बादशाह अहमदशाह दुर्रानी जो पंजाब को अपना प्रान्त समझता था सहन न कर सका। उसने बार बार भारत पर आक्रमण किया। १७५९ मे वह आक्रमण कर पंजाब पर

१ वाक्ये जिल्द १ लेखांक १०८, टिप्पणी १९४।
वंशभास्कर चतुर्थ भाग पृ ३३२५।

२ गो० शर्मा भाग २ पृ ४१९।

अधिकार करता हुआ नजीब रोहिला से जा मिला। जिसने मरहठो की शक्ति नष्ट करने के लिये निमन्त्रित किया था। १७६१ की जनवरी को पानीपत के स्थान पर अब्दाली-मरहठा युद्ध हुआ। मरहठे हार गए। मरहठो की हार का लाभ उठा कर जयपुर नरेश माधोसिंह ने राजपूताने से मरहठो को निकालने का प्रयत्न किया। उसने दिल्ली सम्राट शाहआलम द्वितीय, नजीमरोहिला व कोटा, बूदी, करौली आदि के शासको का एक गुट तैयार कर मरहठो को निकालना चाहा[1]। परन्तु महाराव शत्रुशाल ने माधोसिंह की इस योजना को स्वीकार नही किया क्योकि उसे इसमें माधोसिंह की वृहत् जयपुर-निर्माण करने की योजना स्पष्ट दिखायी दे रही थी। तथा इधर होल्कर ने गागरोण और चन्द्रावत राजपूतो पर अधिकार कर कोटा पर आँख लगा रखी थी।

सन् १७५४ ई० मे माधोसिंह को रणथम्भोर का किला शाह अहमदशाह ने दिया था परन्तु रणथम्भोर को मरहठे लेना चाहते थे। इसलिये सन् १७५६ मे उन्होने घेरा डाल दिया। रणथम्भोर मे एक मुगल फौजदार रहता था। वह स्वय इस पर अधिकार रख स्वतन्त्र होना चाहता था। पर अन्त मे यह किला माधोसिंह के पास आ गया। माधोसिंह ने इस किले से सम्बन्धित कोटरियो पर अधिकार करना चाहा। पर वे हाडा जाति की जागीरें होने के कारण कोटा के अधीन रहना अधिक पसन्द करती थी। इस पर माधोसिंह ने १७६१ ई० में जबकि मरहठे पानीपत के मैदान मे हार चुके थे, कोटा पर आक्रमण कर दिया तथा कोटरियो से खिराज लेना चाहा। माधोसिंह की सेना ने उणियारा, वलाखेरी पर अधिकार करते हुए पालीघाट के पास कोटा मे प्रवेश किया। भटवाडे के मैदान मे कोटा की सेना व जयपुर की सेना का १७६१ में सामना हुआ।

इस युद्ध मे जालिमसिह झाला कोटा का सेनापतित्व कर रहा था। उस समय पानीपत के युद्ध मे हार कर भागा हुआ मल्हारराव होल्कर पास ही पड़ाव डाले हुए था। जालिमसिंह ने उससे मुलाकात कर जयपुर के विरुद्ध सहायता चाही और उसके वदले मे चार लाख रुपये देने का विश्वास दिलाया। होल्कर माधोसिंह से नाराज था क्योकि साल भर से उसने होल्कर को मामलात नही दी थी। परन्तु पानीपत के मैदान मे जो उसकी क्षति हो चुकी थी। उस कारण न तो वह कोटा को, न जयपुर को सहायता दे सकता था। अत मल्हारराव ने सिर्फ इतना ही विश्वास जालिमसिंह को दिलाया कि यदि जयपुर की सेना हारने लगेगी तो वह उनके डेरो को लूटेगा[2]। भटवाडे के युद्ध मे कोटा विजयी हुआ।

१ एस. पी डी जिल्द २६, स २७।
२ उपरोक्त जिल्द २१, स० ६८।
वशभास्कर जिल्द २, पृ० ५६२-६३।
टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५३६।

सम्वत् १८१५ (सन् १७५८) में मल्हारराव होल्कर की एक टुकड़ी ने सुकेत की गढ़ी को आ घेरा। कोटा ने ८००० रुपये देकर उस टुकड़ी को वापिस भेज दिया। सम्वत् १८१७ (सन् १७६०) में होल्कर को कोटा के प्रधान राव अखमराय ने ५१० ०) होल्कर को दिए।

भटवाड़े के युद्ध में कोटा के भरदार ने उम्मेदसिंह बूँदी शासक की सेवायें मांगी थीं। बूँदी की सेना युद्धस्थल में आई तो अवश्य परन्तु युद्धक्षेत्र में दर्शक के रूप में बनी रही। इस पर शत्रुशाल बूँदी वालों से नाराज हो गया और राव उम्मेदसिंह को दण्ड देने के लिये अखमराय को मरहठा सरदार के पास भेजा। मोमाम नामक गाँव में वह महारानी सिन्धिया से मिला[1]। सन् १७६१ में कोटा के महाराव और महारानी व पदारजी सिन्धिया ने बूँदी पर आक्रमण कर दिया। ४० दिन तक बूँदी का घेरा पड़ा रहा। विवश हो उम्मेदसिंह ने संधि करली। महादजी ने महाराव शत्रुशाल को सनिद राव के (१७१२०) रु० दिए[2]। कोटा महाराव ने बूँदी आक्रमण के लिये १८० ०० रु० लिए थे। इस पर भी जब कभी मरहठी फौज आ जाती तो और धन देना पड़ता था। अखयराम उसका लड़का केशवराम तथा ठाकुर किशनदास इस कार्य के लिये शोपुर और सपाड़ कई बार भेजे गये। राज्य की रक्षा के हेतु कोट और किले की मरम्मत कराई गई जिससे मरहठे अचानक आक्रमण न करदें[3]।

मरहठे व जालिमसिंह—कोटा में मरहठों का प्रभुत्व जालिमसिंह झाला के समय तक बना रहा। भटवाड़ के युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने व हारे हुये युद्ध को विजय के रूप में परिवर्तित कर देने के उपलक्ष में महाराव शत्रुशाल ने जालिमसिंह को फौजदार बना दिया था। परन्तु महाराव गुमानसिंह ने उसकी स्वतन्त्र प्रकृति से मुक्त होने के लिये उसे पदच्युत कर दिया। जालिमसिंह मेवाड़ चला गया। वहां उसे राजराणा की पदवी दी गई। अरिसिंह के विरुद्ध प्रतापसिंह ने कुम्भलगढ़ में स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करली थी और अरिसिंह के विरुद्ध माधवराव सिन्धिया की सहायता लेकर मेवाड़ के विरुद्ध विद्रोह कर बैठा। तब उज्जैन के पास सिंधिया राणा युद्ध हुआ। जालिमसिंह इस युद्ध में घायल हो गया व गिरफ्तार कर लिया गया। अम्बाजी इंगले के पिता त्र्यम्बकराव ने उसे गिरफ्तार किया। लेकिन अम्बाजी ने उसे मुक्त करा दिया। तब से जालिमसिंह

---

१ वंशभास्कर चतुर्थ भाग पृ १७ ६।
२ डा शर्मा भाग २ पृ ४२१।
३ उपरोक्त पृ ४२२।

ओर अम्बाजी इगले की मित्रता अन्त तक बनी रही[1]। इसी समय महाराव गुमानसिंह ने मरहठो के वकील लालाजी बल्लाल को भेज कर जालिमसिंह को बुला लिया।

कोटा राज्य की स्थिति बडी शोचनीय हो रही थी। मल्हारराव के नेतृत्व मे मरहठी सेना कोटे की दक्षिणी सीमा की तरफ बढती हुई आ रही थी। बकानी का घेरा उन्होने डाल दिया। किलेदार ठाकुर माधोसिह हाडा ने किले की सुरक्षा को बनाए रखा। माधोसिंह के पास उस समय केवल चारसौ सैनिक ही थे। किले की सुरक्षा करते समय वह स्वय मारा गया परन्तु मरहठो का अधिकार उस गढ पर न हो सका। इस युद्ध मे १३०० मरहठे काम आए। लौटती हुई मरहठी सेना ने सुकेत पर अधिकार कर लिया और कोटे की ओर बढे। महाराव गुमानसिह इस सेना का सामना करने मे असमर्थ था। अत सुलह की वार्ता करने के लिए ठाकुर भोपतसिह भाकरोत को भेजा परन्तु वह असफल होकर लौटा। इसी समय लालाजी बल्लाल जालिमसिह को लेकर कोटे लौट गया था। अब जालिमसिह प्रतिनिधि बना कर वार्ता के लिये भेजा गया। इस कार्य मे जालिमसिह सफल हो गया। होल्कर को ६ लाख रुपया दिया गया और मरहठी सेना कोटे से हट गई[2]। महाराव गुमानसिह ने इस सेवा के बदले मे जालिम-सिह को पुन अपने पद, फौजदार पर नियुक्त किया और उसकी जागीर दे दी। मरने के पूर्व महाराव ने उम्मेदसिह कुवर को झाला के सुपुर्द किया।

महाराव उम्मेदसिह के शासन काल मे (सन् १७७०-१८२० ई०) कोटे का सर्वेसर्वा जालिमसिह झाला ही था। एक सफल शासन प्रबन्धकर्ता के लिये यह आवश्यक था कि मरहठे सरदारो के साथ शान्ति का सम्बन्ध रखा जाय। इस समय राजपूताने मे पिंडारी और मरहठो के हमले बार-बार होते थे। सन्धि की इज्जत करना उनके कोष मे नही था। धन ही प्राप्त करना उनका जीवन तथा कर्त्तव्य था। साधनो की वे परवाह नही करते थे। शासन की देखरेख उनकी शिक्षा के प्रतिकूल थी। ऐसी शक्ति के विरुद्ध जालिमसिह ने साम, दाम और भेद की नीति अपनाई। सम्वत् १८३० (सन् १७७३ ई०) मे जब कोटा राज्य के दक्षिण भागो में पिंडारियो ने लूटमार की तो उन्हे भगाने के लिये भट्ट दयानाथ के नेतृत्व मे एक सेना भेजी जिसने गागरोण के पास पिंडारियो को हराया व भगाया[3]। पर पिंडारी पुन आ धमके, लूट-खसोट की और भाग

१ टाड राजस्थान तृतीय, पृ० १५३९।
२ उपरोक्त, पृ० १५८६-१५९०।
३ डा० शर्मा भाग २,

गए। पुनः आने और भागने की नीति से तंग आकर जालिमसिंह ने सन् १७७८ ई० में पिंडारियों के नेता अमीरखां से मित्रता कर उसे शेरगढ़ का किला दे दिया जहाँ वह रह सके[1]। इस मित्रता की नीति से वह पिंडारी आक्रमण से बच गया। सम्वत् १८३४ (सन् १७७७ ई०) में जीवाजी अप्पा के नेतृत्व में मरहठी सेना कोट की सीमा में प्रवेश करना चाहती थी पर जालिमसिंह ने बख्शी शिवदास अक्षयराम व पंडित लाल्या को भेज कर उसे कोटे में प्रवेश नहीं करने दिया। सम्भवतः कुछ लाख रुपये नजराने के अवश्य दिये गए। होल्कर के नेतृत्व में १७७९ ई० में कोटा रियासत इन्द्रगढ़ खातोली करवाड़, पीपल्दा को मरहठों ने लूटा। झाला ने सेना भेज कर उन्हें दूर करना चाहा। पर वह असफल रहा। इसी प्रकार झाला ने नरहरराव दक्षिण को १७८४ ई० में पन्द्रह हजार, १७८५ ई० में लाडराव को लाखों की बकाया देकर मित्रता मोल ली। तुकोजी होल्कर को भी इस प्रकार समय-समय पर रुपया देकर संतुष्ट करना पड़ता था। १७८२ ई० में तुकोजी होल्कर के पुत्र मल्हारराव होल्कर के विवाह पर कोटे की तरफ से सात हजार रुपये न्योता के भेज गये थे[2]। सिन्धिया ने मऊ लेना चाहा जहाँ उम्मेदसिंह का ससुराल था। अतः उसे बचाने के लिए जालिमसिंह ने ६ लाख रुपये देकर मऊ बचाया फिर भी सिन्धिया ने सिगोली और रतनगढ़ ले ही लिए[3]। शाहबाद के किले पर जालिमसिंह ने सिन्धिया की अनुमति के बिना ही कब्जा कर लिया था। इस पर सिन्धिया ने मामलात का हिस्सा मांगा। ३० हजार रुपये शाहबाद की मामलात सिन्धिया को भेजने का निश्चय किया गया[4]।

मरहठों की इस प्रकार की नीति और व्यवहार से जिसमें न स्थायित्व था न ईमानदारी न राजभक्ति मोहब्बत न मित्रता जालिमसिंह तंग आ चुका था। वह इनसे सैनिक शक्ति द्वारा विजय प्राप्त नहीं कर सकता था केवल धन से इन्हें खरीद कर ही कोटा को शान्ति बनाये रख सकता था। उस धन-प्राप्ति के लिये कोटे में कई नए प्रकार के कर इसने लगाए जिससे जागीरदार व जनता दोनों ही तंग थे। उसी समय पूर्वी भारत विजय करते हुए अंग्रेज दिल्ली तक आ पहुँचे। मरहठों की शक्ति से उनकी टक्कर होना निश्चित था। १८ २ ई० में सिन्धिया से अंग्रेजों ने टक्कर ली। १८ ३ में होल्कर से वे लड़ पड़े।

१ टाड राजस्थान तृतीय पृ १५७४।

२ डा० शर्मा भाग १ पृ ४ २।

३ वंशभास्कर चतुर्थ भाग पृ ३ १८।

४ डा० शर्मा भाग २ पृ ८ ६।

लार्ड लेक उत्तर की ओर से और दक्षिण की ओर से आरथर वेलेजली होल्कर के विरुद्ध चले। लार्ड लेक ने कर्नल मानसन को तीन बटालियन देकर व कप्तान लूकन को पश्चिम की ओर से होल्कर पर आक्रमण करने भेजा। राजपूत शासको के लिये मरहठो से मुक्त होने का सुअवसर था। जालिमसिंह ने अंग्रेजी फौज और उसके नेता मानसन को कोटा मे प्रवेश करने की आज्ञा नही दी बल्कि आप अमरसिंह पलायके वाले के नेतृत्व मे कोटा की फौज भेज कर मानसन को सहायता दी। मानसन को होल्कर ने मुकन्दरा घाटी मे जा घेरा और मारकाट मचादी। होल्कर की फौज की कोटा की सेना के साथ मुठभेड हुई जिसमे आप अमरसिंह मारा गया। कोटे के चारसौ व्यक्ति घायल हुए। कप्तान लूकन युद्ध मे मारा गया और मानसन भाग कर कोटा आया। परन्तु होल्कर के भय से जालिमसिंह ने उसे शरण नही दी[1]। किसी तरह वह दिल्ली पहुँचा।

अब होल्कर ने जालिमसिंह को दण्ड देने के लिये कोटे पर चढाई करदी। जालिमसिंह ने चम्बल नदी के मध्य मे नाव पर मुलाकात की। काका जालिमसिंह व मजीज होल्कर बडी शिष्टता से बातचीत करते रहे। लेकिन इमानदारी एक के कार्य मे भी नही थी। होल्कर ने मुगल बख्शी से दस्तावेज प्राप्त कर कोटा से दस लाख रुपये जुर्माना प्राप्त करना चाहा। जालिमसिंह ने उसे स्वीकार नही किया। फिर भी होल्कर तीन लाख रुपये लेकर कोटा से रवाना हुआ और शेष सात लाख रुपये माँगना उसने कभी नही छोडा[2]। जब होल्कर डोग के स्थान पर अंग्रेजो से हार गया तो राजपूताने में उसका प्रभाव कम हो गया और कोटा से प्राप्त होने वाली खण्डणी समय पर नही मिलने लगी। जालिमसिंह ने होल्कर से मित्रता भी बनाये रखी और समय पडने पर उसके शत्रुओ को सहायता भी देता रहा जिससे कि मराठो की शक्ति क्षीण होती रहे। ३० मई १८१३ में मल्हारराव के लडके परशुराम ने ढूढार परगने के रामपुर किले पर अधिकार करना चाहा तो जालिमसिंह ने उसे सहायता दी[3]। उदयपुर मे शक्तावतो और चूडावतो के युद्ध मे सिन्धिया ने हस्तक्षेप करना शुरू किया। इसी समय सिन्धिया को जोधपुर व जयपुर की सम्मिलित सेना ने हरा दिया। उधर कोटा व उदयपुर की सेना मिल कर मराठो के अधिकृत क्षेत्र नीमाहेडा, निकुम्प, जीरण आदि पर अधिकार करती हुई जावत पहुँची। मरहठी सेना का नायक सदाशिव हार गया और भाग गया। इसका परिणाम ठीक नही निकला।

---

१ टाड राजस्थान भाग ३, पृ० १५७१।

२ उपरोक्त, पृ० १५७३।

३ डा० शर्मा भाग २,

गए। पुनः आने और भागने की नीति से तंग आकर जालिमसिंह ने सन् १७७४ ई० में पिंडारियों के नेता अमीरखां से मित्रता कर उसे शेरगढ़ का किला दे दिया जहां वह रह सके[1]। इस मित्रता की नीति से वह पिंडारी आक्रमण से बच गया। सम्वत् १८३४ (सन् १७७७ ई०) में ओकाजी अप्पा के नेतृत्व में मरहठी सेना कोटे की सीमा में प्रवेश करना चाहती थी पर जालिमसिंह ने बख्शी शिवलाल प्रसयराम व पंडित तांत्या को भेज कर उसे कोटे में प्रवेश नहीं करने दिया। सम्भवतः कुछ लाख रुपये नजराने के अवश्य दिये गए। होल्कर के नेतृत्व में १७७१ ई० में कोटा रियासत इन्द्रगढ़ खातोली करवाड़ पीपल्दा को मरहठों ने लूटा। झाला ने सेना भेज कर उन्हें दूर करना चाहा। पर वह असफल रहा। इसी प्रकार झाला ने नरहरराव दक्षिणी को १७८४ ई० में पन्द्रह हजार, १७८१ ई० में खांडेराव को छप्पनी की बकाया देकर मित्रता मोल ली। तुकोजी होल्कर को भी इस प्रकार समय-समय पर रुपये देकर संतुष्ट करना पड़ता था। १७८२ ई० में तुकोजी होल्कर के पुत्र मल्हारराव होल्कर के विवाह पर कोटे की तरफ से सात हजार रुपये नोते के भेजे गये थे[2]। सिंधिया ने बगू लेना चाहा जहां उम्मेदसिंह का ससुराल था। अतः उसे बचाने के लिए जालिमसिंह ने ६ लाख रुपये देकर बगू बचाया फिर भी सिंधिया ने सिंगोली और रतनगढ़ ले ही लिए[3]। शाहबाद के किले पर जालिमसिंह ने सिंधिया की अनुमति के बिना ही कब्जा कर लिया था। इस पर सिंधिया ने मामलात का हिस्सा मांगा। ३० हजार रुपये शाहबाद की मामलात सिंधिया को भेजने का निश्चय किया गया[4]।

मरहठों की इस प्रकार की नीति और व्यवहार से जिसमें न स्थायित्व था न ईमानदारी न राजनैतिक मोहब्बत व मित्रता जालिमसिंह तंग आ चुका था। वह इनसे सैनिक शक्ति द्वारा विजय प्राप्त नहीं कर सकता था केवल धन से इन्हें खरीद कर ही कोटा को शान्ति बनाए रख सकता था। उस धन प्राप्ति के लिए कोटे में कई नए प्रकार के कर इनसे लगाए जिनसे जागीरदार व जनता दोनों ही तंग थे। उसी समय पूर्वी भारत विजय करके हुए अंग्रेज दिल्ली तक आ पहुंचे। मरहठों की शक्ति से उनकी टक्कर होना निश्चित था। १८०२ ई० में सिंधिया ने अंग्रेजों से टक्कर ली। १८०३ में होल्कर से भी लड़ पड़े।

1. टाड : राजस्थान तृतीय पृ० १५७४।
2. डा० शर्मा : भाग २ पृ० ४४५।
3. वंशभास्कर : चतुर्थ भाग पृ० ३८१९।
4. डा० शर्मा : भाग २ पृ० ४९।

कोटा शासन मे मरहठी प्रभाव—पेशवा कोटा राज्य को अपना मांगलिक राज्य मानता था। अत इस अधीनस्थ राज्य को उसने सिन्धिया, होल्कर और पवारो को बाट दिया था। ये मरहठे सरदार कोटा राज्य को अपने आधिपत्य मे समझते थे और इस बात पर जोर देते थे कि उनकी अनुमति और नजराना दिए बिना कोई महाराव गद्दी पर न बैठे। प्रति वर्ष वे कोटा से खण्डणी लेते थे। छोटे-मोटे मरहठा सरदार अवसर पाकर कभी-कभी कोटा राज्य मे आ घुसते, लूट-मार करते और कोटा मे धन वसूल करते थे। कोटा राज्य मे जाने वाले व्यापारियो की जकात स्वय लेकर वे उन्हे मुफ्त जाने की आज्ञा देते रहते थे। उनकी सुरक्षा कोटा राज्य को करनी पडती थी। सिन्धिया होल्कर का स्वागत मुगल सूबेदारो की तरह किया जाता था। धन व सैनिको से सहायता कोटा वाले मरहठो की करते रहते थे। मरहठी सरदारो के बच्चो के जन्म व विवाह पर कोटा महाराव नजराना भेजते थे।

मरहठो की ओर से कोटा मे वकील रहता था। सन् १७३७ मे पहला वकील नियुक्त हुआ। वह लालाजी बल्लाल था। वह कोटा से मामलात वसूल करता, राजनैतिक गतिविधियो पर देख-रेख करता तथा उनकी सूचना मरहठा सरदारो के पास भेजता। ये उसके मुख्य कर्तव्य थे। उसकी मातहती मे एक दीवान, कई कमविसदार अन्य कितने ही कर्मचारी व छोटे नौकर रहते थे। वकील सबका वेतन चुकाता था। मामलात वसूल करके हिस्सों के अनुसार ऊटो पर लाद कर मरहठी सरदारो के पास भेजा जाता था। कोटा की कोटरियात वकील के सुपर्द थी। चूंकि मामलात अधिक मात्रा मे लिया-जाता था जिसे कोटरियात दे नही सकती थी अत प्रत्येक कोटडो में एक मरहठा कमविसदार वहा रहता था। वह आयकर इकट्ठा करने वाला होता था लेकिन वास्तव मे शासन का कर्ता-धर्ता वही था। ठाकुर नाम-मात्र के शासक होते थे। प्रारम्भ मे चारो मरहठी सरदारो का एक ही वकील होता था परन्तु यह वकील सिन्धिया का पक्ष अधिक लेता था। इस कारण अन्य मरहठी सरदारो ने अपने-अपने अलग वकील नियुक्त किये। जिनमें आम तौर पर धन के बटवारे के लिये झगडा हो जाया करता था। वकील का वेतन अडतालीस हजार रुपया वार्षिक था[1]। यह वेतन दो मास की किश्तो में मिलता था।

वकील के नीचे दीवान होता था और प्रत्येक परगने मे एक कमविसदार नियुक्त किया जाता था। इसका कर्तव्य सिर्फ माल वसूली हासिल करना तथा मामलात प्राप्त करना था। परगने मे इनका शासकीय प्रभाव नही रहता था।

१ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५२९।

शक्तावत और चूडावत पुन लड़ पड़े। महाराणा ने चूडावतों को चित्तौड़ से निकालने के लिये जालिमसिंह और सिन्धिया को बुला भेजा। जालिमसिंह और माधोजी सिन्धिया के प्रतिनिधि अम्बाजी इंगले की संयुक्त सेना ने हमीरगढ़ लेते हुए चित्तौड़गढ़ का घेरा डाला। यहां सिन्धिया सेना लेकर पहुंचा और महाराणा से मिला। यह मुलाकात जालिमसिंह के प्रयत्नों से हुई[1]। महाराणा जालिमसिंह और महादाजी सिन्धिया ने चित्तौड़ के पास सेती गांव में डेरा डाला। भीमसिंह चूडावत इस बात पर आत्म समर्पण करने को तयार था कि जालिमसिंह कोटा चला जाए। जालिमसिंह ने यह स्वीकार किया[2]। जालिमसिंह की बढ़ती हुई शक्ति का कम करने की यह चाल अम्बाजी इंगले की थी[3]। मेवाड़ में शान्ति स्थापित कराने का भार माधोजी ने अम्बाजी को सौंपा। परन्तु १७९५ ई में माहादाजी की मृत्यु हो गई। उसके पुत्र दौलतराम सिन्धिया ने अम्बाजी के स्थान पर लकवा दादा को नियुक्त किया। अम्बाजी इंगल के प्रतिनिधि गणेशपंत ने चित्तौड़ खाली करने से इन्कार कर दिया। अम्बाजी और लकवा दादा में युद्ध छिड़ गया। महाराणा ने अम्बाजी का पक्ष नहीं लिया। इस पर जालिमसिंह ने महाराणा के विरुद्ध आक्रमण कर दिया। अम्बाजी के भाई बालेराव को महाराणा की कैद से छुड़ाया और महाराणा से सन्धि कर जहाजपुर पर अधिकार कर लिया[4]।

पिंडारियों के प्रति जालिमसिंह ने मित्रता की नीति बनाए रखी। मीरखां पिंडारी को शरणक देकर मित्र बना लिया। समय २ पर मीरखां की सेना को जब कभी वेतन नहीं मिलता तो कोटा राज्य के धन कोष से धन देता। सन् १८०७ में सिन्धिया ने मीरखां को गिरफ्तार करके ग्वालियर के किले में बन्द कर दिया। उस समय भी जालिमसिंह ने उसको धन देकर छुड़ाया था। परन्तु जब लार्ड हेस्टिंग्स ने पिंडारियों के दमन के लिये कोटा से सहायता मांगी तो कोटा की फौज ने पूर्ण सहायता दी। इसके बदले में जालिमसिंह को उग पचपहाड़ अम्बर और गंगराड़ के परगने दिये गए। १८१८ ई० के बाद तो अंग्रेजों ने जालिमसिंह से सन्धि कर कोटा में मराठों का प्रभाव हमेशा के लिए समाप्त कर दिया।

---

१ ओझा राजपूताने का इतिहास भाग ४ पृ १११।
२ ओझा राजपूताने का इतिहास भाग ४ पृ ११२।
३ उपरोक्त।
४ उपरोक्त पृ १ १।

कापरेण सिन्धिया की जागीरे थी। मरहठो के वकील को बोराखेडी व उरमाल दीवान को भराडोला परगना था। होल्कर के दीवान को जुलमी की जागीर दी गई थी। कई मरहठी ब्राह्मण भी जागीरदार थे। मरहठो जागीरो मे कुल ७१ गाव थे जिनकी आमदनी एक लाख अट्ठाईस हजार थी[1]। मरहठी जागीरदारो की वृद्धि कोटा के शासक नही चाहते थे परन्तु वे विवश थे। दक्षिणी पण्डितो का धार्मिक क्षेत्र मे भी प्रभाव था। इन जागीरदारो की प्रतिष्ठा राज-दरबार मे होती रहती थी। राज की पड़तालो पर इन्हे इनायत भी होती रहती थी। ये जागीरदार महाराव की नौकरी करते थे। इनसे भेंट वगैरह नही ली जाती थी। परन्तु मरहठी प्रभाव अग्रेजो के आगमन पर इतना शिथिल हो गया कि उनके स्थाई अवशेष किसी भी रूप मे जीवित नही रह पाये।

कोटा राज्य का अग्रेजो से सबध—भारत मे अग्रेजी राज्य की स्थापना ऐतिहासिक परिस्थितियो के अनुकूल थी। यह घटना अचानक हुई, ऐसी सभावना नही थी। १८वी शताब्दी मे तीन साम्राज्यो की टक्कर मे—मुगल, मरहठा व अग्रेज। अग्रेज विजयी होकर भारत की सार्वभौम सत्ता के रूप मे परिणित हो गये। ई. सन् १७५७ मे जबकि मुगल साम्राज्य की अस्थियां चारो ओर बिखर रही थी और उसके अवशेषो पर मरहठी प्रभुता उत्तरी भारत से दक्षिणी भारत तक फैली हुई थी, प्लासी के मैदान मे लार्ड क्लाइव ने भारत मे अग्रेजी राज्य की नीव डाली। मरहठा शक्ति का प्रभुत्व तो अवश्य फैला हुआ था पर न उसमे शासन का स्थायित्व था व न उसके राजनीतिज्ञो मे भारत पर शासन करने की प्रतिभा थी। वे उत्तरी भारत मे जुलमगीरी ही करते थे। गनीम उनका प्रिय नाम हो गया। वहाँ परिस्थितिया तो यही थी कि मुगल सम्राटो के स्थान पर वे मरहठा साम्राज्य स्थापित कर सकते थे, वहा उन्होने हर स्थान, हर जागीरदार, नबाब व राजा को आर्थिक शोषण की नीति से तग किया। धन न देने का अर्थ अराजकता, खेती का नष्ट होना, शहरो का जलाया जाना और जनता की त्राहि-त्राहि था। धन देकर भी इससे मुक्ति पाना कठिन था। मरहठा सरदारो और सेनापतियो मे जहाँ नेतृत्व था तो केवल इसी बात का कि उत्तरी भारत की धन की नदियो का बहाव पूना की तरफ मोडा गया। मुगलो के पतन से शासन मे जो अस्त-व्यस्तता आई थी उसे हटा कर जनता को सगठित और सुव्यवस्थित शासन देने मे असफल रहे। १७६१ मे पानीपत के मैदान मे उनकी हार ने अग्रेजो को, जो कि भारत में अभी तक शिशु शक्ति के रूप में ही प्रकट हुए थे, अपना स्थायित्व जमाने का अवसर दिया। यह तो भारत की राजनैतिक स्थिति स्पष्ट कर रही थी कि

१ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५३२।

यह अधिकार कोटा राज्य के सिर्फ कमिश्नरों को था। परन्तु चूंकि वह एक प्रमुख शक्ति का प्रतिनिधि था अतः व्यवहार में मुकदमों का फैसला तथा शान्ति स्थापित करने का कार्य वही करता था। उसके पास काफी सेना रहती थी[1]। कभी कभ जिलदार इतना शक्तिशाली हो जाता था कि वह मामलात भेजने से इन्कार कर देता था। उसको वेतन हिस्साकसी से मिलता था। कालान्तर में मराठों ने इजारे पर कई इलाके देने शुरू किए। इजारा की रकम निश्चित की जाती थी। परगने की मालगुजारी और हुकूमत इजारेदार जो अधिकतर वकील होता था उसे देदी जाती। उसे अलग करने का अधिकार मरहठे सरदारों को था। यदि वह समय पर रकम न देता या प्रजा को दुःख देता। सिन्धिया व होल्कर फरमान देकर इजारेदार को नियुक्त करते थे। मरहठों ने कोटा के प्रति कोई शासन नीति नहीं अपनाई थी। सिर्फ एक ही नीति से वे चलते थे। मामलात वसूल करना और मौका मिलने पर नजराना वसूल करना। कोटा को यह धन जुटाने के लिये कई नए कर लगाने पड़े थे। सम्वत् १८१२ में समस्त जागीरदारों पर मरहठों की मांग पूरी करने के लिए चोथाल नामक कर वसूल किया गया। इसी वर्ष कानूनगामियों से पेशकशी ली गई। सम्वत १८१६ में घोड़ी बराड़ नामक कर लगाया गया। इसकी रकम १८००) वार्षिक इकट्ठी होती थी। जातियों की पचायतों से कर लिया गया। बीघोड़ी और जामदारी कर शक्ति से वसूल किए गये। बीघोड़ी प्रति बीघ चार आना जामदारी प्रति कुटुम्ब एक रुपया लिया जाता था।

कोटा के शासकों द्वारा सिन्धिया के राज्य में रहने वाले या उनके द्वारा स्वीकृत व्यापारी को बिना कर लिए कोटे में घुसने दिया जाता था। कोटे के किसी आदमी ने सिन्धिया के राज्य के किसी व्यक्ति से धन उधार लिया हो तो वकील द्वारा उसकी वसूली होती थी। यदि कोटा राज्य किसी अन्य क्षेत्र को जीतते जो मरहठों का न होता तो उस की चवदकी अलग देनी पड़ती थी यद्यपि मरहठा धन-मांग अधिक थी। परन्तु मरहठों ने कोटा शासकों को मुगलों की तरह नौकरी के रूप में नहीं बल्कि आदर भावना से बर्ताव रखा। काका शब्द महारावों के लिये प्रयोग किया जाता था। महारानियों की ओर से मरहठा सरदारों को राखिएं भेजी जाती थीं। मरहठी रानियें भी राखी भेज कर कोटा घराने से सम्बन्ध स्थापित करती थीं।

कोटा में कई जागीरें मरहठी सरदारों को प्राप्त थीं। केशोराय पाटन तथा

---

१ पाटन के कम [illegible] जिलदार की मातहती में ७५ सवार ५ पैदल ६ [illegible] और १ [illegible] रहते थे। इन सबका खर्च रु १४१६ [illegible] वार्षिक होता था।

होल्कर पर हमला किया जा सके। झाला जालिमसिंह ने जिसने अभी तक निश्चित तौर पर अवलोकन नही किया कि अंग्रेज-शक्ति को सहयोग दे। मानसन को सहायता देने के लिये बुलाया था व ठाकुर आप अमरसिंह के नेतृत्व मे एक छोटी सी सेना की टुकडी भी भेजी। मुकन्दरे की घाटी मे होल्कर ने कप्तान लूकन व आप अमरसिंह को घेर लिया। मुकन्दरा दर्रे के युद्ध मे लूकन और आप अमरसिंह मारे गये। मानसन भागता हुआ कोटा मे शरण लेने आया। जालिमसिंह ने उसका स्वागत नही किया और शरण नही दी। वह निराश हो दिल्ली पहुँचा।

जालिमसिंह ने पिंडारियो के साथ मित्रता की नीति अपनाई थी। अमीरखा पिंडारी को शेरगढ का किला देकर उससे मित्रता की और कोटा को पिंडारियो से मुक्त कराया। जब १८०७ ई० मे सिंधिया ने ग्वालियर के किले में अमीरखा पिंडारी को कैद कर लिया तो जालिमसिंह ने धन देकर उसे छुडाया और भावी सुचरित्र का विश्वास दिलाया। पिंडारियों के कई व्यक्ति कोटा के जागीरदार थे। जालिमसिंह ने उनकी प्रतिष्ठा और मित्रता बनाये रखी। जालिमसिंह के पिंडारियो को मित्र बनाये रखने के २ कारण थे। प्रथम—कोटा में उनके कारण अशाति पैदा न हो, दूसरा कि उसकी शक्ति कोटा मे बनी रहे। अपने विरोधियो का दमन करने के लिये यह आवश्यक था।

पिंडारी मरहठो की तरह अंग्रेजी सत्ता के लिये एक समस्या बन चुके थे। अत जब १८१३ ई० में लार्ड हेस्टिंग्ज गवर्नर जनरल बन कर भारत आया तो पिंडारी एक अफलातून शक्ति बन चुके थे। मरहठों का प्रश्रय पाकर के ताकतवर होते जा रहे थे। सन् १८१७ में हेस्टिंग्ज ने पिंडारियो को समाप्त करने के लिये उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदी। राजपूताना के शासको से इस सबध मे सहायता लेने के लिये लार्ड हेस्टिंग्ज ने कर्नल टाड को जो कि उस समय सिंधिया दरबार में उप-रेजीडेंट था, राजराणा जालिमसिंह के पास भेजा। टाड ने जालिमसिंह से २३ नवम्बर १८१७ को रावटा के स्थान पर मुलाकात की[1] टाड-जालिमसिंह की यह प्रथम मुलाकात थी जो कालान्तर में गाढी मित्रता के रूप में परिणित हो गई। जालिमसिंह ने पिंडारी शक्ति के स्थान पर अपने को सुरक्षित रखने वाली अंग्रेजी शक्ति का मूल्य अधिक समझा। अत पिंडारियो के दमन के लिये १५०० पैदल व घुडसवार व ४ तोपें, अंग्रेजो को दी[2]। सर जे. माल्कम के नेतृत्व में यह सेना भेजी गई। पिंडारियो के दमन मे कोटा सब तरह

१ उपरोक्त।

२ ट्रीटी ऐंगेजमेंट व सनद, तृतीय भाग, पृ० ३५७ ३५८।

अंग्रेजों को अखिल भारतीय राज्य शक्ति बनाने के लिए मरहठों से टक्कर लेनी ही पड़ेगी।

१७६१ की पराजय के बाद मरहठे पुनः अपनी शक्ति संचित करने लगे। अंग्रेज भी अपनी शक्ति का विस्तार करने लगे। दोनों शक्तियां समानान्तर रूप से भारतीय जीवन पर अधिकार करने के लिये बढ़ रही थीं। १७७६ व १७८१ में इन्होंने टक्कर ली पर यह निर्णय नहीं हो सका कि भारत में अधिक प्रभावशाली शक्ति कौनसी है। दोनों तरफ की एक २१ वर्षीय शांति से अंग्रेजों को अपने विरुद्ध की द्वितीय श्रेणी की शक्तियों—निजाम हैदरअली व टीपू को दूर करने का अवसर मिल गया। मरहठों ने वही धन प्राप्त करने की नीति जारी रखी। १७९८ में लार्ड वेलजली ने भारतीय राजनीति के रंगमंच में प्रवेश किया। यह एक साम्राज्यवादी गवर्नर जनरल था। मरहठा शक्ति आन्तरिक रूप से क्षीण हो चली उसके कुशल नेता मर चुके थे उसके अधीन के क्षेत्र व संरक्षित रियासतें उनकी निरंकुशता से इतनी खिन्न हो चुकी थी कि उसके बदले में व हर कीमत पर अपने आपको उन्हें समर्पित कर सकते थे जो उनकी थोड़ी बहुत बची हुई इज्जत की रक्षा कर सके। ऐसी अवस्था में लार्ड वेलजली ने अपनी 'सहायक-प्रथा' की नीति प्रचलित कर मरहठा विरोधी संगठन करना शुरू किया। मरहठों की आपसी द्वेषता ने उन्हें और अधिक अवसर दिया और १८०० ई० में अमीन के स्थान पर पेशवा बाजीराव द्वितीय ने यह प्रथा स्वीकार कर भारत में अंग्रेजों की सार्वभौम शक्ति को स्वीकार कर लिया। सिन्धिया और होल्कर के लिये यह अपमानजनक बात थी। उन्होंने पेशवा का विरोध किया व लोहा लिया। सिन्धिया ने सुर्जी अर्जन गांव की संधि में पूर्ण हथियार डाल दिये। होल्कर लड़ता रहा। लार्ड वेलेजली ने होल्कर के विरुद्ध राजपूताना की रियासतों को अपनी ओर मिलाने की नीति अपनाई। अंग्रेज अब तक एक ताकतवर जमात के रूप में बन चुके थे। उनका सुसंगठित शासन-प्रबंध वैज्ञानिक ढंग पर लड़ने वाली युद्ध-प्रणाली तथा भारतीय शासकों को आंतरिक रूप से स्वतंत्र बनाये रखने की नीति ने राजपूताने के शासकों को प्रभावित किया। कोटा का राजराणा फौजदार झाला जालिमसिंह जिसने मरहठों का मामलात देते २ राज्य को दिवालिया बना दिया था ने इस नीति को पसंद किया। राजपूताने में अंग्रेजों के प्रवेश का सर्वत्र स्वागत किया गया।

१८०४ ई० में होल्कर को हटाने के लिये दिल्ली से लार्ड लेक चला। दक्षिण से आर्थर वेलेजली ने सेना सहित कूच किया। लार्ड लेक ने कर्नल मानसन और कप्तान लूकन को राजपूताने की ओर भेजा जिससे पश्चिम की ओर

से होल्कर पर हमला किया जा सके। झाला जालिमसिंह ने जिसने अभी तक निश्चित तौर पर अवलोकन नही किया कि अग्रेज-शक्ति को सहयोग दे। मानसन को सहायता देने के लिये बुलाया था व ठाकुर आप अमरसिंह के नेतृत्व मे एक छोटी सी सेना की टुकडी भी भेजी। मुकन्दरे की घाटी मे होल्कर ने कप्तान लूकन व आप अमरसिंह को घेर लिया। मुकन्दरा दर्रे के युद्ध मे लूकन और आप अमरसिंह मारे गये। मानसन भागता हुआ कोटा मे शरण लेने आया। जालिमसिंह ने उसका स्वागत नही किया और शरण नही दी। वह निराश हो दिल्ली पहुँचा।

जालिमसिंह ने पिंडारियो के साथ मित्रता की नीति अपनाई थी। अमीरखा पिंडारी को शेरगढ का किला देकर उससे मित्रता की और कोटा को पिंडारियों से मुक्त कराया। जब १८०७ ई० मे सिंधिया ने ग्वालियर के किले मे अमीरखा पिंडारी को कैद कर लिया तो जालिमसिंह ने धन देकर उसे छुडाया और भावी सुचरित्र का विश्वास दिलाया। पिंडारियो के कई व्यक्ति कोटा के जागीरदार थे। जालिमसिंह ने उनकी प्रतिष्ठा और मित्रता बनाये रखी। जालिमसिह के पिंडारियो को मित्र बनाये रखने के २ कारण थे। प्रथम—कोटा मे उनके कारण अशाति पैदा न हो, दूसरा कि उसकी शक्ति कोटा मे बनी रहे। अपने विरोधियो का दमन करने के लिये यह आवश्यक था।

पिंडारी मरहठो की तरह अग्रेजी सत्ता के लिये एक समस्या बन चुके थे। अत जब १८१३ ई० मे लार्ड हैस्टिंग्ज गवर्नर जनरल बन कर भारत आया तो पिंडारी एक अफलातून शक्ति बन चुके थे। मरहठो का प्रश्रय पाकर वे ताकतवर होते जा रहे थे। सन् १८१७ में हैस्टिंग्ज ने पिंडारियो को समाप्त करने के लिये उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदी। राजपूताना के शासको से इस संबध में सहायता लेने के लिये लार्ड हैस्टिंग्ज ने कर्नल टाड को जो कि उस समय सिंधिया दरबार में उप-रेजीडेंट था, राजराणा जालिमसिंह के पास भेजा। टाड ने जालिमसिंह से २३ नवम्बर १८१७ को रावटा के स्थान पर मुलाकात की[1] टाड-जालिमसिंह की यह प्रथम मुलाकात थी जो कालान्तर में गाढी मित्रता के रूप में परिणित हो गई। जालिमसिंह ने पिंडारी शक्ति के स्थान पर अपने को सुरक्षित रखने वाली अग्रेजी शक्ति का मूल्य अधिक समझा। अत पिंडारियो के दमन के लिये १५०० पैदल व घुडसवार व ४ तोपें, अग्रेजो को दी[2]। सर जे माल्कम के नेतृत्व में यह सेना भेजी गई। पिंडारियो के दमन में कोटा सब तरह

१ उपरोक्त।

२ ट्रीटी ऐंगेजमेंट व सनद, तृतीय भाग, पृ० ३५७ ३५८।

की जासूसी सूचना का केन्द्र हो गया था। जालिमसिंह की सहायता से पिंडारियों के नेता गिरफ्तार कर लिये गये। उसकी इस सहायता को अंग्रेज भूल न सके।

सन् १८१७ तक अंग्रेजों ने पेशवा सिंधिया और होल्कर को पूरी तरह हरा कर मरहठा शक्ति का सर्वदा के लिये भारत में अंत कर दिया। अंग्रेज अब अत्यन्त शक्तिशाली हो रहे थे। राजपूताने के शासकों से वे संधि-वार्ता कर निश्चित राजनैतिक संबंध स्थापित कर लेना चाहते थे। इसके लिये झाला जालिमसिंह पहले से ही तैयार था। कोटा की ओर से महाराणा शिवदानसिंह सेठ जीवनराम व लाला हुलचन्द प्रतिनिधि बना कर दिल्ली भेज गये। उन्होंने गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि मेटकाफ से वार्ता की और २६ दिसम्बर सन् १८१७ में कोटा राज्य और अंग्रेजों में संधि हो गई जिसकी निम्नलिखित शर्तें थीं—

(१) अंग्रेज सरकार और महाराव उम्मेदसिंह एवं उसके उत्तराधिकारियों में मैत्री का संबंध रहेगा।

(२) संधि करने वाले दोनों पक्षों में से एक पक्ष के शत्रु और मित्र दूसरे पक्ष के शत्रु और मित्र रहेंगे।

(३) कोटा राज्य अंग्रेजी राज्य की सुरक्षा में रहेगा।

(४) महाराव व उसके उत्तराधिकारी अंग्रेजों के आधिपत्य को मानेंगे और भविष्य में उन राजाओं और रियासतों से संबंध नहीं रखेंगे जिनके साथ कोटा राज्य का संबंध अब तक रहा है।

(५) अंग्रेज सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना कोटा के महाराव किसी अन्य राजा या राज्य के साथ किसी प्रकार की शर्तें तय नहीं करेंगे।

(६) महाराव व उसके उत्तराधिकारी किसी राज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे। यदि ऐसा झगड़ा हुआ तो अंग्रेजी सरकार निर्णय करेगी।

(७) कोटा राज्य अब तक जो कर मरहठों (पेशवा होल्कर सिंधिया पंवार) को देता रहा है वह अंग्रेजी राज्य को देगा।

(८) कोटा किसी अन्य राज्य से कोई कर न ले सकेगा यदि ऐसा अधिकार आया तो इसका उत्तर अंग्रेजी सरकार देगी।

(९) आवश्यकता के अनुसार कोटा अंग्रेजों को सैनिक सहायता देगा।

(१०) महाराव और उसके उत्तराधिकारी पूर्ण रूप से अपने राज्य के शासक रहेंगे। अंग्रेजों का आन्तरिक हस्तक्षेप न होगा[१]।

---

१ ट्रीटी एंगेजमेंट व सनद तृतीय भाग पृ. ३३७ ३८।

इस प्रकार कोटा राज्य मुगल, मरहठो की अधीनना से मुक्त होकर अंग्रेजी सत्ता के अधीन हो गया। कोटा ही राजपूताने का प्रथम राज्य था जिसने अंग्रेजो से इस प्रकार की सधि कर अन्य राज्यो के लिये ऐसी स्थिति पैदा करदी। जालिमसिंह की इस सेवा को अंग्रेज कभी नही भूल सके और २० फरवरी १८१८ मे जालिमसिंह के साथ अंग्रेजो की गुप्त सधि हो गई जिसके अनुसार यह तय हुआ कि महाराव उम्मेदसिंह के वश के ही कोटा राज्य के शासक रहेंगे और फौजदार व मुसाहिब का पद जालिमसिह के वश मे रहेगा[1]। इस प्रकार की सधि ने कोटा राज्य मे झगडो का श्रीगणेश कर दिया। अंग्रेजो ने १८१९ मे चोमहला के परगने जालिमसिंह को देने चाहे पर उसने यह परगने कोटा मे मिलने दिये। उम्मेदसिंह के जीवन काल मे १८१७ की सधि को व्यवहारिक बनाने मे कोई अड़चन नही आई। उम्मेदसिंह १८२० मे मर गया। उसके बाद उसका पुत्र किशोरसिंह गद्दी पर बैठा। जालिमसिंह चूंकि वृद्ध और अधा हो चुका था अत राज्य का कार्य उसका पुत्र माधोसिंह करने लगा। वह अनुभवहीन व उद्दण्ड था। महाराव उसकी निरकुशता से तग आ चुका था। अत अपने छोटे भाई पृथ्वीसिंह और जालिमसिंह के दूसरे पुत्र गोरधनदास से मिल कर माधोसिंह का विरोध करना शुरू किया। कर्नल टाड, जो उस समय राजनैतिक प्रतिनिधि था, को यह लिख भेजा कि वह आतरिक शासन मे स्वतत्र है। अत २० फरवरी १८२० की गुप्त सधि को स्वीकार नही किया जा सका लेकिन टाड उक्त सधि की मान्यता पर जोर दे रहा था। वह महाराव को नाम मात्र का शासक मानता रहा। इस पर किशोरसिंह ने अंग्रेजो का विरोध किया। अंग्रेजो ने जालिमसिंह को सहायता दी और सन् १८२१ मे मागरोल के युद्ध मे अंग्रेजो की सहायता से जालिमसिंह ने किशोरसिंह को हरा दिया। किशोरसिंह हार कर नाथद्वारा पहुँचा। मेवाड के महाराणा की मध्यस्थता से पुन महाराव किशोर और अंग्रेजों के बीच सधि हो गई जिसके अनुसार किशोरसिंह को १६४,४८८ रु का वार्षिक खर्चा प्राप्त हो गया और महाराव ने जालिमसिंह व उसके वश को कोटा के मुसाहिबआला का पद देना स्वीकार किया[2]। १८२४ मे जालिमसिंह की मृत्यु हो गई। माधोसिंह कोटे का दीवान नियुक्त हुआ।

किशोरसिंह की मृत्यु के बाद १८२४ ई० में उसका गोद लिया हुआ पुत्र रामसिंह गद्दी पर बैठा। उन्होने स० १८३१ मे अजमेर मे लार्ड विलियम बैंटिंग से भेट की और प्रतिष्ठा प्राप्त कर अंग्रेजो सत्ता को पूर्ण रूप से स्वीकार कर

१ उपरोक्त पृ० ३५१।

२ टाड राजस्थान, भाग ३, पृ० १६०२-१६०३।

लिया। १८ ४ ई० में माधोसिंह झाला की मृत्यु हो गई। उसका लड़का मदन सिंह फौजदार बना। उसके और रामसिंह के बीच आरम्भ से ही अनबन होने लगी। ऐसी सम्भावना होने लगी कि मुसाहिब झाला को निकालने के लिये कम आन्दोलन होने वाला है। मदनसिंह ने अंग्रेजों को मित्रता की याद दिला कर उनकी सहायता प्राप्त करली और उनकी राय से ही 'कोटा कोण्टीनजेंट' सेना का निर्माण अंग्रेजों ने किया जिसका खर्च कोटा से लिया जाने लगा। मदनसिंह के इस दृष्टिकोण से रामसिंह क्रोधित हो उठे और अंग्रेजी सरकार ने इस पर महाराव की राय से मदनसिंह के लिये पृथक राज्य की संधि करादी। कोटा राज्य के १७ परगने जिनकी आमदनी १७ लाख रु थी मदनसिंह को प्राप्त हुए। नये राज्य का नाम झालावाड़ राज्य पड़ा। इस संबंध में सन् १८३८ में कोटा राज्य व अंग्रेजों के बीच नई संधि हुई। महाराव के कर में अब ८०,००० रु घटा दिये गये जो अब झालावाड़ को देने पड़े। 'कोटा-कोन्टिनजन्ट' के निर्माण की स्वीकृति महाराव ने देदी।

कोटा राज्य में अंग्रेजों का प्रभुत्व झाला राजनीति की देन थी। अन्तःकरण से महाराव ने इसका स्वागत नहीं किया। अंग्रेजी राज्य जिस विनाश की भावना को लेकर कोटा में प्रविष्ट हुआ—पश्चिमी तौर-तरीकों को पूर्वी तौर-तरीकों पर अवांछनीय ढंग से लाद देना—उससे कोटा का जन जीवन राष्ट्रीय प्रवृत्ति व सैनिक वर्ग अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध जागृत हो गया। अतः यही कारण है कि १८५७ की भारतीय क्रांति के समय कोटा का सैनिक वर्ग व जन-साधारण कोटा को अंग्रेजी प्रभाव से निकालने के लिये प्रयत्नशील रहा। १८५७ में राजपूताना का ए० जी० जी० जार्ज लारेंस था। नसीराबाद में अंग्रेजों की छावनी बनी हुई थी। वहाँ की सेना ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। नीमच की छावनी में गदर के चिह्न दिखाई देने लगे। कोटा का पोलीटिकल एजेंट मेजर बर्टन नीमच [illegible] की सहायता के लिये नीमच पहुँचा। कोटा कान्टिनजेंट और जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोष पैदा हुआ था। [illegible] था। यही कारण है कि [illegible] महाराव ने मेजर बर्टन को पुनः कोटा आने के लिए मना किया। मेजर बर्टन ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और [illegible] में आकर महाराव को [illegible] करने लगा कि [illegible] दूर किया जाय। अक्टूबर १२ को मेजर [illegible] मुलाकात [illegible]। उसने [illegible] सेना व [illegible] को मालूम

१ [illegible] १९६० पृ ६१।

हो गया। अत उन्होने १५ अक्टूबर को रेजीडेंसी पर आक्रमण कर दिया। रेजीडेंसी के डाक्टर सालडर और मिस्टर सेविल मारे गये। मेजर बर्टन व उसके दोनो पुत्रो को मौत के घाट उतार दिया गया[1]। कैप्टेन ईडन ने ए० जी० जी० को सूचना देते समय (१८ अक्टूबर १८५७) इस बात का उल्लेख किया कि कोटा महाराव का बर्टन की हत्या मे हाथ था[2]। परन्तु कोटा नरेश के विरुद्ध कोई सबूत न मिल सका।

इन विद्रोहियो के नेताओं मे लाला जयदयाल कायस्थ, मेहरावखा पठान व इसरारअली थे। बर्टन की हत्या के उपरात क्रातिकारियो ने कोटा पर अधिकार कर लिया। सरकारी कोठार, बगले, बाजार, तोपखाना, कोतवाली चौतरे पर कोटा कोटिनमेट के ही व्यक्ति अधिकार किये हुए थे। कई किलेदारो ने उनका साथ देकर राज्य का कोष उनके हवाले किया। शेरगढ मे कोटा की सेना ने भी विद्रोह कर दिया। महाराव नजरबद कर लिये गये। विद्रोही ६ माह तक कोटे के अधिकारी बने रहे[3]।

महाराव ने ए० जी० जी० को खरीता भेजा और इस दुखद घटना पर दु ख प्रकट किया। महाराव ने सहायता के लिये कई मित्रो को खरीता भेजा। एक खरीता लेजाने वाला भैसरोड के जगल में पकडा गया। उस समय विद्रोहियो के पास अग्रेजो से लगातार सघर्ष करने की पूरी ताकत थी। धीरे धीरे भैसरोड, गेता, पीपल्दा व कोपला के ठाकुरो ने महाराव की सहायता की। दोनो दलो मे भयंकर युद्ध हुआ। ८०० विद्रोही मारे गये। महाराव के ३०० सैनिक मृत्यु के घाट उतरे[4]। उसी समय करोली के शासक ने महाराव की सहायता के लिये सेना भेजदी। महाराजा मदनपाल ने १५०० सैनिक भेज कर चम्बल नदी के पूर्वी किनारे पर अधिकार कर लिया। उसी समय मथुरेशजी के गोस्वामी कन्हैयालाल की मध्यस्थता से महाराव और विद्रोहियो मे वार्ता शुरू हुई। वार्ता १५ दिन तक चलती रही। उसी बीच करोली की सेना गढ में पहुँच चुकी थी। अग्रेजो की एक सेना मेजर राबर्ट के नेतृत्व मे चम्बल के उत्तरी किनारे पर पहुँची। २२ मार्च १८५८ तक चम्बल के पश्चिमी किनारे पर विद्रोहियो का पूर्ण अधिकार था[5]। करोली की सेना और मेजर राबर्ट के तोपखाने ने विद्रोहियो को

---

१ फोरेस्टर हिस्ट्री ऑफ दी इंडियन यूनिटी, जिल्द ३, पृ० ५५६-५६।
२ खडगावत राजस्थानस् रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७, पृ० ६०।
३ उपरोक्त पृ० ६१।
४ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ६७३।
५ खडगावत, पृ० ७३।

दबा दिया। प्रारम्भ में विद्रोही सिर्फ अंग्रेजों के विरुद्ध ही थे परन्तु जब महाराव ने खरीते लिख कर अंग्रेजों को अपनी सहायता के लिये बुलाया तो विद्रोही महाराव के भी विरोधी हो गये। यह विद्रोह जन-सहयोग पर आधारित था नहीं तो न तो इतना व्यापक हो सकता था और न इतने समय तक कोटा का शासन विद्रोहियों के हाथों में रह सकता था[1]। अंग्रेजों ने विद्रोहियों को दबाने के लिये जिस आतंक की स्थापना की वह स्पष्ट करता है कि कोटा में अंग्रेज विरोधी भावना कितनी प्रबल थी। कम्पनी के यूरोपियन सिपाहियों ने घर लूटे, दुकानें लूटीं व मन्दिरों की मूर्तियों के गहने छीन लिये। गुमानपुरा के एक कलाल ने विद्रोहियों को शराब बेची थी उस पर १५० रु जुर्माना किया गया। जयदयाल पकड़ लिया गया और तोप से उड़ा दिया गया[2]। महराबखां को एजेंटी के पास वृक्ष पर लटका कर फांसी दी गई[3]।

इस विद्रोह को दबाने में महाराव ने अंग्रेजों को सहायता अवश्य दी थी परन्तु क्योंकि मेजर बर्टन की हत्या कोटा में हुई थी अतः महाराव की सलामी की तोपें घटा कर १७ से १३ करदी गई। मेजर बर्टन का स्मारक बाग में स्थापित किया गया और कोटा के नागरिकों से विद्रोह को दबाने का खर्च वसूल किया गया। 'कोटा-कोंटिन्जेंट' तोड़दी गई। उसके स्थान पर देवली छावनी स्थापित कर अंग्रेजी सेना रखी गई। रामसिंह की मृत्यु के पहले कोटा शासन की हालत बिगड़ने लगी।

राजकीय ऋण २ लाख रु. हो गया। रामसिंह व उसके मंत्री इसे चुकाने की क्षमता नहीं रखते थे। सन् १८६१ में कोटा में नवीन शासन-व्यवस्था स्थापित की गई जिसमें कोटा राज्य में पोलीटिकल एजेंट का हस्तक्षेप अधिक होने लगा। उसे की जाने वाली शिकायतें लिखित रूप में की जाने लगीं व उसका रिकार्ड पालकीखाने में सुरक्षित रखा जाने लगा। सन् १८६६ में रामसिंह की मृत्यु हो गई। उसका लड़का भीमसिंह शत्रुशाल के नाम से गद्दी पर बैठा। १८६७ में शत्रुशाल को पुनः १७ तोपों की सलामी प्राप्त हो गई पर शासन की व्यवस्था इतनी गिरने लगी कि अन्त में महाराव ने अंग्रेजी सरकार को एक सुयोग्य प्रबंधक भेजने के लिये लिखा। १८७४ में जयपुर के भूतपूर्व मंत्री नवाब फैजअली खां बहादुर कोटा राज्य का प्रबंधक नियुक्त किया गया जो ए. जी. जी. की अधीनता में शासनकर्ता बन गया। महाराव शत्रुशाल राज्य के भीतर हस्तक्षेप

१ उपरोक्त पृ. ९५।
२ उपरोक्त पृ. ९७-९८।
३ डा. शर्मा ने जयदयाल को भी फांसी का होना लिखा है।

करने की मनाही करदी गई और खर्च के लिये एक धनराशि निश्चित की[1]। २ वर्ष तक नवाब फैजअली कोटा रहा। १८७६ मे कोटा का शासन पोलीटीकल एजेंट के सुपुर्द कर दिया गया जिसकी सहायता के लिये सदस्यो की एक कौंसिल का निर्माण हुआ। धीरे २ जब राज्य की दशा सुधरने लगी तो राज्य का कुछ प्रबध महाराव को दे दिया गया। विशेष कर दान विभाग, सेना विभाग, और गढ का प्रबध। १८८१ मे अफीम और नशीली वस्तुओ के अलावा व्यापारिक वस्तुओ के प्रचलन पर कर उठा दिया।

१८८२ मे अग्रेजो और महाराव के बीच नमक का समझौता हुआ। नमक बनाने व बेचने का अधिकार अग्रेजी राज्य को दिया गया। उसके बदले मे अग्रेजो ने महाराव को १६,००० रु. वार्षिक देने का निर्णय किया। शत्रुशाल का ११ जून १८८६ को देहान्त हो गया। उसके स्थान पर गोद लिया हुआ उम्मेदसिह महाराव बना। सन् १८९६ मे कौंसिल तोडदी गई और महाराव को शासन के पूर्ण अधिकार दे दिये गये। जनवरी १८९९ मे अग्रेजी सरकार ने झालावाड के १७ परगनो मे से १५ परगने पुन कोटा मे शामिल कर दिये। फरवरी १८९९ मे कोटा-बीना रेल-निर्माण के लिये इडियन मिड-लैण्ड रेलवे कम्पनी ने समझौता किया। १९०१ मे महाराव ने इण्डियन पोस्टल प्रणाली कोटा मे लागू की और अग्रेजी मुद्रा ने कोटा की मुद्रा का स्थान ले लिया। १९०४ मे महाराव ने नागदा-मथुरा रेल-निर्माण के लिये मुफ्त मे कोटा की जमीन देदी। १९१४ के महायुद्ध के समय कोटा के महाराव ने कोटा का सर्वस्व अग्रेजी राज्य के लिये दे दिया। युद्ध समाप्त होने पर अग्रेजी सरकार ने १९ तोपो की सलामी से महाराव को विभूषित किया। यह स्थिति १९४७ तक बनी रही जब कि भारत से अग्रेजी साम्राज्य समाप्त हो गया।

अग्रेजी काल मे १८५७ मे जहा कोटा क्रांति में अग्रणी रहा वहा उसके पतन के बाद सामती व औपनिवेशिक ढाचे ने इतना कमजोर कर दिया गया कि अग्रेजो के विरुद्ध खडे होने की लोगो मे क्षमता ही नही रही। फिर भी भारतीय जन-जागृति का प्रभाव कोटा मे भी पडा और कोटा में जो राजनैतिक जागृति हुई उसका श्रेय श्री अभिन्नहरि तथा उसके साथियो को दिया जाता है। उन्होने सन् १९३१-के आन्दोलन मे अजमेर जाकर भाग लिया तथा बाद मे कोटा को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। सन् १९४२ में कोटा में जन-आन्दोलन उठ खडा हुआ। उसे दबाने के लिये भयकर प्रयास किया गया। नये महाराव श्री भीमसिंह युग-गति के अनुसार चले। मार्च १९४८ में राजस्थान सघ स्थापित हुआ जिसकी

१ ट्रीटी, ऐंगेजमेंट व सनद, जिल्द ३, पृ० ३३५।

राजधानी कोटा रखी गई तथा कोटा महाराव राजप्रमुख बने। परन्तु बाद में उदयपुर के इस संघ में शामिल हो जाने पर मई १९४८ ई० में राजधानी उदयपुर तथा राजप्रमुख उदयपुर के महाराणा बनाये गये। भीमसिंह उप राजप्रमुख बने। जब बृहद् राजस्थान बना तब फिर उप राजप्रमुख का पद कोटा के महाराव श्री भीमसिंह को दिया गया। इस पद पर यह ३१ अक्टूबर १९५६ तक रहे। पहली नवम्बर से राजप्रमुख पद समाप्त कर दिया गया। राजस्थान-निर्माण के बाद कोटा की निरन्तर प्रगति हो रही है। चम्बल-योजना के पूर्ण होने पर तो यह एक अति समृद्धशाली प्रदेश हो जायेगा।

कोटा राज्य के सरदार[1]

कोटा राज्य के सरदारों को २ भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक राजवी और दूसरे अमीर उमराव। राजवी कोटा नरेश के नजदीक के कुटुम्बी हैं। ठिकाना कोटरा, अमोलिया, सांगोद, आमली, सेरमी, अन्ता तथा मुखमी के जागीरदार किशोरसिंहोत घराने के हैं। इनसे दूसरे दर्जे में मोहकमसिंहोत घराना है जिसके मुखिया पलायता के ठाकुर हैं। इन सभी को आपजी कहा जाता है। इन्हीं घरानों से राज्य गद्दी के लिये गोद जाने की प्रथा है।

कोटा राज्य के ताजीमी सरदार एवं जागीरदार १६ हैं। इनमें अधिक संख्या हाड़ा चौहानों की है। कोटा में ८ जागीरें हाड़ा वंश की रही हैं जिन्हें कोटड़ी या कोटड़ियात कहते हैं। इन्द्रगढ़, बलवन, खातोली, गैंता, करवड़, पीपलदा, फसूद व अन्तरदा रहा है। ये जागीरें कोटा राज्य को ९४,१९७ रु. ११ आना खिराज के रूप में देती हैं जिसमें से जयपुर राज्य को ९४,११७ रु. १४ आना ६ पाई दिया जाता है। ये कोटड़ियाँ पहले बूंदी राज्य के मातहत थीं। इनका सूबा रणथम्भोर

---

१ 'सरदार' सामन्तों का दूसरा नाम है। यहाँ उन सामन्तों, ठाकुरों, जागीरदारों के ठिकानों का विवरण दिया जाता है जो कोटा राज्य के शासन, राजनीति तथा सामाजिक जीवन [illegible]

लगता था। राजा सुर्जन हाडा ने जब रणथम्बोर का किला सन् १५६९ मे अकबर को दे दिया तो मुगल शासको ने इन कोटडियो से खिराज लेना प्रारम्भ कर दिया। ई० स० १७६० मे रणथम्बोर का किला जयपुर नरेश माधोसिंह के अधिकार मे आ गया। जयपुर वालो ने मुगल परम्परा के अनुसार इन कोटडियो से खिराज मागा। इन ठाकुरो ने कोटा महाराव से सहायता मागी। ई० स० १८२३ मे कोटा के दीवान राजराणा जालिमसिंह झाला ने सरकार की सलाह से खिराज जयपुर वालो को स्वीकार किया पर यह खिराज कोटा द्वारा प्राप्त किये हुए खिराज मे से दिया जाता था जिससे इन कोटडियो पर कोटा का प्रभाव बना रहे। इन्द्रगढ और खातोली के सिवाय अन्य कोटडियो से जब नये जागीरदार गद्दी पर बैठते हैं तब नजराना लिया जाता है और महाराव की स्वीकृति के बिना ये गोद भी नही ले सकते। करवर, गेंता, फसूद और पीपलदा हरदावतो की कोटडिया कहलाती हैं। स० १६४९ मे बादशाह शाहजहा ने बूदी के रावराजा भोज के बेटे हृदयनारायण के एक बेटे खुशहालसिंह को फसूद का परगना दिया था। खुशहालसिंह ने उसके चार भाग कर—करवर तो अपने पास रखा, गेंता अपने चचेरे भाई अमरसिंह को दिया, फसूद गजसिंह को और पीपलदा दौलतसिंह को दिया। पीपलदा का खास कस्बा चारो के साझे मे रहा जो आज तक उसी तरह चला आ रहा है। कोटडियो के अलावा २४ जागीरदार ताजीमी हैं।

इन्द्रगढ—इन्द्रगढ कोटा से ४५ मील उत्तर की ओर है। उसे महाराज इन्द्रसाल ने[1] स० १६६२ माघ वदि ८ को बसाया था। इन्द्रगढ में ९२ गाव जागीर के हैं जिनकी आय २,३२,८२२ रुपये है। कोटा राज्य को ये खिराज के रूप मे १७५०६ रु १२ आना देते हैं जिसमे से ६९६९ रुपये जयपुर राज्य को दिया जाता है। तत्कालीन महाराज सुमेरसिंह को १९१७ अक्टूबर मे छापोल ठिकाने से महाराज शेरसिंह ने गोद लिया था। इनका नजदीकी कुटुम्बी छापोल और जाटवारी के उमराव हैं।

बलवन—यहा के सरदार महाराज प्रतापसिंह बूदी के स्वर्गीय महाराजकुमार गोपीनाथ के पुत्र वैरीशाल के वशज हैं। इस जागीर मे २१ गाँव हैं जिनकी आय १६ हजार रु है। इस ठिकाने से कोटा राज्य का १७२८ रु खिराज के देने पडते हैं जिसमे ११२८ रु जयपुर राज्य को दिये

---

१ इन्द्रसाल का पिता गोपीनाथ था जो कि राव रतन का पुत्र था और उसके शासनकाल मे ही मर गया। महाराव इन्द्रसाल हाडा को शाहजहा के समय ८०० जात व ४०० सवार का मनसब प्राप्त था।

का स्वर्गवास ई० स० १९३० मार्च को हो गया था[1] । इनको राजगद्दी १९३५ जून मे प्राप्त हुई थी ।

फसूद (पुसोद)—ठाकुर जगतसिंह का जन्म ई० स० १९०८ में हुआ था। इनकी जागीर में ६ गाव १७१९८ की आय वाले हैं जिस पर १००२ खिराज के दिये जाते है। इसमें से ३३२ रु. जयपुर को मिलते है। जगतसिंह ठाकुर जयसिंह की गोद आये थे और १९१५ में ठिकाने के मालिक हो गये थे। पुसोद कोटा से ५१ मील उत्तर की ओर है ।

पीपलदा—ठाकुर गुलाबसिंह की जागीर में २२००० रु० सालाना आय के ११ गांव है। खिराज के रुपयो मे १००६ रु. कोटा को दिये जाते हैं। जयपुर का हिस्सा ३३१ रु १२ आने है। ठाकुर भारतसिंह का युवावस्था में ही देहान्त हो गया था इसलिये गुलाबसिंह जो इनके नजदीक कुटुम्बियो मे थे, कोटा राज द्वारा ठिकाने के स्वामी बनाये गये ।

अतरदा—अतरदा की जागीर मे अन्तरदा तथा ६ गांव हैं जिमसे १५००० रु की सालाना आय होती है। खिराज के रु ३८२८ है जिसमे १०२८ रु जयपुर को प्राप्त होते है। वर्तमान जागीरदार बहादुरसिंह हैं। ये बूदी के गोपीनाथ के पौत्र सगतसिंह के वशज है ।

निमोला—निमोला इन्द्रगढ ठिकाने से निकला हुआ है। महाराज रणजीतसिंह इन्द्रसिहोत खांप के होने की वजह से इन्द्रगढ को ८२० रु. खिराज का देते हैं। इनकी जागीर मे केवल एक गांव चम्वल नदी के दाहिने तट पर है जिसकी सालाना आय ६००० रु है। वर्तमान महाराज का जन्म ई. स १८७४ को हुआ और स्वर्गीय महाराज मोतीसिंह ने ई स १९०० में गोद लिया था[2] ।

कोयला—यह ठिकाणा कोटा राज्य के प्रथम नरेश राव माधोसिंह हाडा के चौथे पुत्र कनीराम ने स्थापित किया था। राज-दरबार में इनकी

---

१ महाराज तेजसिंह के पूर्वज नाथजी थे जो अमरसिंह की तीसरी पीढी में थे। इन्होंने कोटा और जयपुर राज्य के बीच भटवाडे के युद्ध मे (१७६१ ई०) कोटा की ओर से लड कर प्रसिद्धि प्राप्त की थी। नाथजी के पुत्र शिवदानसिंह थे जिन्होंने कोटा राज्य के प्रतिनिधि की हैसियत से अंग्रेज सरकार के साथ अहदनामा किया। इस अवसर पर अंग्रेज सरकार ने इन्हे एक घोडा, एक हाथी व खिलअत तलवार प्रदान की जिनमे से पोशाक व तलवार अब तक इनके यहा सुरक्षित रखी हुई है ।

२ कोटा महाराव की महरबानी इन पर बनी रही। अत महाराज अपने को इन्द्रगढ के अधीन न रख कर कोटा के चौथे दर्जे के सरदार बन गये। ८७१ रु १४ आना माधोपुरी सिक्के खिराज के दाखिल करते है ।

के जनरल सुपरिटेंडेंट थे। फिर राज्य की सेना के सेनापति हो गये। १६३३ से राज्य के दीवान का काम करते रहे है।

कुनाडी—कुनाडी चम्वल नदी के वायें तट पर, कोटा नगर के सामने है। कुनाडी का ठिकाना कोटा नरेश राव मुकन्दसिंह हाडा ने ई स १६४४ मे देलवाडा (मेवाड) के राजराणा जीतसिंह झाला के तीसरे पुत्र अर्जुनसिंह को राज की उपाधि सहित इनायत किया था। यहा के सरदार राजचन्द्र-सेन का प्रभाव कोटा मे वहुत अधिक था। ये झाला राजपूतो के जेनावत शाख के हैं। राज्य दरवार मे इनकी प्रथम वैठक वाई तरफ है। इस जागीर मे २५००० रु आय के ८ गाव है। ये कोटा राज्य को खिराज के रूप में २६६० रु देते है। सरदार चन्द्रसेन के पिता राव वहादुर राज-विजयसिंह विद्यानुरागी एव इतिहासप्रेमी थे। ई स १८८८ मे वे राज-रूपसिंह की मृत्यु पर देलवाडा (मेवाड) से गोद आकर कुनाडी के स्वामी हुए थे। चन्द्रसेन सन् १९२६ मे कुनाडी के अधिकारी हुए थे।

वम्बुलिया—इस जागीर के स्वामी महाराज केशवसिंह हाडा महा-राव किशोरसिंह के वशज हैं[1]। इनकी जागीर मे ११ हजार रु० की आय के ६ गाव हैं। यह ठिकाणा कोटा राजधानी से पूर्व मे ३४ मील है। राज्य को खिराज के रूप मे २३५ रु देता है। सन् १६३४ मे महाराज महताब-सिंह के देहान्त पर वर्तमान महाराज इस ठिकाणे की गद्दी के स्वामी हुए।

सरोला—कस्वा कोटा से ७० मील उत्तर पूर्व मे है। और इस जागीर के स्वामी दक्षिणी सारस्वत ब्राह्मण पण्डित चन्द्रकान्त राव हैं जिन्हें दरवार मे नरेश के वाई ओर की दूसरी वैठक प्राप्त है। यह जागीर २७ हजार रु. आय के ७ गाव की है। यहा के स्वामी राज्य को खिराज या चाकरी नही देते। यह जागीर ६२७३६४ रु मे रहन रखी हुई है। इस घराने के सस्थापक बालाजी पण्डित पूना के पेशवा वाजीराव की सेवा में थे। जव मरहठो ने उत्तरी भारत पर चढाई की तब कोटा राज्य से गुजरते हुए वाजीराव पेशवा ने वालाजी यशवन्त को वूदी और कोटा दरवार से चौथ तय करने के लिये नियत किया था और बाद में बूदी कोटा तथा उदयपुर (मेवाड) से ये खिराज वसूल करने पर भी नियुक्त हुए[2]।

---

१ कोटा के चौथे नरेश महाराज किशोरसिंह के प्रपौत्र सूरजमल ने यह ठिकाना कायम किया था।

२ वाजीराव ने कोटा पर अधिकार कर महाराव दुर्जनशाल से ४० लाख रु प्राप्त किये। वालाजी यशवन्त नाम के एक कोकणस्थ सारस्वत ब्राह्मण को इस धन का हिसाब लेने के

घाटी—बूदी के राव वीरसिंह के पोते मेवासिंह ने इस जागीर की स्थापना की थी। उनके वशजो मे जोरावरसिंह महाराव भीमसिंह के साथ सन् १७३६ ई० मे निजाम के मुकाबले मे मारा गया। जोरावरसिंह के बेटे खुशहालसिंह को जागीर मिली परन्तु उसके पुत्र अजीतसिंह ने कोटा के दीवान को मार डाला इसलिये वह जागीर जप्त हो गई। अजीतसिंह के पोते गुमानसिंह ने भटवाडे के युद्ध मे जिस वीरता का प्रदर्शन किया उसके उपलक्ष मे घाटी जागीर प्राप्त की। यह जागीर मेवावत हाडाओ की कही जाती है जिसके अधिकार मे २५०० रु वार्षिक आय के ४ गाव हैं।

खेडला के जागीरदार श्रीनल डाबरी, खडेली, सारथल मडवी की जागीरें १००० रु वार्षिक आय की एक गाव की हैं। कोटडा की जागीर पहले झालरापाटण के मातहत थी। सन् १८६६ ई० मे जब झालावाड के १७ परगने कोटा को लौटाये गये तो कोटडा कोटा के अधिकार मे आ गया। इस जागीर की वार्षिक आय २५३६ रु है और इसके अधीन मे ४ गाव हैं। तत्कालीन महाराज दुर्जनसाल हाडा हैं।

बालाजी पंडित ने कोटा को अपना निवास-स्थान बनाया और लेनदेन की दुकान खोली। बालाजी के पुत्र ने कोटा के राजराणा दीवान जालिमसिंह झाला से मित्रता बढ़ाई और ई० स० १७६६ में जब होल्कर ने कोटा को दबाना चाहा तब जालिमसिंह की सहायता की। मरहठा सेना को समझा-बुझा कर वापस कर दिया। उस समय कोटा राज्य ने इनसे १२७१६४ रु० ऋण लिये थे और ई० स० १७७१ में सरोला की जागीर इस ऋण के एवज गिरवी रखी गई। ई० स० १८१७ में अंग्रेज-कोटा-संधि के अनुसार मरहठों को दिया जाने वाला कर (खिराज) अंग्रेजों को दिया जाने लगा। बालाजी का बोझ इकट्ठा करने वाला पद समाप्त हुआ पर सरोला की जागीर पंडित गणपत राव के पास ही रही।

कचनावदा—ठाकुर मोतीसिंह हाड़ा इस जागीर के तत्कालीन स्वामी हैं। बूंदी के राव सुर्जन के तीसरे पुत्र रायमल ने इस जागीर का स्वामित्व स्थापित किया था। रायमल को बादशाह अकबर ने उनकी खिदमत के एवज में पलायथा जागीर में दिया था। लेकिन रायमल के पोते हरीसिंह से यह जागीर छूट गई। हरीसिंह के बेटे दौलतसिंह को महाराव भीमसिंह ने सेरथल जागीर में दिया था। सन् १८३८ में सेरथल का इलाका झालरा पाटण (झालावाड़) में चले जाने के कारण उसके एवज में ठाकुर नरपतसिंह को कचनावदा मिला। इस जागीर में ७३७७ रु० वार्षिक आय के ३ गांव हैं। इनको राज्य को खिराज नहीं देना पड़ता है।

राजगढ़—राव माधोसिंह के बेटे मोहनसिंह के एक पुत्र गोवर्धन ने इस जागीर का स्वामित्व स्थापित किया था। गोवर्धनसिंह बादशाह औरंगजेब के पक्ष में युद्ध करते हुए दक्षिण में मारा गया था। उसका पुत्र दौलतसिंह महाराव भीमसिंह के साथ निजाम के विरुद्ध युद्ध में काम आया और दौलतसिंह का पोता माधजी सन् १७६१ ई० में भटवाड़े की लड़ाई में काम आया था। माधजी के पोते देवीसिंह ने राजराणा जालिमसिंह को दूर करने में महाराव किशोरसिंह को बहुत मदद की थी। वह सन् १८२१ में मांगरोल के युद्ध में घायल होकर राजगढ़ आया। इस जागीर में ४००० वार्षिक आय के ५ गांव हैं और तत्कालीन जागीरदार माधोसिंह हाड़ा हैं।

लिये छोड़ा गया। कोटा राज्य ने मरहठों की अधीनता सन् १७३० में स्वीकार करली थी। बालाजी यशवन्त की सेवा के उपलक्ष में महाराव दुर्जनशाल ने अरखेड़ी नामक इलाका जागीर में दिया। पेशवा ने उसको अपना वकील बना कर कोटा राज्य में नियुक्त कर दिया। डा० मथुरालाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास भाग १ पृ० १७५।

घाटी—बूदी के राव वीरसिह के पोते मेवासिह ने इस जागीर की स्थापना की थी। उनके वशजो मे जोरावरसिह महाराव भीमसिह के साथ सन् १७३६ ई० मे निजाम के मुकाबले मे मारा गया। जोरावरसिह के बेटे खुशहालसिह को जागीर मिली परन्तु उसके पुत्र अजीतसिह ने कोटा के दीवान को मार डाला इसलिये वह जागीर जप्त हो गई। अजीतसिह के पोते गुमानसिह ने भटवाडे के युद्ध मे जिस वीरता का प्रदर्शन किया उसके उपलक्ष मे घाटी जागीर प्राप्त की। यह जागीर मेवावत हाडाओ की कही जाती है जिसके अधिकार मे २५०० रु वार्षिक आय के ४ गाव हैं।

खेडला के जागीरदार श्रीनल डावरी, खडेली, मारथल मडवी की जागीरें १००० रु वार्षिक आय की एक गाव की है। कोटडा की जागीर पहले झालरापाटण के मातहत थी। सन् १८९९ ई० मे जब झालावाड के १७ परगने कोटा को लौटाये गये तो कोटडा कोटा के अधिकार मे आ गया। इस जागीर की वार्षिक आय २५३६ रु है और इसके अधीन मे ४ गाव है। तत्कालीन महाराज दुर्जनसाल हाडा हैं।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४	१	हकलेरा	इकलेरा
५	७	वडौदा	वडौद
	१४	११६०	११६°
	१५	४४०	४४°
७	१०	कोटा होता हुआ	होती हुई
८	१६	वसे वे सव	वसे वे
६	१	है वहा, कई	है कई
१०	२	आधुनिक क्षेत्र	आधुनिक ढग
११	१६	अग्रेजो के आने से पहले तक वन गई	शासन अग्रेजो के आने से पहले तक वन गया
१५	१४	अपराधो पर अर्थदण्ड	पर अर्थदण्ड
३०	४	स० १५१८	सन् १५१६
	६	सम्वत् १५२१	सन् १५२१
	१२	अम्वर का धाभाई	अकवर का
		गागरोल	गागरोण
	१७	(सम्वत् १७६४–१७७७)	सन् १७०७–१७२०
३१	२७	से गुजरते थे	से गुजरे थे।
३४	८	(१३४३ ई०)	(१३४१ ई०)
३५	१३	सम्वत् १३२१ (१२७४ ई)	सम्वत् १४२१ (१३७४ ई)
४४	१६	वहख	वल्ख
४४	२०	"	"
४५	१२	"	"
५१	१	का प्रदर्शन करते हुए वीर-गति प्राप्त किया। उससे	का प्रदर्शन कर वीरगति को प्राप्त हुए, उससे
५४	१५	मुअज्जम मारा गया।	आजम मारा गया।
		आजम विजयी	मुअज्जम विजयी
५६	२६	मढ	मऊ
५७	२	भीमसिंह व फरूखसियार का	भीमसिंह व फरूखसियार में
५८	२०	सत्यता निजाम की चालाकी के सामने नही चल सकी	सत्यता के सामने निजाम की चालाकी नही चल सकी।
५६	फुटनोट	५	१
६२	फुटनोट ३	पृ सख्या	पृ सख्या ८०-८२

OPINION

It is a matter of great congratulation that History of Rajasthan, and its component Princely States have found their own Historians The work of M M Gaurishanker Ozha has been carried on by his worthy successor—the late Jagdish Singh Gahlot whose History of Kotah has just been published and provides a worthy monument to his great historical researches It is not only a book of history but a comprehensive Gazetteer of Kotah—presenting a description of this state from all points of view To a comprehensive political history has been added materials for its social, religious and cultural life In presenting the political history—the distinguished author has pressed into service all sources of information with authoritative bibliographical references—which throw a new light on the History of Kotah It is to be hoped that competent successors will be found to carry on the great work of the late Jagdish Singh Gahlot

Chief Editor,
'Rupam',
Calcutta

O C GANGOLY